873

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

पुराने रोगों की

गृह-चिकित्सा

कुलरंजन मुखर्जी

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

चिकित्साके सम्बन्धमें उपदेश लेनेके नियम

नीचे लिखे पतेपर कोई भी व्यक्ति चिट्ठी पत्रा द्वारा या मुझसे मुलाकात करके चिकित्सा के सम्बन्धमें सलाह ले सकता है। चिट्ठी भेजनेवालों को चाहिये कि रोग का पूरा ब्योरेवारा विवरण लिखें। रोगोंके नाम, कितने दिनोंसे रोग हुआ है, रोगी कमजोर है या सबल, उसका कोष्ठ परिष्कार होता है या नहीं, पसीना और पेशाब कैसा होता है, हाजमा कैसा है, रोगी की उम्र कितनी है आदि साफ साफ लिखना चाहिये। इस स्थानपर रोगियोंकी चिकित्सा करनेकी भी व्यवस्था है। बाहर के रोगियोंको आनेके पहले पत्र व्यवहार कर लेना चाहिये। यहाँसे कलकत्तेके सर्वत्र तथा भारत के सब स्थानों पर सुशिक्षित महिला या पुरुष नर्स भेजकर सब रोगोंका इलाज किया जाता है। पुरुष रोगियोंके लिये पुरुष तथा महिलाओंके लिये महिला नर्स भेजनेका नियम है। रोगियों को देखनेके लिये भारतवर्षके वहुत से स्थानपर मुझको जाना पड़ता है। हमेशा दो-एक दिन पहले मुझको संवाद मिलना चाहिये।

डा० नीलकान्त चक्रवर्ती

प्राकृतिक चिकित्सालय,

११४।२ बी और सी, हाजरा रोड (पश्चिम),

कालीघाट, कलकत्ता-२६। फोन; ४७ ३१८०

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

पुराने रोगों की

गृह-चिकित्सा

जल, मिट्टी, भाप, हवा, धूप, भोजन सुधार, व्यायाम, आसन, मालिश और उपवास आदि की सहायता से बिना किसी खर्च के घर बैठे सभी पुराने रोगों (chronic disease) की चिकित्सा पुस्तक

चतुर्थ संस्करण

'अभिनव प्राकृतिक चिकित्सा' और 'दैनन्दिन रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा' आदि पुस्तकों के लेखक, 'प्राकृतिक चिकित्सालय' के संस्थापक और 'मारवाड़ी रिलीफ सोसाइटी' अस्पताल के प्राकृतिक चिकित्सा विभाग के भूतपूर्व चिकित्सक

कुलरञ्जन मुखर्जी द्वारा

लिखित

डा० नीलकान्त चक्रवर्ती द्वारा

प्रकाशित व परिवर्द्धित

[All rights reserved by the publisher]

मूल्य—४.५०

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्रकाशक—

डा० नीलकान्त चक्रवर्ती

प्राकृतिक चिकित्सालय,

११४/२ बी और सी, हाजरा रोड, कालीघाट, कलकत्ता-२६

फोन : ४७-३१८०

पुस्तक मिलने के पते—

१ । डा० नीलकान्त चक्रवर्ती,

प्राकृतिक चिकित्सालय,

११४/२ बी और सी, हाजरा रोड, कलकत्ता-२६

फोन : ४७-३१८०

२ । हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, २०३, माहात्मा गांधी रोड, कलकत्ता

३ । डा० बिट्ठलदास मोदी, धाम बाजार, आरोग्य-मन्दिर,

गोरखपुर [उत्तर-प्रदेश]

मुद्रक—

राष्ट्रभाषा मुद्रणी

१, मुक्तारामबाबू सेकेन्ड लेन,

कलकत्ता-७

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

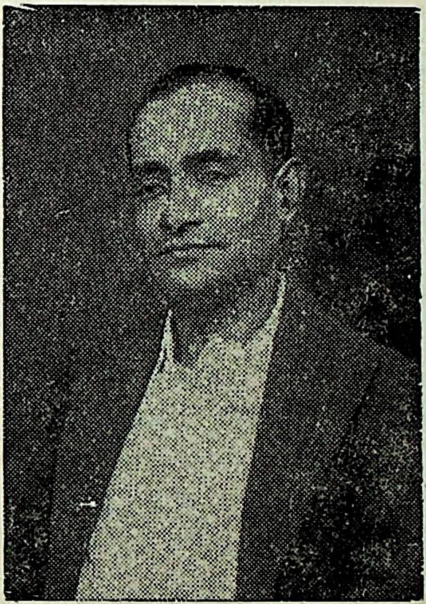

स्व० डा० कुलरञ्जन मुखर्जी

निसर्गोपचार आश्रम
पुस्तक विक्री विभाग
उरुळीकांचन (जि. पुणें)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

दो शब्द

प्राकृतिक चिकित्सा कोई नयी चिकित्सा नहीं है। स्मरणातीत काल से पृथ्वी के विभिन्न स्थानों में यह चली आ रही है। आयुर्वेद में भापस्नान तथा डूस आदि ग्रहण करने को विभिन्न पद्धतियों को देखकर आश्चर्य होना पड़ता है। ऐलोपैथी चिकित्सा-शास्त्र के ग्रन्थकारों ने भी उनकी पुस्तकों में विभिन्न रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा-विधि सन्निवेशित की है। सभी चिकित्सा-विधि ही सिर झुकाकर इसकी उपयोगिता को स्वीकार किया करती है। तब भी, पहले यह एक आनुसंगिक चिकित्सा-विधि जैसी गिनी जाती थी। परन्तु कुछ दिन पहले यूरोप तथा अमरीका के बहुत विद्वान चिकित्सकों के अनुसन्धान के फलस्वरूप यह एक पूर्णाङ्ग चिकित्सा-विधि में परिणत हुआ है। इसके द्वारा अब सभी रोग चिकित्सा तथा आरोग्य किये जा सकते हैं।

जर्मनी का नाजी-नेता हिटलर ने इस चिकित्सा-विधि को स्वीकार कर लिया था। तब जर्मनी में इसकी यथेष्ट उन्नति हुई थी।

आजकल पृथ्वी के विभिन्न स्थानों में प्राकृतिक चिकित्सालय प्रतिष्ठित हुए हैं तथा इन सब चिकित्सालयों से सहस्र सहस्र रोगी आरोग्य लाभ कर रहे हैं। यह आशा की बात है कि अधुना भारतवर्ष में एक सौ से भी अधिक प्राकृतिक चिकित्सा केन्द्रों में सफलता के साथ चिकित्सा-कार्य चल रहा है। इसके अतिरिक्त सहस्र सहस्र लोग अपनी चिकित्सा आप ही घर बैठे करते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सालय,
२१४/२ बी और सी, हाजरा रोड,
कालीघाट, कलकत्ता-२६
फोन : ४७-३१८०

कुलरञ्जन मुखर्जी

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

विषय-सूची

अध्याय	विषय			पृष्ठ
प्रथम अध्याय—पुराने रोग और उनका प्रतिकार			...	१
द्वितीय अध्याय—परिपाक यंत्रों के रोग			...	४
	कोष्ठबद्धता	...	...	४
	अजीर्ण	...	...	६
	अम्लरोग	...	...	१८
	पाकस्थली का घाव	...	...	२६
	ऊपरी आँत का घाव	...	...	३७
	पुराना पेचिश	...	...	३८
	वायुफुल्लता	...	...	४६
	बवासीर	...	...	५३
तृतीय अध्याय—श्वासयंत्र के रोग		...	...	५९
	पुराना ब्रोंकाइटिस	...	...	५९
	दमा	...	...	६४
	क्षयरोग (Tuberculosis)		...	७५
चतुर्थ अध्याय—पुष्टि संबंधी रोग		...	...	८८
	रक्तहीनता	...	...	८८
	मधुमेह	...	...	९५
	स्थूलता	...	...	१०७
	कृशता	...	...	११५
पंचम अध्याय—रक्त-संचालक यंत्र के रोग			...	१२१
	हृद्‌रोग	...	...	१२१
	हृत्‌शूल	...	...	१३४
	हृत्‌कम्प	...	...	१४०

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

अध्याय	विषय			पृष्ठ
	उच्च रक्तचाप	...	...	१४२
	निम्न रक्तचाप	...	...	१५०
षष्ठ अध्याय—वात व्याधि		...	...	१५३
	सन्धिवात	...	...	१५३
	पेशीवात	...	...	१६४
	अस्थिजरा	...	...	१६५
	गठिया	...	...	१६८
सप्तम अध्याय—स्नायु के रोग		...	...	१७४
	साइटिका	...	...	१७४
	मिर्गी रोग	...	...	१७८
	लकवा	...	...	१८५
अष्टम अध्याय—मानसिक रोग		...	...	१८९
	मानसिक दुर्बलता	...	...	१८९
	उन्माद रोग	...	...	१९८
नवम अध्याय—चर्मरोग		...	...	२०३
	दाद	...	...	२०३
	एकजिमा	...	...	२०५
दशम अध्याय—पुराना घाव		...	...	२१३
	कैंसर	...	...	२१७
एकादश अध्याय—जननेन्द्रिय के रोग		...	...	२२३
	स्वप्नदोष	...	...	२२३
	धातु-दौर्बल्य	...	...	२२७
	नपुंसकता	...	...	२३२
	हाइड्रोसील	...	...	२३७
	पौरुष ग्रन्थि की वृद्धि	...	...	२३८

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

अध्याय	विषय			पृष्ठ
द्वादश अध्याय—पथरी रोग		...	...	२४२
	पित्त-पथरी	...	...	२४२
	मूत्रयंत्र की पथरी	...	...	२४८
	मूत्राशय की पथरी	...	...	२५२
त्रयोदश अध्याय—अल्पदृष्टि		...	...	२५३
	समीपदृष्टि	...	...	२६३
	दूरदृष्टि	...	...	२६४
	बुढ़ापे की क्षीणदृष्टि	...	...	२६५
चतुर्दश अध्याय—दंत रोग		...	...	२६६
	पायरिया	...	...	२७३
पंचदश अध्याय—बालों के रोग		...	...	२७७
	रूसी	...	...	२८३
षष्ठदश अध्याय—विभिन्न रोग		...	...	२८६
	करनरी थ्राम्बसिस	...	...	२८६
	एलर्जी	...	...	२९१
सप्तदश अध्याय—प्रयोग-विधि		...	...	२९६
	हृदय की बीमारी और प्राकृतिक चिकित्सा			३०९

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

पुराने रोगों की गृह-चिकित्सा

प्रथम अध्याय

पुराने रोग और उनका प्रतिकार

जब हम लोगों की देह कई तरह की बिगड़ी हुई और जहरीली चीजों के भार से दबने लगती है, तब प्रकृति तरह-तरह के तरीकों से इस जहर को देह से बाहर निकाल देना चाहती है।

कभी-कभी प्रकृति कुछ कड़े उपायों को काम में लाकर इस जहर को निकालने की कोशिश करती है। उसे नयी बीमारी (acute disease) कहा जाता है। लेकिन जब प्रकृति इतनी निर्जीव हो जाती है कि इस तरह की कोई कड़ी कोशिश नहीं कर सकती, तब वही पुराने रोग में बदल जाता है।

पुराना रोग (chronic disease) एक दिन में कभी नहीं होता। लम्बे अर्से से जब देह के भीतर बिगड़ी हुई चीजों का खजाना इकट्ठा होता रहता है, या कोई जहर देह के भीतर अधिक दिनों तक रह जाने का मौका पा जाता है और इसकी वजह से देह क्रमशः कमजोर हो जाती है, तभी पुराना रोग हो सकता है।

अनेक बार किसी नयी बीमारी को दवा के जोर से दबा देने के नतीजे में जीर्ण रोग की पैदाइश होती है। प्रकृति नयी बीमारियाँ पैदा करके देह को विकार से छुड़ाने की जो कोशिश करती है, उसकी उस चेष्टा में जब बार-बार बाधा पड़ती है, तब वही बहुधा पुराने रोगों का रूप ले लेती है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

लेकिन रोग को दवा देना ही रोग का इलाज नहीं है। हम लोगों को कोई भी रोग क्यों न हो, देह के भीतर इकट्ठे हुए तरह-तरह के विगड़े और विषैले पदार्थ ही उसके असली कारण हैं। जव उन्हें देह से निकाल दिया जाता है, तभी बीमारी आराम होती है।

इस जहर को बाहर निकालने के लिये प्रकृति ने अलग-अलग रास्ता रखा है। मामूली तौर से मल-मूत्र, पसीना और साँस के जरिये इस जहर को बाहर निकालकर प्रकृति देह को स्वस्थ रखती है। जव बीमारी हो जाय तो भी हम लोग प्रकृति के इन्हीं रास्तों के द्वारा देह के भीतर इकट्ठे हुए जहर को बाहर निकालकर उसको बीमारी से छुड़ा सकते हैं।

इसके अलावे शरीर के भीतर बीमारी से बचने और उसको छुड़ाने की अपने आप व्यवस्था भी है। हम लोग तन्दुरुस्त रहने के लिये रोज-रोज दवा नहीं खाया करते। देह के भीतर के बहुत-से यन्त्र भी हर एक विरुद्ध अवस्था से लड़ाई करके हम लोगों की रक्षा किया करते हैं। रोग के समय खून के भीतर जो जहर का सोता छूटता है, वह इन यन्त्रों को कमजोर बना देता है। इसलिये देह के विभिन्न यन्त्रों को ताकतवर बना देना और देह को नये सिरे से गढ़कर खड़ा कर देना ही इलाज का दूसरा मुख्य काम है।

जब देह को विकारों से छुड़ाने के साथ ही साथ इस तरह से देह के सभी यन्त्रों को मजबूत बना लिया जाता है, तब बहुत हालतों में आप से आप बीमारी अच्छी हो जाती है। क्योंकि देह एक आत्म-परिचालित (automatic) मशीन है। जब उसके रास्ते की बाधा हट जाती है, तब वह अपना प्रबन्ध आप ही कर सकती है।

लेकिन स्थानीय हालत को भी मामूली समझ लेने से काम नहीं चलता। अलग-अलग रोग देह में भिन्न-भिन्न तरीकों से जाहिर होते हैं और अलग-अलग रोगों में देह के भीतर अलग-अलग हालतें पैदा

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

होती हैं। इन सभी हालतों में अलग अलग उपाय करके उन कई तरह की हालतों का मुकाबला करने की जरूरत पड़ती है। इसलिये समूची देह के इलाज (constitutional treatment) की तरह ही स्थानीय इलाज (local treatment) की भी जरूरत बराबर ही पड़ती है। अर्थात् अच्छे होने के लिये तीन चीजों की जरूरत है—पहला देह को विकारों से खाली करना, दूसरा रोग की खास-खास हालतों पर नजर रखना और तीसरा देह को नये ढङ्ग से गढ़ डालना।

प्राकृतिक चिकित्सा में किसी दवा की जरूरत नहीं होती। दवा के जरिये जिस सफलता को पाने की कोशिश की जाती है, घर पर पानी, मिट्टी, गर्मी, हवा, रोशनी, आसन, कसरत, मालिश, उपवास और पथ्य वगैरह को कई तरह से प्रयोग कर हम लोग उसी सफलता को पा सकते हैं।

लेकिन प्रयोग ठीक-ठीक तरीके से होना बहुत जरूरी है, और यह भी जरूरी है कि हमेशा बीमारी के साथ मेल बैठाकर इनका इस्तेमाल किया जाय।

इलाज करने के लिये सबसे पहले यह जानना चाहिये कि बीमारी क्या है। इसके साथ आवश्यक है हर एक प्रयोग-विधि (शेष अध्याय में देखिये) को जानना और उसका लाभ समझना। जब हम इन सबको समझ-बूझ लेते हैं तब इनको जरूरत के मुताबिक इस्तेमाल करके चाहे जो भी मर्ज क्यों न हो आराम कर सकते हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

द्वितीय अध्याय

परिपाक यंत्रों के रोग

कोष्ठबद्धता
[Constipation]

कोष्ठबद्धता को सभ्य समाज का रोग कहा जाता है। संसार के बड़े-बड़े शहरों में ऐसे आदमी बहुत कम दिखाई देते हैं जो कोष्ठबद्धता के शिकार न हों। यह एक साधारण (common) रोग है। लेकिन ऐसे रोग कम ही हैं जिन्हें वह बढ़ाती न हो। इसके अलावा कोष्ठबद्धता जब दीर्घ दिन तक जारी रहे तब देह को बहुत नुकसान पहुँचाती है, खासकर इससे हर तरह के रोग उत्पन्न होते हैं (Sir John Conybeare, F.R.C.P.—Text-book of Medicine, p. 334, London, 1954)।

हम लोग जो खाते हैं उसका सैकड़ा ९८ भाग ही शरीर में शोषित होता है (Henry C. Sherman, Ph.D.—Chemistry of Food and Nutrition, p. 104, New York, 1952) एवं हमारी आँत के भीतर जो मल उत्पन्न होता है वह आता ही है देह के कोषों से (Samson Wright, M.D., F.R.C.P.—Applied Physiology, p. 814, London, 1952)। अगर यथेष्ट रूप से कोष्ठ साफ न हो तब देह की यह गंदगी (waste) देह के भीतर ही रह जाती है। प्राकृतिक चिकित्सा की भाषा में इसे विजातीय पदार्थ (foreign elements) कहा जाता है। वे देह की अन्यान्य जहरीली चीजों के साथ मिलकर शरीर के अंदर विषैली और दूषित अवस्था उत्पन्न करते हैं और वह

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

अवस्था ही शरीर के भीतर रोग-जीवाणु के विस्तार के लिये उपयुक्त जमीन (soil) तैयार करती है। इसके अलावा अगर आँत के भीतर मल दीर्घ समय तक इकट्ठा रहे तब उससे उत्पन्न विष देह में फैल जाता है (Gottwald Echwary, M.D.—Diseases of the Colon and Rectum, p. 33)। इसीलिये हम लोगों का स्वास्थ्य कोष्ठ साफ होने के ऊपर अधिकतर निर्भर करता है। जब एक साथ दो रोज तक पाखाना न हो अथवा बहुत कम हो तब समझना चाहिये कि कोई घर में आग लगाने के लिये आ रहा है और तब कोष्ठ साफ करने के लिये जल्दी से जल्दी व्यवस्था करना उचित है।

किंतु कोष्ठ साफ करने के लिये कभी भी रेचक दवाई का इस्तेमाल नहीं करना चाहिये। रेचक दवाइयों से परिपाक यंत्रों को बार-बार उत्तेजित करने के फलस्वरूप वे यंत्र क्रमशः दुर्बल हो जाते हैं और उस अवस्था से ही पुरानी कोष्ठबद्धता उत्पन्न होती है (M. H. Burnier, M.D., M.R.C.S.—Habitual Constipation and its Treatment, p. 27)। खासकर कोई चर्बी जातीय पदार्थ रेचक दवाई के रूप में व्यवहार नहीं करना चाहिये। क्योंकि वह आँत के भीतर से विटामिन-ए खींचकर देह से निकाल देता है (Jesse Feiring William, M.D.—Personal Hygiene Applied, p. 335, Philadelphia, 1950)। इसके अतिरिक्त भोजन के भीतर जो डी, ई और के आदि चर्बी से पिघलनेवाले (soluble) विटामिन रहते हैं उन्हें वह खींच लेती है।

किंतु कुछ रोज तक पेट की लपेट (प्रयोग-विधि के लिये आखिरी अध्याय द्रष्टव्य) ग्रहण करने से सम्पूर्ण स्वाभाविक तौर से कोष्ठ साफ हो जाता है और कभी रेचक दवाइयों का इस्तेमाल करने की जरूरत नहीं होती। पहले पहल इसे एक घंटे के लिये एवं इसके बाद जब आदत हो जाय तब रात भर के लिये इस्तेमाल करना जरूरी है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

हिप बाथ लेने पर भी कोष्ठवद्धता में काफी लाभ होता है। ठंड की प्रतिक्रिया (reaction) से आँत की ताकत (tone) बढ़ती है एवं स्वाभाविक रूप से कोष्ठ साफ हो जाता है। किंतु वह हमेशा पेट की गरम अवस्था में लेना चाहिये। अगर पेट गरम न रहे तब व्यायाम आदि करने के बाद जब शरीर गरम हो जाय तब हिप बाथ लेना उचित है। वास्तव में ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये जिससे आँत ऐसी सबल हो जाय कि बिना प्रयत्न से दिन में दो बार मल बाहर कर दे सके। इसीलिये कोष्ठवद्धता में व्यायाम बहुत लाभदायक है। जिन सब

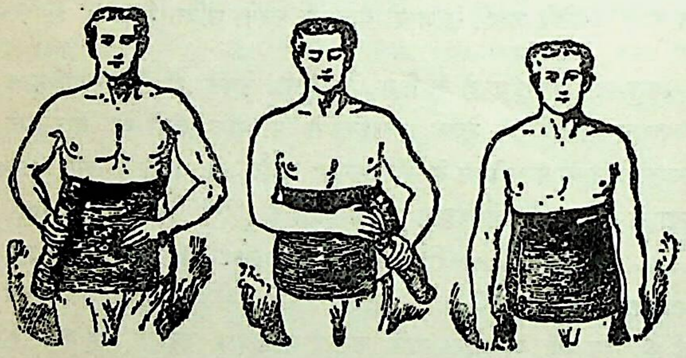

पेट की लपेट (wet girdle)

अंगों के चलाने से पेट की मांशपेशियों का व्यायाम होता है उन्हीं के ऊपर ज्यादा ध्यान रखना चाहिये। इसके लिये बिछौने के ऊपर लेटकर दोनों पैर धीरे धीरे देह के समकोण में लाना चाहिये और फिर उन्हें धीरे धीरे उतारना चाहिये। इस समय दोनों हाथ सिर के पीछे एकदम सीधा कर रखना जरूरी है। ऐसा कई बार व्यायाम करने के बाद ऊर्ध्व देह के साथ दोनों हाथों को भी धीरे धीरे उठाकर क्रमशः सिर झुकाकर हाथ से पैर की उँगली को स्पर्श करना जरूरी है। इन व्यायामों को कई बार करना उचित है। पाकस्थली (stomach) तथा आँत को सबल बनाने के लिये यह विशेष रूप से फलदायक है। सारी देह का व्यायाम भी इसके साथ किया जा सकता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

व्यायाम से भी अधिक फलप्रद होता है आसन। उत्थान-पादासन, धनुरासन, उड्डीयान, नौलि, सर्वाङ्गासन और मयूरासन (प्रयोग-विधि के

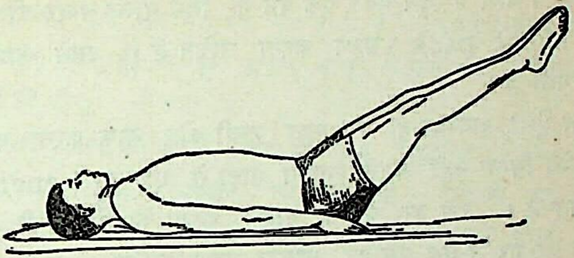

उत्थान-पादासन

लिये शेष अध्याय देखिये) आदि कोष्ठ साफ रखने के लिये विशेष रूप से सहायक हैं। हर रोज सुबह और शाम को ठंडी हवा में भ्रमण भी बहुत लाभप्रद है। इससे तमाम शरीर की स्नायविक शक्ति (tone) वृद्धि पाती है। उसके फलस्वरूप देह अपना कार्य ठीक तरह से कर सकती है।

पेट और लिवर की मालिश भी कोष्ठबद्धता में बहुत लाभदायक है। पीठ के बल लेटकर और दोनों पैर एक तकिये के ऊपर रखकर पेट की मालिश करनी चाहिये। एक हाथ पेट के ऊपर रखकर और उसे नाभि (navel) के चारों ओर घुमाकर पेट का मर्दन करना उचित है। पेट के मर्दन में नाभि को केन्द्र कर दाहिनी से बायीं ओर घर्षण करना चाहिये। लिवर का मर्दन भी उस ढंग से किया जा सकता है।

जिन सब कारणों से कोष्ठबद्धता उत्पन्न होती है उन्हें भी दूर करना चाहिये। साधारणतया मल का वेग रोकना, परिश्रम का काम नहीं करना, काफी पानी नहीं पीना, बिना चबाकर भोजन करना और ज्यादा धूमपान आदि से वह प्रकट होती है।

इन सब कारणों से शरीर के भीतर एक प्रकार की जहरीली हालत पैदा होती है और जब उस विष के आक्रमण से परिपाक यंत्र कमजोर हो

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

जाता है तब ही पुरानी कोष्ठबद्धता उत्पन्न होती है। इसीलिये सभी ओर से देह को विषमुक्त करना ही इसकी प्राकृतिक चिकित्सा है। इसलिये बीच बीच में डूस लेकर एक घंटे के लिये गीली चादर की लपेट (wet sheet pack) ग्रहण करना उचित है। इससे आशातीत लाभ पहुँचता है।

अगर ऐसी अवस्था हो कि वहुत जल्दी कोष्ठ साफ करना चाहिये तब कुछ भी चिन्ता नहीं करके गुनगुना पानी से एक डूस (enema) लेना उचित है। जैसे हर घर में चावल पकाने के लिये हण्डी रहती है वैसे ही हर घर में एक डूस का सामान रखना चाहिये। अगर डूस के पानी के साथ एक नीबू का रस मिला दिया जाय तव बहुत आसानी से कोष्ठ साफ हो जाता है (J. H. Kellogg. M.D.—The New Dietetics, p. 754, Washington, 1923)।

अगर पथ्यों पर ध्यान रहे तब कभी कोष्ठबद्धता उत्पन्न नहीं हो सकती। यदि खाद्य के भीतर यथेष्ट रूप से सीठी जातीय पदार्थ (roughage) रहे तो मल की मात्रा हमेशा ही वृद्धि पाती है, क्योंकि वह शरीर में शोषित (absorbed) नहीं होता। काफी मात्रा में फल, सलाड (कच्चा शाक) और तरकारी खाने से भोजन के साथ यथेष्ट रूप से सीठी जातीय पदार्थ आ जाते हैं। यह हमेशा स्मरण रखना चाहिये कि मैदा आदि परिशोधित खाद्य (refined food) ग्रहण से कोष्ठबद्धता हमेशा बढ़ जाती है।

कुछ फल विशेष रूप से कोष्ठ साफ रखते हैं। इनमें बिल, अमरूद, टमाटर, पपीता, सेव, किशमिश, मनक्का, खजूर, खूबानी और अंजीर (fig) विशेष रूप से उल्लेखयोग्य हैं। खजूर छोड़कर और सब सूखे फल को बारह घंटे तक पानी में भिगोकर खाया जा सकता है। इससे वे काफी कोमल और सुपाच्य होते हैं। जिस पानी में सूखे फल भिगोये जाते हैं उसे कभी नहीं फेंक देना चाहिये और सदा ही पी लेना जरूरी है, क्योंकि उसके भीतर काफी कीमती चीजें उतर आती हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

हर रोज काफी मात्रा में पानी भी पीना चाहिये। नींद से उठकर आलस्य टूट जाने के बाद एक गिलास ठंडा पानी नीबू के रस के साथ पीया करे तब मल का वेग होता है। इसके अलावा जल पीने का सर्वश्रेष्ठ समय ही है हर प्रधान भोजन के एक घंटा पहले और जब पेट खाली रहे।

अगर भोजन में काफी मात्रा में वी-१ विटामिन (thiamin) न रहे तब बहुधा कोष्ठवद्धता आ जाती है। जिससे वह उपकारी खाद्योपादन शरीर में ग्रहीत हो इसके लिये भी व्यवस्था करनी चाहिये, क्योंकि इसके अभाव से बड़ी आँत दृढ़ रूप से संकुचित नहीं हो सकती। इस विटामिन का प्रधान उद्‌गमस्थान (source) है ईस्ट (yeast); गेहूँ का अंकुर (wheat germ), सोयाबीन, हर एक दाल, कच्चा मटर (pea), मूंगफली, दूध, चोकर समेत गेहूँ, लाल चावल, सूखा हुआ बीन, पूर्ण वार्लि, ओटमिल, अंडे का पीला भाग, काजू बादाम (cashewnut) और अखरोट (W. R. Aykroyd—The Nutritive Value of Indian Foods, pp. 28—57, Government of India Press, Delhi, 1956)।

अजीर्ण

[Dyspepsia]

[१]

संसार के लोग जिन सब बीमारियों से सबसे ज्यादा कष्ट पाते हैं अजीर्ण उनमें एक प्रमुख व्याधि है। छाती की बीमारी के बाद पेट की बीमारी से ही पृथ्वी के लोग अधिक तकलीफ पाते हैं (John Fry, M.B., B.S., F.R.C.S.—Clinical Medicine in General Practice, p. 188, London, 1954)। अजीर्ण का विभिन्न रूप से प्रकाश होता है। साधारणतया पेट दर्द,

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

वायुफुल्लता, मंदाग्नि, खट्टी डकार, गले की जलन, दस्त, कोष्ठबद्धता और पाकस्थली का भारीपन आदि लक्षण इस रोग में उत्पन्न होते हैं।

किन्तु वर्तमान समय में अजीर्ण को एक रोग के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता है और इसे हर एक रोग का एक लक्षण जैसा गिना जाता है। वास्तव में फेफड़ा, मूत्रयंत्र (kidney) व गुर्दे (liver) के रोग से बहुत अवस्थाओं में अजीर्ण प्रकट होता है। कभी कभी गठिया, वात, मधुमेह आदि रोग से अजीर्ण पैदा होता है।

देह के इन सब रोगों में जो विष खून में आ जाता है वह ही अजीर्ण उत्पन्न करता है या उन सब रोगों में प्रकृति जब देह का विष आँत के रास्ते से निकाल देना चाहती है तभी यह रोग उत्पन्न होता है (Encyclopædia Medica, Vol. XII, pp. 425—7)।

बहुत अवस्थाओं में स्नायविक कारणों से अजीर्ण उत्पन्न होता है, क्योंकि स्नायविक दुर्बलता (nervous weakness) में बहुधा पाकस्थली की संकोचन शक्ति और रसस्राव की क्षमता कम हो जाती है। किन्तु स्नायविक दुर्बलता (neurasthenia) भी पुरानी रक्त-दुष्टि (chronic toxæmia) के कारण उत्पन्न होती है (Frederick W. Price, M.D., F.R.C.P.—A Text-book of the Practice of Medicine, pp. 606-7, London, 1947)।

तब भी सिर्फ रोग से ही अजीर्ण प्रकट होता है ऐसा नहीं। इंगलैंड में कहावत है, हम लोग अपने दाँतों से ही अपनी कब्र खोदते हैं। मामूली तौर से ज्यादा खाना, असमय का भोजन, बार बार भोजन, कड़ी चीजें खाना, बहुत जल्दी जल्दी खाना, आहार के बाद ही परिश्रम और बन्द कमरे में रहना इत्यादि कारणों से शरीर के भीतर एकसी गड़बड़ी उत्पन्न हो जाती है और भोजन अच्छी तरह पचता नहीं।

भोजन जब ठीक ढंग से पचता है तभी उससे शरीर का गठन होता है। जब ऐसा नहीं होता तब वह देह के भीतर अमृत के बदले में विष

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

ही पैदा करता है। जब वह परिपाक यंत्रों को ही आक्रमण करता है और खून को दूषित कर पाचक रस (digestive juices) को कमजोर बना देता है तभी पुराना अजीर्ण पैदा होता है। सिर्फ यही नहीं, जिन सब रोगों को अजीर्ण का कारण कहा जाता है, देह की इस जहरीली हालत से उनमें से हर एक रोग पैदा हो सकता है, या पैदा होता है।

इसलिये रोग के द्वारा ही अजीर्ण उत्पन्न होता है ऐसा नहीं, अजीर्ण से भी बहुत रोग उत्पन्न होते हैं। इसके अलावा यदि भोजन ठीक से परिपाक न हो तब पुष्टि के अभाव से देह का कोई भी यंत्र दुर्वल होकर एक कठिन रोग से आक्रान्त हो सकता है। इसलिये अजीर्ण खुद खतरनाक नहीं होने पर भी ऐसा कोई रोग नहीं है जो वह उत्पन्न नहीं कर सकता।

इसलिये केवल किसी विशेष रोग को मिटाने की चेष्टा करके कभी अजीर्ण आराम नहीं किया जा सकता। खानपान, रहन-सहन की जो स्वास्थ्य संबंधी नीति है उनकी अवहेलना ही इनका प्रधान कारण है। उन्हें न सुधारकर दवा से कोई रोग आरोग्य करने पर भी फिर और एक रोग उत्पन्न हो सकता है।

इसलिये केवल पाचक यंत्र की या विशेष रोग की चिकित्सा ही इसकी चिकित्सा नहीं है। समूची देह को दोषमुक्त करने के साथ-साथ पाचक यंत्र को सबल बनाना, आहार-बिहार का स्वास्थ्य संबंधी नियम पालन करना और जो कुछ रक्त को दूषित करती, ऐसी सभी हालत और रोग को देह से निकाल देना ही अजीर्ण की प्रधान चिकित्सा है।

[२]

इसलिये पहले ही पेट को साफ कर लेना जरूरी है और ऐसी व्यवस्था करनी चाहिये जिससे पेट हमेशा साफ रहे। इसके अतिरिक्त पेट को सबल बनाना भी विशेष रूप से आवश्यक है। ऐसा करने के लिये कुछ रोज तक हर रोज रोगी के पेट के ऊपर गर्म-ठंडा (alternate

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

compress) देकर नीबू का रस मिला हुआ गुनगुना पानी से डूस लेना जरूरी है। इसके साथ रात भर के लिये पेट की लपेट (wet girdle) ग्रहण करना आवश्यक है। जिनको कुछ नहीं पचता है, पेट में आवाज होती है, वायुफुल्लता (flatulence) तथा दर्द रहे, जिनकी पाकस्थली में भोजन दीर्घ समय तक पड़ा रहता है, जिनको कोष्ठवद्धता तथा दस्त पर्यायक्रम से होता है, उनको इस उपाय से आश्चर्यजनक लाभ होता है।

जो रोगी वहुत कमजोर है उनके पेट पर सिर्फ एक बार आधे मिनट के लिये गर्म सेंक देने के बाद गीली तौलिया से घिसकर पेट ठंडा कर लेना उचित है और ऐसा एक समय में तीन बार करना चाहिये। जो रोगी सवल हों वे एक साथ ज्यादा समय के लिये गर्म-ठण्डा ले सकते हैं। पेट पर गर्म-ठंडा देने से पेट के तमाम यंत्र ही नये हो उठते हैं। गर्म-ठंडा देने के बाद ही रोगी को डूस (enema) देना चाहिये। देह के भीतर रोग मिटाने के लिये जो प्राकृतिक व्यवस्था है उनको उत्तेजित करने के लिये बड़ी आँत के साफ करने के समान और कोई उपाय नहीं है (J. H. Kellogg, M.D.—New Dietetics, p. 991, Washington, 1923)।

पहले पहल पेट की लपेट सिर्फ पेट के ऊपर एक घण्टे के लिये ग्रहण करना उचित है। इसके बाद जब आदत हो जाय तब पेट और पीठ घुमाकर लपेट रखनी चाहिये और रात भर के लिये इसे रखा जा सकता है।

हमेशा यह देखा जाता है कि अजीर्ण के रोगियों का चर्म अल्पाधिक रूप से निष्क्रिय (inactive), रक्तशून्य और ठंडा रहता है और उनके चमड़े में पसीना नहीं दिखाई देता। इस हालत में प्रकृति चमड़े के रास्ते से देह की गन्दगी दूर करने में असमर्थ हो जाती है। इसलिये हर रोज नहाने के पहले कुछ समय के लिये

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

धूपस्नान (sun bath) या तीन से सात मिनट के लिये भापस्नान लेना उचित है। अगर गर्म स्नान (hot bath) लेने के बाद आधे घण्टे के लिये घर्षण स्नान (cold friction) लिया जाय तब निराश रोगी भी नवजीवन लाभ करता है। स्नान या घर्षण स्नान के बाद अवश्य ही सूखी मालिश (dry friction) ग्रहण कर सारा शरीर गर्म कर लेना चाहिये।

बीच-बीच में रोगी को कुछ दीर्घ समय (१० से १५ मिनट) के लिये भापस्नान ग्रहण करना उचित है। उसके फलस्वरूप देह के भीतर ऐसी एक शुष्कता आ जाती है कि देह भोजन से काफी मात्रा में रस ग्रहण कर सकती है और पाखाना (stool) भी कड़ा-सा हो जाता है।

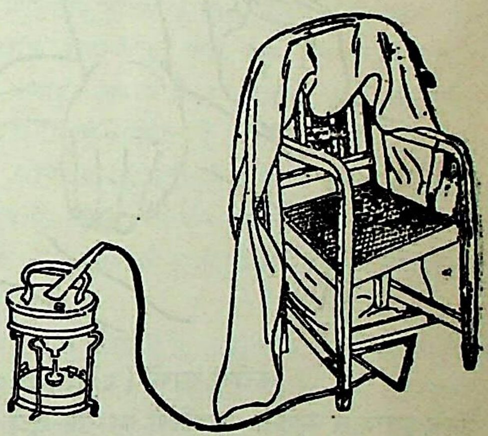

भापस्नान (steam bath)

हर रोज नियमित समय पर कुछ समय के लिये व्यायाम करना भी रोगी के लिये बहुत हितकर है, क्योंकि व्यायाम से ही देह का पुनर्गठन होता है। पहले पहल बहुत कम समय के लिये व्यायाम ग्रहण कर क्रमशः व्यायाम का समय बढ़ाना चाहिये। पेट का व्यायाम उनके लिये बहुत जरूरी है; किन्तु व्यायाम से भी यौगिक आसन ज्यादा लाभदायक है। कुछ रोज तक यौगिक आसन ग्रहण करने से मामूली

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

अजीर्ण सदा के लिये मिट जाता है (पेट के व्यायाम तथा आसनों के लिये कोष्ठबद्धता देखिये)।

मर्दन ग्रहण करने से रोगी को काफी लाभ होता है। वह विशेषकर पेट और लिवर पर ग्रहण करना चाहिये। अमेरिका के एक डाक्टर अजीर्ण के रोगियों को गारंटी देकर आराम करते थे। इलाज शुरू करने के पहले वे मरीजों से यह शपथ करवा लेते थे कि वे इलाज का तरीका किसी के सामने जाहिर नहीं करेंगे।

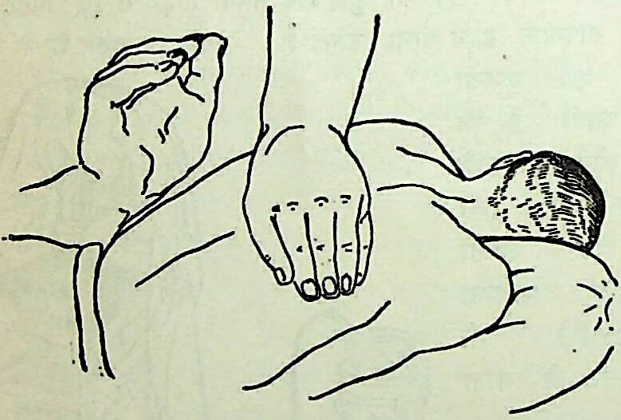

कटोरी थपकी (clapping)

उनके इलाज से बहुत-से आदमियों का रोग छूटा और उनको बहुत रुपया मिला। अन्त में एक दिन खुद उनका ही परलोक से बुलावा आया। तब उन्होंने सबको बता दिया कि उनके अद्भुत इलाज के तरीके में और कुछ भी नहीं था, रोज सुबह और शाम को कटारे की तरह बनाकर उससे पेड़ू पर धीरे-धीरे घुमा-घुमाकर आघात करना ही सब कुछ था (Alack—Everyday Ailments and their Treatment at Home, p. 51)।

[३]

रोगी को हर रोज नीबू के रस के साथ काफी मात्रा में पानी पीना

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

चाहिये। इससे देह भीतर से धुल जाती है और काफी मात्रा में दूषित पदार्थ देह से बाहर हो जाते हैं। हर रोज कम से कम दो नीबू का रस जल के साथ पीना चाहिये। हमारी देह में जो विष पैदा होते हैं वे सब ही एक अम्ल जातीय पदार्थ हैं। नीबू का रस मुँह में अम्ल होने पर भी हजम होने के बाद एक क्षार-युक्त पदार्थ में बदल जाता है (Lucius Nicholls, M.D.—Tropical Nutrition and Dietetics, p. 49, London, 1951) और देह का अम्ल-विष ही नष्ट कर देता है।

बीच-बीच में रोगी सिर्फ नीबू के रस के साथ पानी पीकर उपवासी रह सके तो उसे बहुत लाभ होता है। पहले पहल एक वक्त या एक रोज उपवास देकर जब क्रमशः उपवास में अभ्यास हो जाय तब कई रोज लगातार उपवास किया जा सकता है। दीर्घ उपवास से देह में इकट्ठी हुई जहरीली चीजें जल जाती हैं (डा० चुन्नीलाल बसु, एम० बी०, खाद्य, १३३ पृष्ठ) और देह की पाचन शक्ति तथा भोजन से रस खींचने की ताकत बढ़ जाती है। इसलिये उपवास सभी पेट के रोगों के लिये हितकर है।

इस रोग में प्रायः ही दस्त होता है। इस समय प्रकृति वास्तव में देह सफाई के काम में नियुक्त रहती है; इसलिये तब देह कुछ भी ग्रहण नहीं करना चाहती। जब रोगी को स्वाभाविक ढङ्ग से भूख आती है तब समझना चाहिये कि रोगी ग्रहण करने की अवस्था में आ गया है। तब रोगी को कच्चा नारियल का पानी, मट्ठा, छेना का पानी इत्यादि देना चाहिये। सभी हालत में मट्ठे के ऊपर जोर देना जरूरी है। काफी मात्रा में मट्ठा और दही ग्रहण करने से आँत के भीतर जो खतरनाक जीवाणु रहते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं (E.W.H. Cruickshank, M.D., D.Sc., Ph.D., M.R.C.P.—Food and Nutrition p. 264, Edinburgh, 1951) और उनके बदले में स्वास्थ्य के लिये हितकर जीवाणुओं का संस्थापन होता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

कोई-कोई रोगी ऐसा होता है जिसको स्वभावतः ही बहुत बार और ज्यादा मल-त्याग होता है। किसी किसी का मल कभी भी बाँधा हुआ नहीं होता है। साधारण अवस्था में चूड़ा का माड़, भूँजा हुआ चावल, उबाला हुआ कच्चा केला, महीन अरारोट का बिस्कूट तथा आँवला का रस मल को कड़ा बना देता है। चिकित्सा के शुरू में जब स्वभावतः ही पतला दस्त होता है तब इन सब चीजों को अल्प मात्रा में कुछ रोज के लिये ग्रहण किया जा सकता है। इसके बाद पेट अच्छा होने के साथ-साथ इन सब पथ्यों का त्याग करना उचित है।

पेट के रोगियों के खाद्य में विटामिन बी-१ (थियामिन) काफी परिमाण में रहना चाहिये, क्योंकि यह भूख को बढ़ाती है, भोजन हजम तथा परिग्रहण करने में सहायता करती है, पाचक यंत्रों को कार्य करने योग्य रखती है तथा उनकी सजीवता बढ़ा देती है। इसके सिवाय खाद्य इस प्रकार का होना चाहिये जिससे सब विटामिन और आवश्यकीय धातव लवण शरीर में ग्रहीत हो जाय। इसलिये विभिन्न फल, शाकसब्जी और दही इत्यादि के ऊपर जोर देना उचित है।

परन्तु रोगी का भोजन हमेशा ही काफी हल्का होना आवश्यक है। इसलिये रोगी को हमेशा पुराने चावल का अन्न और पेट नरम रहने से तरकारी का गाढ़ा शेरवाँ (vegetable puree) खाना चाहिये। अन्यान्य समय तरकारी उबालकर खाना कर्तव्य है। पतले दस्त रहने से फल हमेशा त्याग करना चाहिये। किन्तु पेट कुछ अच्छा हो जाने से ही धीरे-धीरे फल और फल का रस काफी मात्रा में ग्रहण करना उचित है। इसके सिवाय यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि पथ्य अनुत्तेजक और अधिकतर क्षारधर्मी (क्षारयुक्त) हो। रोगी का भोजन हमेशा ढककर पकाना चाहिये। क्योंकि खाद्य का विटामिन बी-१ (B-1) प्रकाश से नष्ट हो जाता है (Jesse Feiring Williams, M. D.—Personal Hygiene Applied, p. 205, Philadelphia, 1950)।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

रोगी को सब प्रकार के दुष्पाच्य और उत्तेजना पदार्थ त्याग करना कर्तव्य है। इसलिये पेट के रोगियों को तेलयुक्त मछली, चर्बीयुक्त मांस, दाल, सब प्रकार की भूँजी हुई चीजें, मिठाई, खीर, हलदी और जीरा के सिवाय सब प्रकार के मसाले, नये चावल के अन्न, पुलाव, ताजी पावरोटी, चाय, काफी, ईस्ट और दूकान के सब प्रकार के भोजन त्याग करना आवश्यक है।

हर एक खाद्य को ही रोगी को विशेष रूप से चबा-चबाकर ग्रहण करना चाहिये। चरक ने कहा है कि दाँत से बिना चबाकर भोजन नहीं करना चाहिये (सूत्रस्थानम्, ८/१८)। यह याद रखना कर्तव्य है कि जितने अधिक समय तक मुँह में खाद्य रखा जाय, उतना ही कम समय तक वह पाकस्थली में रहता है। बिना चबाकर खाने से बार्ली भी हजम नहीं होती। इसलिये पेट की बीमारियों में जो सब पथ्य चबाकर खाये जाँय, बहुत अवस्था में वे ही उत्तम हैं (Margery Abrahams, M.D., M.Sc., and Elsie M. Widdowson, D.Sc., Ph.D.—Modern Dietary Treatment, p. 57, London, 1951)।

अजीर्ण के रोगियों को आहार संबंधी स्वास्थ्यनीति हमेशा मानकर चलना कर्तव्य है। प्रतिदिन नियमित समय पर भोजन, भूख रखकर भोजन, सुपाच्य पदार्थ का आहार, प्रफुल्ल मन के साथ आहार और रात्रि को कुछ कम आहार उनके लिये हितकर है।

रात्रि को सात-आठ घंटे के लिये रोगी को सोना आवश्यक है। अजीर्ण के रोगियों के लिये अच्छी नींद आरोग्य लाभ करने का दूसरा प्रधान उपाय है। उद्वेग उत्तेजना, जल्दीबाजी, दुश्चिन्ता, दुर्भावना और भय इत्यादि भी हमेशा वर्जनीय हैं।

इस रोग में कमजोर परिपाक यंत्रों को उत्तेजित करने के लिये रोगी पाचन शक्ति को बढ़ानेवाली हर तरह की गोली, टॉनिक और दवाई

2

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

का इस्तेमाल करते हैं। ये सब उत्तेजक दवाइयाँ कुछ समय के लिये पाचक यंत्रों में एकसी उत्तेजना पैदा करती हैं किंतु इस उत्तेजना की प्रतिक्रिया से जब उनमें अवसाद (depression) उतर आता है तब कोई भी खाना नहीं पचता।

इसलिये इस रोग में देह को दोषशून्य तथा सबल बनाने के लिये सभी ओर से चेष्टा करना ही कर्तव्य है।

इन सब व्यवस्थाओं से अजीर्ण ही आरोग्य होता है ऐसा नहीं। जिन सब रोगों को अजीर्ण का कारण कहा जाता है, वे भी चले जाते हैं। तब भी अगर रोगी को मधुमेह, गठिया या स्नायविक दुर्बलता आदि रोग रहे तो उन सब रोगों पर ध्यान रखकर ही हमेशा इलाज करना उचित है। इसलिये उन सब रोगों का इलाज देखिये।

अम्लरोग

[Acid Dyspepsia]

[१]

जो सब रोग प्रायः दिखाई पड़ते हैं उनमें अम्लरोग अन्यतम है। यह एक प्रकार का अजीर्ण रोग है और अजीर्ण के समान ही यह एक व्यापक व्याधि है।

इस रोग में पाकस्थली का पाचक रस बहुत तेजी से निकलता है। इसलिये अम्ल के रोगियों को भूख साधारणतः थोड़ी अधिक रहती है। बहुत कुछ इसीलिये वे थोड़ा अधिक भोजन करते हैं और उसके फलस्वरूप अत्यन्त कष्ट पाते हैं। किन्तु रोग अधिक बढ़ जाने पर सामान्य कुछ भोजन करते ही अम्ल हो जाता है। साधारणतः भोजन के बाद घंटे भर रोगी अच्छा रहता है। इसके बाद पाकस्थली में एक भार मालूम पड़ने लगता है और कभी-कभी दर्द भी हो जाता है। घंटा भर इस

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

तरह की तक़लीफ मालूम होने पर छाती के ठीक बीच में जलन आरम्भ होती है और पाकस्थली का संचित रस छाती होकर गले में आ पहुँचता है। तब गला जल जाने जैसा मालूम पड़ता है। इस अवस्था में किसी किसी समय उल्टी हो जाती है। उल्टी में जो कुछ निकल आता है वह भी अत्यन्त खट्टा लगता है। दीर्घ समय तक यह अवस्था रहने पर दाँत प्रायः नष्ट हो जाते हैं एवं बहुत अवस्थाओं में पाकस्थली का घांव उत्पन्न होता है।

यह रोग विभिन्न प्रकार का होता है। शरीर की विषयुक्त अवस्था में जब पाचक रस शक्तिहीन हो जाते हैं तब भुक्त पदार्थ पाकस्थली में जाकर सहज ही सड़ जाते हैं एवं अमृत के बदले विष उत्पन्न करते हैं। तब प्रकृति यह विष शरीर में नहीं ग्रहण कर गले की राह बाहर निकाल देने की चेष्टा करती है। इसके फलस्वरूप ही जी मिचलाना और उल्टी आदि होती हैं। बहुत अवस्था में कोष्ठबद्धता से यह उत्पन्न होता है। दीर्घ समय की कोष्ठबद्धता से जब रक्त विषाक्त हो उठता है, तब किसी किसी अवस्था में प्रकृति रक्त का विष पाकस्थली की राह खाली कर देना चाहती है। कभी कभी रक्त अम्ल की मात्रा बढ़ जाने पर प्रकृति पाकस्थली की राह अम्ल-विष निकाल देने की चेष्टा करती है। रक्त का क्षार और अम्ल का अनुपात स्वाभाविक अवस्था में लाने के लिये प्रकृति की यह एक विशेष चेष्टा मात्र है (The British Encyclopædia of Medical Practice, Vol. I, p. 105, London, 1950)।

अतः, रोग केवल पाकस्थली का रोग नहीं। यह सम्पूर्ण शरीर का रोग है। यह कभी कभी प्रकट होता है केवल पाकस्थली में। अथवा यह कोई रोग नहीं है। शरीर की विकारयुक्त अवस्था का एक लक्षण मात्र है।

इसलिये जिस कारण से ये सब रोग-लक्षण उत्पन्न होते हैं उन्हें

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

दूर करना अर्थात् रक्त को विशुद्ध करना, पाकस्थली को स्वस्थ बना लेना एवं आहार-विहार की त्रुटि सुधार लेना ही इसकी प्रधान चिकित्सा है।

[२]

साधारणतः अम्ल रोगी पाचक रस का अम्लत्व नष्ट करने के लिये काफी सोडा व्यवहार में लाते हैं। सोडा उस समय के लिये अम्लत्व नष्ट करता है, सन्देह नहीं। किन्तु इसकी प्रतिक्रियास्वरूप यह पाकस्थली को अधिकाधिक अम्ल-रस उत्पन्न करने के लिये उत्तेजित करता है। अतः जिस रोग को नष्ट करने के लिये सोडा का व्यवहार किया जाता है, असल में वह सोडा उसकी वृद्धि ही कर देता है (R. N. Chopra, M.D., M.R.C.P.—A Handbook of Tropical Therapeutics, pp. 1361—6)।

इसलिये रोगी को सोडा नहीं खिलाकर सोडा के साथ डूस देना उचित है। उससे सोडा-पानी की प्रतिक्रियास्वरूप पाकस्थली के बदले बड़ी आँत से ही अधिक अम्ल-रस निर्गत होता है एवं वह डूस के पानी के साथ शरीर से बाहर हो जाता है। इसलिये सोडा के साथ कई एक दिन डूस देने से ही पाकस्थली का अम्लभाव और गले की जलन आदि अपने आप कम हो जाती है। डूस देने से पहले अवश्य ही पाकस्थली के ऊपर सात से दस मिनट के लिये गर्म-ठण्डा का प्रयोग करना उचित है।

इसके अतिरिक्त रोगी को प्रतिदिन पेट की लपेट लेनी चाहिये। यह लपेट खूब ठण्डे पानी में भिगोकर अच्छी तरह निचोड़कर और ऊनी कपड़े से खूब हल्का लपेटकर व्यवहार करना आवश्यक है।

रोगी की प्रबल अवस्था में यह प्रत्येक एक घंटे पर बदलकर दिन में तीन-चार बार और बिना बदले सोते समय सारी रात के लिये प्रयोग करना उचित है। पेट में गर्म-ठण्डा प्रयोग के बाद यह लपेट कुछ दिन लेने पर आँत की रस खींचने की शक्ति बढ़ जाती है, भुक्त पदार्थ सहज ही हजम होते हैं एवं सब तरह से पेट के स्वास्थ्य में उन्नति होती है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

इस रोग में समय-समय पर भोजन के बाद रोगी बहुत तकलीफ और कभी-कभी दर्द अनुभव करता है। इस अवस्था में प्रतिदिन भोजन के आधे घंटे बाद आधे घण्टे के लिये पेट की लपेट के ऊपर गर्म थैली रखना उचित है। आधे घण्टे के बाद गर्म थैली हटाकर दो घण्टे के लिये पेट की लपेट व्यवहार करनी चाहिये। भोजन के बाद अम्ल के रोगियों को जो उल्टी होती है, उसे रोकने के लिये भी यही सर्वश्रेष्ठ उपाय है।

अम्लरोग में विशेष रूप से लाभ होता है वाष्पस्नान से। प्रत्येक सप्ताह में एक दिन बारह से पन्द्रह मिनटों के लिये रोगी को वाष्पस्नान के प्रयोग करने से रक्त का अम्लत्व बहुत अंश में नष्ट (neutralised) हो जाता है एवं पसीने के साथ तथा दूसरे रास्तों से यथेष्ट अम्ल-विष शरीर से बाहर निकल जाता है। प्रत्येक सप्ताह में रोगी को एक घण्टे के लिये गीली चादर की लपेट देने से भी रोगी को अत्यन्त लाभ होता है। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन एक बार पन्द्रह से बीस मिनटों के लिये उष्ण पादस्नान देकर रोगी को स्नान करा देना उचित है। इस रोग में उष्ण पादस्नान अत्यन्त फलप्रद है।

उष्ण पादस्नान (hot foot bath)

यह रक्त का दबाव पाकस्थली से पाँव की ओर घुमा देता है और अविलम्ब पाकस्थली को हल्का कर देता है। इस प्रकार प्रतिदिन जिस किसी एक गर्म बाथ के बाद स्नान करके स्नान के बाद फिर सूखी मालिश

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

के द्वारा देह को लाल और गर्म कर लेना आवश्यक है।

रोगी को प्रतिदिन कम से कम दो बार स्नान करना चाहिये। इसके अतिरिक्त बिछावन छोड़ने के कुछ ही देर बाद एवं रात में सोने के पहले गीली तौलिया से सारा शरीर पोंछ लेना उचित है। इससे ठंड की प्रतिक्रियास्वरूप सारे शरीर में रक्त फैल जाता है। अतः पाकस्थली हल्की हो जाती है। इसके द्वारा रोगी गाढ़ी नींद सोता है एवं इस रोग में जो जलन रहती है वह गायब हो जाती है। अम्ल के रोगी साधारणतः हिचकी से पीड़ित रहते हैं, किंतु दिन में दो बार स्नान करने से हिचकी प्रायः कभी आती नहीं एवं बहुत बार स्नान से ही हिचकी दूर हो जाती है।

खुली जगह में व्यायाम इस रोग में अत्यन्त फलप्रद है। खुली जगह में व्यायाम करने से शरीर की दहन क्रिया (oxidation) विशेष रूप से बढ़ जाती है। अतः शरीर में अम्ल-विष की उत्पत्ति होनी ही कठिन हो उठती है। रोगी यदि इतना दुर्बल हो कि उसके लिये व्यायाम करना ही असम्भव हो तब प्रतिदिन दोनों शाम खुली जगह में टहलना चाहिये। प्रतिदिन सूर्योदय के पूर्व शय्या त्याग कर टहलने के लिये निकल जाना आवश्यक है। यथासम्भव दीर्घ समय तक रोगी को खुली जगह में रहना उचित है। दिन में दो बार रोगी को श्वास-प्रश्वास का व्यायाम करना चाहिये।

अम्ल के रोगी को प्रतिदिन यथेष्ट पानी पीना उचित है। बहुत बार अम्ल के रोगी को प्यास ही नहीं लगती। किंतु दिन दिन तापस्नान लेने के बाद रोगी को यथेष्ट प्यास लगती है। तब क्रमशः आदत डालकर पानी की मात्रा बढ़ानी चाहिये। सुबह में बिछावन छोड़ने के बाद ही एक ग्लास गर्म पानी पीना आवश्यक है। प्रत्येक प्रधान आहार के एक घण्टा पहले और एक घण्टा बाद भी आधा ग्लास गर्म पानी धीरे धीरे पीना चाहिये। बिना कष्ट के जितना अधिक गर्म पानी पिया जा सके; पानी उतना गर्म होना उचित है। इस

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

तरह गर्म पानी पीने से पाकस्थली में अम्ल का उत्पादन पर्याप्त मात्रा में रुक जाता है और पेशाब भी साफ हो जाता है। पहले चिकित्सा आरम्भ करने के बाद कुछ दिनों तक इसी प्रकार गर्म पानी पीना उचित है। इसके बाद अम्ल जब कम होने लगे, तब क्रमशः पानी की गर्मी कम करके अन्त में ठंडा पानी पीना चाहिये। किंतु चिकित्सा के प्रारम्भ में ठंडा पानी खूब कम पीना उचित है। कारण ठंडा पानी पीने से पाचक रस का निकलना अत्यधिक बढ़ जाता है। पीने के पानी के साथ बीच बीच में थोड़ा-सा विशुद्ध मधु या मौसमी आदि मीठे फलों का रस मिला लिया जा सकता है।

[२]

रोगी के पथ्य पर भी विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। उसका प्रधान पथ्य होना उचित है ताजे और सूखे फल, फल का रस, सलाद (salad), हरे सागों का सूप (vegetable soup), उबाली तरकारी और सहन हो सकने पर धारोष्ण दूध। फलों में रोगी खीरे का रस, मौसमी, फूट, तरबूज, मिश्रीकन्द, खरबूज, पपीता, डाब का गूदा, सेव और सेव का रस, खूब मीठी नारंगी, छिलके में काला दाग पड़ा हो इतना पका केला, सपाटू, शरीफा, किशमिश, खजूर, अखरोट और खूबानी इत्यादि ले सकता है। प्रारम्भिक अवस्था में फलों में केवल मीठे एवं खट्टे नहीं हो, ऐसे फल खाना उचित है। इसके बाद चिकित्सा के साथ साथ पाकस्थली का अम्लत्व जितना कम होता जाय, खट्टे जाति के फलों के ऊपर उतना जोर देना उचित है। साधारणतः अम्ल के रोगियों को सुबह के समय पेट में अम्लभाव नहीं रहता। इस समय पीने के पानी के साथ बहुत थोड़ा-सा नीबू का रस व्यवहार करना उचित है। नीबू क्षारयुक्त पदार्थ होने के कारण रक्त का अम्लत्व नष्ट करता है। एक विशेषज्ञ ने कहा है, अम्लरोग के साथ युद्ध करने के लिये नीबू अत्यन्त मूल्यवान खाद्य है। किंतु जब पाकस्थली में अम्ल-रस

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

उत्पन्न होता है तब नीबू का रस या कोई खट्टे जाति के फल या फल का रस लेना उचित नहीं। खाने से उद्वेग में वृद्धि हो जाती है। रोग की प्रबल अवस्था में सब प्रकार के खट्टे जाति के फल एवं सब प्रकार की खट्टी चीजें ही वर्जित हैं।

तरकारियों में रोगी को परवल, कच्चा पपीता, तरोई, वतिया, वैगन, साग की डाँट, लौकी, स्क्वायस् थोड़ा-सा आलू दिया जा सकता है। रोगी बथुआ, चौलाई, मेथी और लेट्स इत्यादि सभी साग ले सकता है। किंतु प्रारम्भिक अवस्था में पालक के साग से परहेज रखना चाहिये।

यह देखा गया है कि सेव, खूब पके केले, खरबूज, मीठी नारंगी और आलू शरीर के अम्लत्व को कम करने में विशेष रूप से सहायता करते हैं (Hobart A. Reimann, M.D.—Treatment in General Medicine, Vol. 2, p. 264, Philadelphia, 1948)। इसलिये इन सब खाद्यों के ऊपर विशेष जोर देना उचित है।

अम्लरोगी के लिये चर्बी जातीय खाद्य (fat) विशेष रूप से आवश्यक हैं। वे पाकस्थली में जाकर पाकस्थली को स्निग्ध करते हैं और उसके लिये पाकस्थली का अस्वाभाविक अम्ल-रस का निकलना नियमित होता है। इसलिये प्रत्येक बार अन्न खाने के कुछ ही पहले एक चम्मच ओलिव आयल पीने के बाद साधारण खाद्य ग्रहण करना चाहिये। इससे पाकस्थली में अम्ल का उत्पादन जितना कम हो जाता है, उतना ही अधिक साफ हो जाता है और शरीर पुष्ट होता है (Frederick W. Price, M.D., F.R.C.P.—A Text-book of the Practice of Medicine, p. 622, London, 1947)। कारण ओलिव आयल अत्यन्त पुष्टकर और हल्का रेचक पथ्य है। अम्ल के रोगी के लिये नारियल बहुत अच्छा पथ्य है। कारण नारियल का ५० प्रतिशत अंश ही चर्बी जाति का खाद्य है। कोष्ठबद्धता रहने पर पीसे हुये नारियल का दूध भी अम्ल के रोगी के लिये बहुत अच्छा पथ्य है। भोजन के एक घंटा पहले यह बहुत थोड़ा-सा (४ ड्राम) खाने पर पथ्य और औषधि

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

दोनों का काम होता है। बीच-बीच में मूढ़ी के साथ नारियल खाना उसके लिये अच्छी व्यवस्था है। किंतु प्राणिज सब प्रकार के चर्बी जातीय पदार्थ ही सतर्कता के साथ वर्जन करने चाहिये। कारण वे अत्यन्त अम्ल उत्पन्न कर देते हैं।

किंतु जो सब द्रव्य पाकस्थली को उत्तेजित करके अम्ल-रस उत्पन्न करने में सहायता करते हैं या रक्त में अम्ल के अंश की वृद्धि करते हैं अथवा कोष्ठबद्धता लाते हैं, उनमें विशेष रूप से परहेज रखना आवश्यक हैं। इसलिये मिर्च और सरसों आदि मसाले, सभी प्रकार के गर्म मसाले, प्याज, लहसुन, चाय, कोका, काफी, मांस, दही, दाल, चीनी एवं कचौड़ी और सिंघाड़ा आदि का परित्याग करना आवश्यक है। नमक भी यथासम्भव कम खाना उचित है। शराब की बात लिखी नहीं गई। कारण शराब किसी अवस्था में भी ग्रहण करना उचित नहीं।

रोगी के आहार की मात्रा और समय नियमित होना आवश्यक है। अधिकांश समय उन्हें ही अम्लरोग होता है, आहार के सम्बन्ध में जिनका कोई नियम नहीं। इसलिये प्रतिदिन नियमित समय पर समान परिमाण में भोजन करना ही अम्लरोग की चिकित्सा में पहला पाठ है।

रोगी को एक बार बहुत अधिक पेट भरकर खाना कभी उचित नहीं। बार बार थोड़ा थोड़ा करके खाना ही उसके लिये सर्वोत्तम है। बहुत अधिक गर्म खाद्य सदा वर्जित है। चिकित्सा के प्रारम्भ में दो-तीन दिन रोगी को केवल खीरे का रस पीकर रहना उचित है। उससे पेट तेजी से स्वस्थ हो उठता है।

अम्लरोग में सरसों के तेल का परित्याग कर नारियल का तेल व्यवहार करना चाहिये। रोगी को सब प्रकार की आहार की स्वास्थ्य-नीति मानकर चलना उचित है। इसके लिए अजीर्ण रोग द्रष्टव्य।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Arya Samaj Foundation Chandigarh

पाकस्थली का घाव
[Gastric Ulcer]

[१]

हम लोगों के बाहर के चमड़े में जैसे घाव उत्पन्न होते हैं, भीतर में भी वैसे ही उत्पन्न हो सकते हैं। जब यह घाव पाकस्थली के भीतर-वाली दीवाल में उत्पन्न होती है, तब उसे पाकस्थली का घाव कहा जाता है।

दर्द ही इस रोग का प्रधान लक्षण है। साधारणतः भोजन के पहले ही रोगी को दर्द अधिक रहता है और खाने के बाद दर्द उतर जाता है। घाव के ऊपर जो स्नायु खुलते हैं, उनके पाकस्थली के पाचक रस के सम्पर्क में आने के कारण ही यह दर्द होता है, इसलिये पाकस्थली में अम्लत्व (acidity) जितना अधिक रहता है, दर्द उतना ही अधिक होता है। छाती की हड्डियाँ जहाँ खत्म हुई हैं वहीं अथवा नाभी के थोड़ा ऊपर एवं कभी कभी पीठ के ठीक बीचोबीच में यह दर्द मालूम पड़ता है। रोगी दबाने पर बहुत दर्द अनुभव करता है और कसके कपड़ा बाँधकर पहन नहीं सकता। दर्द के साथ प्रायः ही उल्टी रहती है। घाव के स्थान में जिस उत्तेजना का संचार होता है वही उल्टी का उद्रेक करती है। किंतु उल्टी हो जाने पर रोगी बहुत समय अच्छा अनुभव करता है। कभी कभी रोगियों को खून की उल्टी होती है। घाव के भीतर की कोई रक्त-प्रवाहिनी नली (blood vessel), पड़ जाने से ही साधारणतः रक्तस्राव हो जाता है। रक्त फेफड़ों से नहीं आकर पाकस्थली से आ रहा है इसके समझने का सहल उपाय यही है कि, पाकस्थली से रक्त आने पर रक्त कुछ कुछ काले रंग का होता है, रक्त के साथ खाद्य पदार्थ मिले होते हैं और उसमें रक्त का दो-एक चक्का-चक्का-सी होते हैं। इस रोग में रोगी की जीभ रक्ताभ होती है और रोगी को प्रायः ही कोष्ठबद्धता रहती है

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

पाकस्थली में जो घाव होता है वह साधारणतः घेरे में एक-चौथाई इंच से एक इंच तक का होता है।

साधारणतः बहुत अधिक ठंडा अथवा गर्म खाद्य खाना और बेहद चाय, काफी और मद्यपान से यह रोग उत्पन्न होता है। किन्तु थोड़ी चाय या काफी पीने या तनिक गर्म खाना खाने से ही पाकस्थली में घाव उत्पन्न होता हो, ऐसा नहीं। जब रक्त दूषित और विषाक्त हो उठता है और उसके फलस्वरूप पाकस्थली की श्लैष्मिक झिल्ली दुर्बल हो पड़ती है तभी यह रोग प्रकट होता है। इसलिये बहुत दिनों तक जो अम्लरोग से पीड़ित रहते हैं उन्हें ही साधारणतः यह रोग हो जाता है। अम्लरोग में रक्त की दूषित अवस्था जैसे पाकस्थली की श्लैष्मिक झिल्ली को दुर्बल कर देती है, वैसे ही पाकस्थली की श्लैष्मिक झिल्ली दुर्बल हो जाने पर पाचक रस सहन कर नहीं पाती और इसके फलस्वरूप बहुत बार घाव उत्पन्न होता है। किसी किसी समय अम्लरोग के अतिरिक्त दूसरे प्रकार से भी रक्त के दूषित होने पर यह रोग उत्पन्न हो सकता है। अतः, घाव नीरोग करने की चेष्टा ही केवल इसकी चिकित्सा नहीं। रोग के कारण यदि शरीर में रह जाता है, तब एक स्थान का घाव अच्छा होने पर भी दूसरे स्थान में वह प्रकट हो सकता है। वस्तुतः केवल स्थानीय चिकित्सा करके कभी इस रोग को बहलाया नहीं जा सकता। कुछ दिन पूर्व इस सम्बन्ध में जो अनुसन्धान हुआ है उसमें देखा गया है कि केवल औषधि द्वारा चिकित्सा में सैकड़े ४६ से लेकर ९३ रोगियों का रोग एक या एक से अधिक बार फिर उभर आता है (David J. Sandwiss, M.D., F.A.C.P.—Peptic Ulcer, p. 427, Philadelphia, 1951)। इसलिये स्थानीय चिकित्सा (local treatment) के साथ शरीर को विकार-रहित कर लेना ही इसकी प्रधान चिकित्सा है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

[२)

इस रोग की प्रवल अवस्था में पहले ही रोगी के पेट को साफ कर लेना आवश्यक है और इसके बाद भी हमेशा के लिये साफ रखने की जरूरत है। किंतु इस रोग में रेचक औषधि व्यवहार करने से रोगी की मृत्यु भी हो सकती है। इसलिये प्रारम्भिक अवस्था से ही रोगी को प्रतिदिन पेट की लपेट प्रयोग करनी चाहिये। किंतु जितने दिनों तक इससे अच्छी तरह कोष्ठ साफ नहीं होता, रोग की अवस्था तीव्र रहने तक उतने दिन उसको एक बार डूस देना आवश्यक है। जिस अवस्था में कोष्ठ साफ करने के लिये पाकस्थली के अन्दर कोई रेचक औषधि या पथ्य दिया नहीं जा सकता, उस अवस्था में आँत को धो देना ही सर्वोत्तम व्यवस्था है। रोगी को सदा एक चम्मच सोडा (sodi-bi-carb) के साथ डूस देना उचित है। इससे सोडा-पानी की प्रतिक्रियास्वरूप पाकस्थली के बदले बड़ी आँत के भीतर ही अधिक अम्ल-रस आता है और वह डूस के पानी के साथ विदा हो जाता है। इस प्रकार आँत साफ रखने की व्यवस्था करने पर रोगी के दर्द आदि लक्षण प्रायः ही प्रबल हो नहीं पाते और धीरे-धीरे कम हो जाते हैं।

इस रोग की प्रबल अवस्था में दर्द ही होता है प्रधान रोग-लक्षण। रोगी का दर्द कम करने के लिये उसकी पाकस्थली के ऊपर दिन में तीन बार तापबहुल गर्म-ठंडी पट्टी (revulsive compress) प्रयोग करना आवश्यक है और उसके बाद बार-बार एक घण्टे के लिये पेट की लपेट प्रयोग करनी चाहिये। यही इस रोग की प्रधान चिकित्सा है और इस प्रकार करने से प्रायः साथ-साथ दर्द उतर जाता है। सेंक के अन्त में सेंक के स्थान पर ठंडे पानी द्वारा कुछ सेकेन्डों के लिये पोंछ देने की जरूरत है। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन दो बार एक घंटे के लिये पाँवों की पट्टी देना विशेष रूप से आवश्यक है।

इस समय उल्टी से भी रोगी बहुत कष्ट पाता है। साधारणतः ऊपर लिखी पद्धति से पाकस्थली के ऊपर गर्मी के प्रयोग से रोगी की

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

उल्टी बन्द होती है। यदि ऐसा न हो तब रोगी को बर्फ चूसने या बहुत थोड़ा-थोड़ा करके बर्फ का पानी पीने के लिये दिया जा सकता है। जिन्हें भोजन के बाद ही उल्टी हो जाती है, उनको भोजन के पहले पेट पर सेंक का प्रयोग करने के बाद पेट की लपेट व्यवहार करने से उनकी उल्टी निश्चय ही बन्द होती है। रोगी के स्तन से नाभी तक के स्थान को चारों ओर से पेट पीठ घुमाकर एक भींगा कपड़ा तीन-चार बार घुमा लाना पड़ता है। इसके बाद पाकस्थली के ऊपर एक गर्म पानी की थैली अथवा गर्म पानी की दो बोतलें रखकर एक कम्बल से यह गीली लपेट और गर्म थैली अच्छी तरह ढक देनी चाहिये। आधे घंटे के बाद गर्म थैली हटाकर इस अवस्था में रोगी को आधे घंटे तक रखना पड़ता है। इसके बाद रोगी को खाने देना आवश्यक है।

रोगी की पाकस्थली से रक्तस्राव होने पर तुरन्त रोगी को पीठ के बल चित करके लिटा देना पड़ता है। रोगी को लिटा देते ही उसके रक्त का दबाव कम हो जाता है। इसके साथ उसके शरीर के कपड़ों को ढीला कर देना उचित है। रोगी को इस तरह सुलाकर उसकी पाकस्थली के ऊपर दो-तीन तह गीली तौलिया रखकर उसके ऊपर बर्फ की थैली (ice bag) रखना आवश्यक है। बर्फ की थैली न होने पर अथवा बर्फ की थैली के बदले रोगी के पेट के ऊपर आधा इंच पतली गीली मिट्टी की पुल्टिस रखनी चाहिये। इस समय रोगी का सिर ठंडा रखकर उसके दोनों पाँव में लपेट (foot pack) का प्रयोग करना उचित है। पाँव की लपेट के नीचे बीच-बीच में एक गर्म पानी की थैली रखनी चाहिये। किंतु रोगी को कुछ-कुछ पसीना आ जाने पर ही उसके पाँवों की लपेट खोल देना उचित है। बीच-बीच में रोगी को बर्फ का टुकड़ा चूसने अथवा चाय के चम्मच से एक चम्मच बर्फ का पानी बार-बार पीने के लिये देना चाहिये।

रोग की प्रबल अवस्था में विश्राम ही प्राथमिक और एक प्रधान चिकित्सा है। जैसे चमड़े के घाव विश्राम पाते ही शीघ्र नीरोग

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

होते हैं, पाकस्थली के घाव भी वैसे ही पूर्ण विश्राम से सहज ही नीरोग बन जाते हैं। पाकस्थली को विश्राम देने का एक प्रधान उपाय ही है बिछावन पर लेटकर विश्राम लेना। कुछ ही दिन विश्राम लेने से ही घाव सूखना आरम्भ करते हैं, दर्द कम हो जाता है और प्रायः ही और कुछ करना आवश्यक नहीं होता है (John S. Richardson, M.A., M.D., F.R.C.P.—The Practice of Medicine, p. 282, London, 1951)। किंतु केवल शारीरिक विश्राम ही यथेष्ट नहीं है, मानसिक विश्राम की भी समान रूप से आवश्यकता है (Dr. Craddock, M.B., Ch.B.—An Introduction to General Practice, p. 96, London, 1953)। एक बार पाकस्थली से रक्तस्राव होने से उसे पन्द्रह दिन बिछावन पर लिटाये रखना आवश्यक है। इसके बाद प्रतिदिन थोड़े समय के लिये बिछावन से उतरने दिया जा सकता है। कभी भी रोगी को दर्द आरम्भ होने पर भी उसे सदा बिछावन पर लिटाये रखकर पूर्ण विश्राम देना चाहिये। रोग की प्रबल अवस्था में सुबह के समय रोगी की नींद खुलने पर और दोपहर में, रोगी का सिर अच्छी तरह धोकर एक घंटे के लिये दोनों पावों में लपेट देना उचित है। वह खोल देने के बाद सारा शरीर गीली तौलिया से पोंछ देना चाहिये। रात में सोने के पहले भी रोगी का सिर अच्छी तरह धोकर उसका सारा शरीर पोंछ देना उचित है।

अवस्था की उन्नति के साथ साथ रोगी का शरीर विकार-रहित करने और नीरोग बनाने की ओर ध्यान देने की जरूरत है। इसके लिये प्रतिदिन डूस, पेट पर गर्म-ठंडा, धूपस्नान या हल्का स्टीम बाथ, स्नान और गीली कमर की लपेट लेनी चाहिये; इसके अतिरिक्त सारी रात के लिये रोगी के पेड़ू पर आधा इञ्च पतली मिट्टी की ढकी हुई लपेट रखना जरूरी है। रोगी के पेट का घाव सुखाने के लिये मिट्टी की लपेट ही सर्वश्रेष्ठ चिकित्सा है। किन्तु जब तनिक भी दर्द नहीं रहे, केवल तभी

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

मिट्टी की लपेट व्यवहार करना उचित है। यह स्मरण रखना आवश्यक है कि कोष्ठ बन्द होते ही रोग लौट आ सकता है। इसीलिये किसी दिन पाखाना नहीं होते ही डूस लेना उचित है। रोगी को नीरोग होने पर क्रमवर्धमान व्यायाम (graduated exercise) का अभ्यास करना आवश्यक है और दाँत की ओर ध्यान देने की जरूरत है। यदि रोगी को पायरिया हो, तब उसके जीवाणु पेट में जाकर पाकस्थली के घाव पर आक्रमण कर सकते हैं और ऐसा होने पर नीरोग होने में विशेष देर होती है। पायरिया को नीरोग करने के लिये इस रोग की चिकित्सा द्रष्टव्य।

रोगी को प्रतिदिन शवासन और शरीर की शिथिलता (relaxation) का अभ्यास करना चाहिये। इससे शरीर के स्नायु शान्त हो जाते हैं। जिन्हें रोग की उत्कंठा नहीं, वे शीघ्र ही इस रोग से मुक्ति प्राप्त करते हैं।

रोगी को सब प्रकार की उत्तेजना, उत्कंठा और जल्दीबाजी से बचना चाहिये। यह देखा गया है कि घाव सूख जाने पर भी मन में प्रबल उद्वेग, शत्रुता का भाव या थकान आने पर रोग फिर लौट आता है (David J. Sandwiss, M.D., F.R.C.P.—Peptic Ulcer, p. 429, Philadelphia, 1957)।

[३]

इस रोग में पथ्य का नियमन चिकित्सा के ही समतुल्य है। इस रोग में रोगी को ऐसा पथ्य देना उचित है जो रोगी की पाकस्थली के लिये स्निग्धकर हो।

किंतु यह घाव होने पर रोगी को एक बार बहुत-सा खाने को न देकर बार बार पथ्य देना चाहिये। ऐसा होने से पाकस्थली में न-बहुत क्षार और न-बहुत अम्ल की अवस्था उत्पन्न होती है। इस अवस्था में पाकस्थली का अम्ल-रस घाव में पड़कर घाव में यंत्रणा उत्पन्न नहीं कर

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

पाता। अतः घाव सहज ही सूख जाता है। इसलिये रोगी के खाते ही बहुत बार दर्द उतर जाता है।

रोगी का प्रधान पथ्य कहकर कुछ भी रहना उचित नहीं। थोड़ा थोड़ा करके पहले पहल एक घंटा एवं उसके बाद दो घण्टे पर प्रतिदिन सुबह ७ बजे से लेकर रात के ७ बजे तक उसे निर्दिष्ट समय पर पथ्य देना आवश्यक है। उसके प्रत्येक बार का पथ्य कभी भी छः औन्स से अधिक होना उचित नहीं। साधारणतः तीन औन्स देना ही यथेष्ठ है।

रोगी का पथ्य भी इस प्रकार का होना आवश्यक है जिससे उसके खाद्य में किसी तरह की सीठी जातीय पदार्थ या उत्तेजक पदार्थ न रहे। कारण ये सब चीजें घाव के सम्पर्क में आकर दर्द उत्पन्न कर देती हैं।

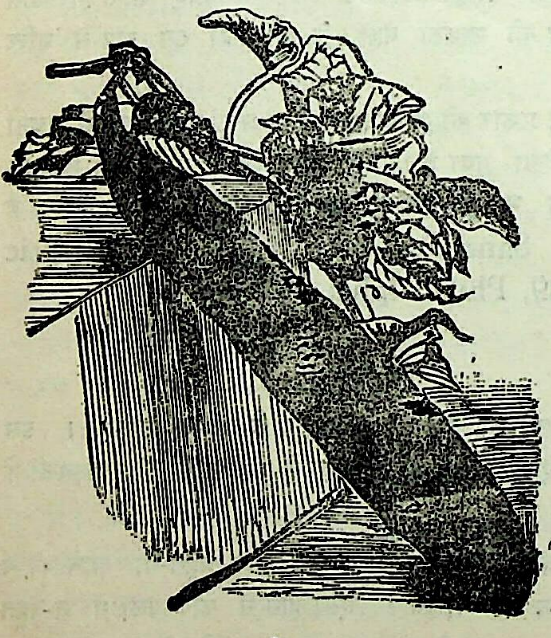

खीरा

इसलिये इस रोग में दूध ही सर्वश्रेष्ठ पथ्य है। यह पाकस्थली को तो उत्तेजित करता ही नहीं, बल्कि पाकस्थली को शान्त रखकर ही शरीर को सब तरह से पुष्ट करता है। इसके अतिरिक्त पाकस्थली के अम्लरस को नष्ट (neutralize) करता है। इसके फलस्वरूप दर्द कम हो जाता है

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

और जी मिचलाना दूर होता है (Michael G. Wohl, M.D.—Diatotherapy, p. 564, London, 1946)। दूध सदा ही न अधिक गर्म, न अधिक ठंडा होना आवश्यक है।

रोग की प्रबल अवस्था में यथेष्ट मात्रा में खीरे का रस देना उचित है। यह पाकस्थली को शान्त करता है और दर्द कम कर देता है। इसी प्रकार कुछ दिन तक दूध और खीरे का रस होना ही उचित है रोगी का प्रधान पथ्य। कभी भी साधारण रूप से रोग का दुवारा प्रकोप होने पर भी कुछ दिनों तक रोगी को दूध और खीरे का रस पिलाकर रखना चाहिये। किंतु कभी भी समूचा खीरा देना उचित नहीं। रोगी को सफेद जामुन, मिश्रीकंद, मीठा नीबू या मौसमी आदि का रस भी दिया जा सकता है। ये सब पथ्य रोगी के रक्त का विकार और पाकस्थली की उत्तेजित अवस्था नष्ट करके रोगी को स्वस्थ बना देते हैं।

अथवा रोगी को केवल नेनुआ का सूप दिया जा सकता है। इससे रोगी को बहुत लाभ होता है। थोड़ा-थोड़ा करके रोगी को पूरे दिन में तीन सेर सूप देना आवश्यक है।

रोगी के लिये मधु भी अत्यन्त हितकर पथ्य है। मधु में ऐसा कुछ है जो घाव को सहज ही सुखा देता है। यह देखा गया है बहुत-से व्यक्तियों ने यथेष्ट मात्रा में मधु खाकर इस असाध्य रोग से आरोग्य प्राप्त किया है (Bodog Beck, M.D.—Honey and Your Health, p. 134, New York, 1945)। किंतु मधु सदा पानी, फल के रस या दूध के साथ खाना उचित है।

दूसरे सप्ताह के बीचोबीच समय में एक शाम उसको भात की गाढ़ी लेई दूध के साथ दी जा सकती है। भात की गाढ़ी लेई खूब पुराने चावल का होना आवश्यक है। भात की लेई आदि के साथ क्रीम मिला सकने पर अच्छा होता है। छिलके में दाग पड़ा है इतना पका केला इस अवस्था में बहुत अच्छा पथ्य है। दूसरे सप्ताह से यह थोड़ा-सा खाया जा

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

सकता है। तीसरे सप्ताह से रोगी के पथ्य में पुराने चावल का अच्छी तरह से गला हुआ भात, हरी शाक-सब्जियों का सूप और गाढ़ा शोरवा (vegetable purree) जोड़ देना आवश्यक है। कुछ दिन बाद रोगी को परबल, नेनुआ, कोमल बैंगन और कोमल लौकी आदि तरकारियाँ दी जा सकती हैं। उबाला हुआ आलू अच्छा पथ्य है। किंतु दर्द नहीं उतर जाने तक रोगी को कड़े खाद्य देना उचित नहीं।

दर्द उतर जाने पर रोगी को प्रतिदिन कम से कम दो बार नारंगी का रस देना चाहिये। नारंगी सदा ही मीठा होना आवश्यक है। नारंगी में जो श्वेतसार जातीय पदार्थ रहता है, वह पाकस्थली की सिकुड़न दूर करता है और उसकी ज्वाला-यंत्रणा कम कर देता है। पहले तीन सप्ताह ये सभी पथ्य तीन से छः औंस करके प्रत्येक दो घंटे पर देना चाहिये।

इन सब पथ्यों के साथ दोपहर और साँझ में भोजन के समय पहले ही आधा औंस ओलिव आयल पिला देना उचित है। इससे पाकस्थली से बहुत अधिक पाचक रस निकलने नहीं पाता। अतः घाव सहज ही सूख जाता है। दूध और क्रीम लेने से भी इसीलिये लाभ हो पाता है। पाकस्थली के घाववाले रोग में देखा गया है, थोड़ा अधिक चर्बी जातीय खाद्ययुक्त पथ्य अधिकांश रोगी ही बिना तकलीफ के पचा जाते हैं। इसके अतिरिक्त ओलिव आयल और क्रीम का तापमूल्य (caloric value) बहुत अधिक है। ये खाद्य का तापमूल्य यथोचित रखने में विशेष रूप से सहायता करते हैं एवं साथ साथ ये अत्यन्त उच्च श्रेणी का पुष्टिकर खाद्य जुटाते हैं।

किसी किसी क्षेत्र में रोग की प्रारम्भिक अवस्था में कोई भी खाद्य रोगी के पेट में नहीं ठहरता अथवा खाद्यपदार्थ देने पर रोगी को बेहद तकलीफ होती है। इन सब अवस्थाओं में प्रकृति जब कुछ ग्रहण करना नहीं चाहती, तब उसे कुछ भी नहीं खाने देना उचित है। केवल सोडा के साथ रोगी को दिन में दो बार डूस देना चाहिये। उसीसे शरीर

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh
बड़ी आँत से काफी पानी खींच लेता है और शरीर में पानी की कमी नहीं होती। यदि विशेष प्रयोजन हो तब आँत की राह उसे ग्लूकोज का पानी दिया जा सकता है, किंतु ग्लूकोज देने के पहले डूस देकर आँत साफ कर लेना चाहिये। जब पाकस्थली से रक्तस्राव हो तब इसी प्रकार का पथ्य देना उचित है।

पेट थोड़ा अच्छा होते ही शरीर को नये सिरे से नीरोग बनाने की ओर ध्यान देना आवश्यक है। ऐसा नहीं होने पर यह रोग प्रायः लौट आता है। इसके लिये प्रतिदिन यथेष्ट फलों का रस, उबाली तरकारी, तरकारी का सूप और शाक-सब्जियों का कच्चा रस लेना आवश्यक है। किंतु पेट की अवस्था सोचकर इन सबको विशेष रूप से सुपाच्य बना लेना चाहिये। किशमिश आदि फल शुरू शुरू में बारह घंटा पानी में फुलाकर, उसके बाद उसे इस पानी में मसलकर छानके पीना आवश्यक है। तरकारी भी शुरू शुरू में उबालकर केवल उसका सूप पीना उचित है। इस रोग में प्रारम्भिक अवस्था में कभी भी सलाद खाना उचित नहीं। इच्छा होने पर सलाद चबाकर उसका रस चूसकर सब सीठी फेंक दी जा सकती है। किंतु शाक-सब्जी का कच्चा रस अत्यन्त फलप्रद है (William Howard Hay, M.D.—Health via Food, p. 151)। यह शुरू शुरू में एक चम्मच से प्रारम्भ करके अन्त में तीन-चार बार में रोजाना एक ग्लास तक पीना उचित है।

यह हमेशा याद रखना आवश्यक है कि पाकस्थली के घाव के पश्चात् शरीर में एक रक्ताम्लता की स्थिति वर्तमान रहती है। इसलिये इस रोग की प्रारम्भिक अवस्था में जो सब खाद्य खट्टे नहीं हैं फिर भी क्षारधर्मी हैं उन्हें ही लेना चाहिये। खीरे का रस, मिश्रीकंद का रस और मौसमी आदि का रस विशेष रूप से इसी उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। किंतु पेट थोड़ा अच्छा होने के बाद ही धीरे-धीरे आदत डालकर रोगी को प्रतिदिन यथेष्ट मात्रा में खट्टे जाति के फल लेने चाहिये।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

इसीसे रोग का मूल कारण नष्ट होता है।

जिससे पाकस्थली की दीवाल किसी प्रकार सड़ने पाय, ऐसा कोई भी खाद्य इस रोग में लेना उचित नहीं। इसलिये हल्दी छोड़कर सब मसाले, खासकर मिर्च, सरसो और गर्म मसाला, फल का छिलका और बीज, सलाद, मूली और कदीमे का साग आदि रुखड़ी सब्जियां (**rough vegetables**), सभी प्रकार का तला हुआ पदार्थ, बहुत अधिक नमक, ताजी पावरोटी, अंजीर, खूबानी, कच्चा सेव, मुनक्का, ईख, परिरक्षित खाद्य, सिरका, मांस, मांस का सूप और चाय तथा काफी नीरोग होने के बाद कम से कम एक वर्ष के लिये वर्जित करना चाहिये। चीनी और गुड़ आदि मीठे पदार्थ भी यथासंभव वर्जित रखना आवश्यक है। अर्थात् मीठे, खट्टे, नमकीन पदार्थ और मसाला आदि पाकस्थली के घाव के लिये उत्तेजक पदार्थ से जिस प्रकार परहेज करना चाहिये उसी प्रकार रूखी तरकारियां और फलों आदि से भी परहेज करना उचित है। जिन्हें धूम्रपान की आदत है, उन्हें यह आदत छोड़ देनी चाहिये। इस विषय में प्रमाणों का अभाव नहीं कि सिगरेट पीने से पाकस्थली का घाव लौट आता है (**Michael G. Wohl, M.D.—Diatotherapy, p. 568, London, 1946**)।

रोग नीरोग हो जाने पर पेट में सामान्य दर्द होने पर भी कई दिनों तक दो से ढाई घंटे के अन्तर पर रोगी को कुछ खा लेना आवश्यक है। यह विशेष प्रयोजनीय है। रोगी इच्छानुसार दूध, खीरा आदि फलों का रस और साग का सूप या कच्चा रस पी सकता है।

दर्द के समय बार-बार भोजन करने से पाकस्थली का पाचक रस घाव के ऊपर गिरकर घाव में वृद्धि नहीं कर पाता। कारण, खाया हुआ खाद्यपदार्थ वह खींच लेता है। किंतु पाचक रस को बार-बार इंधन देकर सुलगाये रखना ही इसकी चिकित्सा नहीं। बल्कि ऐसी व्यवस्था करना उचित है जिससे पाकस्थली के रस का अधिक निकलना न हो। भीतर और बाहर से शरीर को धोकर साफ करना ही इसका प्रधान

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Arya Samaj Foundation, Chandigarh

उपाय है। रोगी को बीच-बीच में उपवास करना भी नितान्त जरूरी है। रोग नीरोग होने पर क्रमवर्धमान व्यायाम (graduated exercise) करना उचित है।

रोगी को प्रतिदिन यथेष्ट रूप में पानी पीना चाहिये। दोनों शाम भोजन के बीच इसको पीना उचित है (Margery Abrahams, M.A., M.Sc., and Elsie M. Widdowson, D.Sc., Ph.D.—Modern Dietary Treatment, p. 62, London, 1951)। आहार ग्रहण करने की अन्यान्य स्वास्थ्य-विधियों का भी विशेष रूपसे अनुसरण करना चाहिये।

ऊपरी आँत का घाव
[Duodenal Ulcer]

पाकस्थली के बाद छोटी आंत (small intestine) के प्रथम अंश का नाम डिउडिनम है। इस स्थान में जो घाव होता है उसका नाम ऊपरी आंत का घाव या डिउडिनल अलसर है। पाकस्थली के दीवाल में जैसा घाव होता है, इस स्थान में भी ठीक वैसा ही एक या एक से अधिक घाव हो जाते हैं।

इस रोग का प्रधान लक्षण दर्द है। साधारणतः भोजन के आधे घंटे से तीन घंटे के बाद दर्द आता है और पँजरे के नीचे वक्षरेखा के थोड़ा दक्षिण दबाने से रोगी दर्द अनुभव करता है। कभी-कभी रोगी के पेट की मांसपेशियां कड़ी हो उठती हैं और एक टिउमर की तरह हो जाता है। किसी किसी समय रोगी को उल्टी होती है और उल्टी होने से रोगी प्रायः ही आराम अनुभव करता है। इस रोग में अधिकांश रोगियों के ही मल में रक्त दिखाई पड़ता है एवं सैकड़े २५ व्यक्तियों को रक्तस्राव होता है। इस जाति के रोगी प्रायः सदा ही कोष्ठबद्धता से कष्ट पाते हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

जिन सब कारणों से पाकस्थली का घाव उत्पन्न होता है; डिउडिनम का घाव भी उसी कारण से होता है। इसलिये पाकस्थली के घाव की जो चिकित्सा है, इस रोग की चिकित्सा भी वही है।

पुराना पेचिश
[Colitis]

[१]

पुराना पेचिश एक व्यापक व्याधि है। समस्त पृथ्वी में बहुत लोग इस रोग से पीड़ित रहते हैं। इस रोग में बड़ी आंत के भीतर सूजन उत्पन्न होती है। सूजन साधारणतः बड़ी आंत के भीतर स्थित श्लैष्मिक झिल्ली में सीमाबद्ध रहती है, किन्तु किसी किसी क्षेत्र में यह आंत की दीवाल के गहरे तन्तुओं में विस्तार प्राप्त करती है। इस रोग के द्वारा साधारणतः बड़ी आंत के नीचे का अंश आक्रान्त होता है, किंतु किसी किसी अवस्था में उसका अधिकांश भाग आक्रान्त हो जाता है। ऐसा हो जाने पर रोग अत्यन्त कठिन होता है। जब इस रोग में बड़ी आंत के भीतर घाव हो जाता है, तब उसको घावयुक्त पुराना पेचिश (ulcerative colitis) कहा जाता है।

मल के साथ बहुत अधिक आंव निकलना ही इस रोग का प्रधान लक्षण है। किंतु मल में थोड़ा आंव दिखाई देते ही उसको पुराना पेचिश कहना उचित नहीं। स्वस्थ श्लैष्मिक झिल्ली से सदा कुछ कुछ आंव निकलता है। यह निकालकर पेट में संचित विभिन्न उत्तेजक पदार्थ से आंत अपनी रक्षा आप ही करती है। इसके लिये सूखे मल के ऊपर कभी कभी जो आंव दिखाई पड़ता है, अथवा डूस के बाद जो किसी किसी समय थोड़ा आंव निकलता है, उससे कभी भी पुराना पेचिश का भ्रम करना उचित नहीं। जब यह मल के प्रारम्भ में निकलता है अथवा मल के अन्त में प्रायः ही दिखाई पड़ता है तभी उसको रोग कहकर

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

गिनना उचित है। इस रोग से आँव लोंदा लोंदा निकलता है एवं हाथ में चिपचिपा लगता रहता है। पुराने पेचिश में कभी कभी रस्सी जैसे आँव के टुकड़े निकलते हैं। इसको आँव-रज्जु (mucous string) कहा जाता है। यदि आँव में रक्त और पीब दिखाई पड़े तब सन्देह नहीं रहता कि रोगी को घाववाला पुराना पेचिश हुआ है। इस रोग में प्रायः ही कोष्ठबद्धता रहती है और उसके बाद पतले दस्त के साथ आँव निकलता है। रोगी के पेट में सब समय दर्द रहता है और गुदा-मार्ग की जलन से रोगी अत्यन्त कष्ट पाता है। जब रोगी दीर्घ अवधि तक यह रोग भोगता है, तब वह कमजोर, दुबला और रक्तशून्य तथा चिड़चिड़े मिजाज का हो जाता है।

बहुत दिनों तक वार बार रेचक औषधियों का व्यवहार, अखाद्य और कुखाद्य पदार्थों का भोजन, बहुत अधिक दुष्पाच्य पदार्थों का खाना और आहार की स्वास्थ्यनीति की अवहेलना से साधारणतः यह रोग उत्पन्न होता है। कभी कभी कोष्ठबद्धता से यह रोग प्रकट होता है। पुरानी कोष्ठबद्धता में आँत में स्थित सड़ा हुआ या कड़ा मल बड़ी आँत की दीवाल में जो उत्तेजना (irritation) उत्पन्न करती है उससे बहुत क्षेत्रों में इस रोग की सृष्टि होती है। बहुत अवस्था में जीवाणु से यह रोग होता है। किंतु ये सब जीवाणु सदा ही बड़ी आँत के भीतर वर्तमान रहते हैं। इसीके लिये ही किसी को रोग नहीं होता। दीर्घकाल तक स्वास्थ्यनीति की अवहेलना और कुखाद्य इत्यादि के ग्रहण करने से तथा रोग की दवा देनेवाली चिकित्सा आदि से जब शरीर विषाक्त हो उठता है और इसी विष से बड़ी आंत की दीवाल आक्रान्त होती है तथा उसके फलस्वरूप वह अत्यन्त दुर्बल हो पड़ती है, केवल तभी विभिन्न जीवाणु उसके भीतर घर बनाने तथा रोग उत्पन्न करने में समर्थ होते हैं। बड़ी आंत के दुर्बल हो पड़ने पर विभिन्न यांत्रिक और रासायनिक विषों (mechanical and chemical irritants) के संस्पर्श से भी बड़ी आंत के भीतर सूजन उत्पन्न हो सकती है। वस्तुतः

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

शरीर की विकारयुक्त अवस्था ही पुराने पेचिश का मूल कारण है। जब शरीर से संचित विष के द्वारा बड़ी आंत आक्रान्त होती है तथा प्रकृति उसे बाहर कर देने के लिये आंत का रास्ता पकड़ती है, केवल तभी पुराना पेचिश उत्पन्न होता है।

इसलिये दो श्रेष्ठ डाक्टरों ने कहा है, in planning treatment, attention should be addressed to the patient himself—इस रोग की चिकित्सा पद्धति निर्धारित करने में रोगी के ऊपर ही पहले ध्यान देना उचित है (James S. McLester, M.D., and William J. Darby, M.D., Ph.D.—Nutrition and Diet, p. 430, London, 1953)।

वस्तुतः जीवाणुओं के आक्रमण से उत्पन्न आंत के विभिन्न रोग की अपेक्षा रोगी की चिकित्सा करना उचित है (R. N. Chopra, B. Mukherjee and I. C. Chopra—Treatment of Tropical Therapeutics, p. 709, Calcutta, 1954)।

अर्थात् स्वास्थ्य को अच्छा बनाकर रोगी को नीरोग करना चाहिये। अन्यथा कभी यह रोग नीरोग नहीं किया जाता। इसलिये पृथ्वी की किसी भी औषधि से पुराना पेचिश दूर नहीं होता। किंतु प्राकृतिक चिकित्सा से शरीर की विकारयुक्त अवस्था नष्ट करने के साथ साथ बड़ी आंत की ओर जब ध्यान दिया जाता है, तब क्रमशः रोगी की अवस्था उन्नति प्राप्त करती है और अन्त में वह सम्पूर्ण रूप से रोगमुक्त होता है।

[२]

अन्यान्य रोगों की भांति इस रोग में भी पहले ही रोगी का कोष्ठ साफ कर लेना उचित है और उसके बाद हमेशा के लिये साफ रखना चाहिये। प्रारम्भ में ही एक डूस देकर चिकित्सा आरम्भ करना उचित

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

है। डूस जिसमें खूब ऊपर लटकाकर नहीं रखा हो और डूस का पानी जिसमें धीरे धीरे उतर आता है अवश्य ही इसकी व्यवस्था करनी चाहिये। डूस के पानी के साथ मँझोले चम्मच से एक से दो चम्मच विशुद्ध मधु मिला लेना उचित है। डूस के पहले पेट के ऊपर गर्म-ठंडा दोनों ही एक मिनट के लिये प्रयोग करके और दोनों ही एक साथ तीन बार करके इसके बाद डूस देना आवश्यक है।

किंतु इस रोग में कोष्ठ साफ रखने और पेट की रोग-प्रतिरोध शक्ति बढ़ाने के लिये पेट की लपेट के ऊपर ही विशेष जोर देना उचित है। प्रतिदिन एक बार पेट के ऊपर गर्म-ठंडा देकर रोग की प्रबल अवस्था में तीन घंटे के लिये इसका प्रयोग करना चाहिये और हर घंटे बदल देना उचित है। रोगी की अवस्था उन्नति प्राप्त करने पर यह सारी रात के लिये व्यवहार की जा सकती है।

दिन में एक बार गर्म-ठंडा हिप बाथ लेना इस रोग की एक प्रधान चिकित्सा है। दो से पांच मिनट के लिये पहले गर्म पानी में बैठकर उसके बाद इसी समय के लिये ठंडे पानी में बैठना आवश्यक है। एक ही समय इस प्रकार तीन-चार बार करना उचित है। इससे पेट नया हो उठता है और दर्द आदि बड़ी तेजी से गायब हो जाते हैं। इसके बाद आधे घंटे के लिये घर्षण स्नान ग्रहण करना चाहिये। यह सम्भव न होने पर तुरंत स्नान कर लेना उचित है। किन्तु यदि रोगी के मल के साथ रक्त आता हो तब कभी भी उसे गर्म-ठंडा हिप बाथ देना उचित नहीं। सब प्रकार की गर्म चिकित्सा से ही इस अवस्था में परहेज करना चाहिये।

रोग की प्रबल अवस्था में सुबह के समय नींद खुलने के बाद और रात में सोने के पहले एक घंटे के लिये पांवों की लपेट देकर गीली तौलिया द्वारा समस्त शरीर को पोंछ देना उचित है।

रोग की प्रबल अवस्था शान्त होने पर रोगी के शरीर को पूरी तरह से विकार-रहित करने के लिये चेष्टा करना आवश्यक है। ऐसा होने से ही रोग केवल स्थायी रूप से नीरोग हो सकता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

इसके लिये प्रतिदिन धूपस्नान या फुट बाथ या हल्का वाष्पस्नान या गीली चादर का पैक लेना चाहिये। पैंक लेने से पैक के भीतर अवश्य ही रोगी को पसीना आ जाना चाहिये।

नीबू के रस के साथ प्रतिदिन रोगी को यथेष्ट पानी पीना उचित है। इससे मूत्र के साथ शरीर का विष शरीर से पर्याप्त मात्रा में निकल जाता है। किंतु रोग की प्रवल अवस्था में कभी भी अधिक ठंडा पानी पीना उचित नहीं। इससे मल का वेग बढ़ता रहता है।

रोग की प्रबल अवस्था में सदा बिछावन में रहकर रोगी को विश्राम लेना चाहिये। यदि दिन भर में रोगी को तीन बार से अधिक पाखाना होता हो तब भी उसको बिछावन में रहकर विश्राम करना उचित है। किंतु जब प्रवल अवस्था न रहे, तब रोगी को धीरे धीरे व्यायाम और आसन का अभ्यास करना चाहिये। जिन सब व्यायामों से पेट और स्नायु सबल होते हैं वे ही इस रोग में सर्वश्रेष्ठ हैं। इसके लिये प्रतिदिन पेट का व्यायाम (कोष्ठबद्धता द्रष्टव्य) करना उचित है और उत्थान-पादासन, भुजंगासन, शलभासन, धनुरासन, योगमुद्रा, उड्डीयान, हलासन और सर्वाङ्गासन आदि का खूब धीरे धीरे अभ्यास करना आवश्यक है तथा धीरे धीरे इसमें वृद्धि करनी चाहिये।

बहुत अवस्था में यह देखा जाता है जो स्नायविक रोग से पीड़ित हैं वे ही यह रोग भूगतते होते हैं। इसलिये पुराने पेचिश को कोई कोई स्नायविक रोग का एक लक्षण जैसा मानते हैं। अतः इस रोग में आसन अत्यन्त हितकर है। साधारण आसन के अतिरिक्त रोगी को प्रतिदिन भोजन करने के और लेटने के पहले शवासन (relaxation) करना उचित है तथा सदा एक शान्त भाव का अवलम्बन करना चाहिये। उद्वेग, व्यस्तता, क्रोध और सब प्रकार की उत्तेजना से उसको बचना आवश्यक है एवं प्रतिदिन कुछ समय विशुद्ध आनन्द में व्यतीत करना उचित है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

[३]

इस रोग का पथ्य ही एक प्रधान चिकित्सा है। रोग की प्रबल अवस्था में रोगी को मट्ठा और छेने का पानी छोड़कर और कुछ भी देना उचित नहीं। इसके बाद रोगी का पथ्य इस प्रकार का होना चाहिये जो सहज पचनेवाले हों, जिसमें सीठी जातीय पदार्थ न हों (low-residue diet), जिसमें विभिन्न विटामिन, खनिज लवण और प्रोटीन यथेष्ट मात्रा में हों और जो सब तरह से सन्तुलित (well balanced) हों। रोगी का एक प्रधान पथ्य ही होना उचित है दही। इससे आंत में रहनेवाले रोग-जीवाणु विनष्ट हो जाते हैं (L. Everand Napier, Professor, New York University—The Principles and Practice of Tropical Medicine, p. 441, New York, 1946)। रोगी के शरीर में जितने प्रोटीन की जरूरत होती है वह प्रधानतः दही से संग्रह करना उचित है। उसको यथेष्ट पका केला खाना आवश्यक है। किंतु छिलके में काला दाग नहीं पड़ने से केला पूरा पका नहीं होता (William Fawcett, B.Sc.—The Banana, p. 111, London, 1913)। इस रोग में केला थोड़ा थोड़ा नमक के साथ खाना चाहिये। सदा चीनी के बदले यही खाना उचित है। चीनी के बदले मधु भी खाया जा सकता है। इस रोग में मधु विशेष सुपथ्य है। रोगी को हमेशा ही महीन पुराने चावल का भात खाना चाहिये। इस रोग में शाक-सब्जी और फल खाना साधारणतः मना किया जाता है। कारण रूखे फल और शाक-सब्जियां आंत की सूजी हुई दीवाल में उत्तेजना उत्पन्न करके रोग में वृद्धि कर देगी। किंतु यथेष्ट मात्रा में फल और शाक-सब्जी खाने पर कभी यह नहीं हो सकता। कारण वे रक्त को स्वस्थ और विकार-रहित करके हमेशा शरीर की रोग-प्रतिरोध की शक्ति को बनाये रखती हैं। रोग होने पर भी प्रतिदिन फल और शाक-सब्जी अवश्य ही लेना चाहिये। किंतु पेट की अवस्था के

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri / Agamnigam Foundation, Chandigarh

साथ मिल रखकर उनको लेना उचित है। परवल, तरोई; स्क्वायस, वैंगन, गाजर, नेनुआ, टिंडा, लौकी और खीरा उसके लिये अच्छा पथ्य है। प्रतिदिन कुछ हरा साग भी उसके लिये नितान्त आवश्यक है। किन्तु वह सदा ही सूप के रूप में देना उचित है। प्रारम्भिक अवस्था में विभिन्न तरकारियां उबालकर उसे कपड़े में छान देना चाहिये। कुछ फल का रस उसको प्रतिदिन लेना उचित है। सम्भव होने पर दो नारंगी का रस पानी मिलाकर उसको प्रतिदिन देना चाहिये। मौसमी या बिजोड़ा नीवू का रस भी उसके लिये सुपथ्य हैं। इस रोग में अच्छा पका ताजा सेव अत्यन्त हितकर है। यह देखा गया है कि कई दिनों तक रोगी को केवल सेव खिलाकर रखने से और सेव तथा पानी छोड़कर कुछ भी खाने को नहीं देने से बहुत अवस्था में कुछ दिनों में ही मल की अवस्था यथेष्ट उन्नति प्राप्त करती है (The British Encyclopædia of Medical Practice, Vol. 3, p. 581, London, 1950)। किन्तु सेव का छिलका, बीज और गूदा से हमेशा परहेज करना चाहिये।

रोगी बीच बीच में केवल अच्छा पका केला, सेव, दही, मधु और पुरानी इमली की चटनी खाकर बहुत दिनों तक रह सकते हैं। इससे खाद्य संतुलित होता है और शरीर नये सिरे से नीरोग हो उठता है।

पुरानी इमली की चटनी इस रोग में अत्यन्त हितकर है। इमली हमेशा बीस-तीस वर्षों की पुरानी होना उचित है।

रोगी को कोष्ठबद्धता रहने पर बीच बीच में दही के साथ गुड़ या मधु मिलाकर आग में पकाया बेल खाना उचित है।

इस रोग में बहुत अधिक मांस और चर्बी जातीय खाद्य, रूखी शाक-सब्जियां (coarse vegetables), मसाला, बहुत अधिक गर्म और ठंडा खाद्य पदार्थ, चाय, काफी, चीनी, बादाम, खजूर और मुनक्का इत्यादि फल, पुलाव, खिचड़ी, मिठाइयां, कचौड़ी, सिंघाड़ा, सब प्रकार की

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh
तली चीज, पालक का साग, बहुत अधिक मीठी वस्तुयें, चाकलेट आदि खाद्य वर्जनीय हैं।

रोग की प्रबल अवस्था में कभी भी दूध देना उचित नहीं और दूध के बदले दही देना चाहिये। यदि चाय के चम्मच से दो-तीन चम्मच लेक्टोज (दूध-शर्करा) के साथ दही जमाया जाय तब इससे रोग के जीवाणु के विनाश की शक्ति बढ़ती है (Henry C. Sherman, Ph.D. D.Sc., and Caroline Sherman Larford —An Introduction to Food Nutrition, p. 80, New York, 1943)। जब खाद्य सहज ही सड़ जाता है और पेट में वायु उत्पन्न होती है तब यह अत्यन्त फलप्रद है। यह कोष्ठ साफ रखने में भी सहायता करता है (R. N. Chopra, B. Mukherjee and I. C. Chopra—A Treatise of Tropical Therapeutics, p. 738, Calcutta, 1954)।

रोगी के लिये बीच - बीच में उपवास अत्यन्त हितकर है। दीर्घ अवधि की पद्धति के अनुसार उपवास करते रह सकने पर केवल उसीसे रोगी आरोग्य प्राप्त कर सकता है।

इस रोग में साधारणतः एमिटिन व्यवहार किया जाता है किन्तु वह पेचिश के जीवाणु विनष्ट नहीं कर पाता, पेचिश के लक्षण ही सामयिक रूप से नष्ट करता है (R. B. H. Gvadwohe, M.D. —Clinical Tropical Medicine, p. 55, U. S. A., 1951)। किन्तु इसके व्यवहार से बहुत अवस्था में दमा, हृत्पिण्ड का अनियमित धड़कन, दुबलापन, मानसिक थकान, स्नायविक दुर्बलता, एक्जिमा और पुराना घाव आदि रोग उत्पन्न होते हैं (The British Encyclopædia of Medical Practice. Vol. 1, p. 376, London, 1950)। वैद्य लोग भी कह देते हैं, इसकी कोई औषधि नहीं। इसलिये इस रोग में व्यर्थ औषधियों के चक्कर में न पड़कर और सब औषधि नदी के पानी में

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

फेंककर शरीर को विकार-रहित करके नीरोग बना लेने के लिये चेष्टा करनी चाहिये। केवल इसीसे रोग आरोग्य प्राप्त कर सकता है।

वायुफुल्लता
[Flatulent Dyspepsia]

पेट के जिन सब रोगों में मनुष्य सबसे अधिक कष्ट पाता है, उनमें वायुफुल्लता अन्यतम है। पेट में वायु के सञ्चय का नाम ही वायुफुल्लता है। यह कभी पाकस्थली में और कभी आँत में जमा होती है। किन्तु पुराने रोगों की वहुत अवस्थाओं में यह एक साथ दोनों स्थानों में वर्तमान रहती है।

इस अवस्था में पेट पर धीरे से मारने से ढब-ढब की आवाज होती है। पाकस्थली की वायु कभी-कभी मुंह होकर निकल जाती है। तब उसे डकार (eructation) कहते हैं। किसी-किसी समय यही वायु इस तरह जोर से निकलती है कि उसकी बाघ के गर्जन से तुलना की जा सकती है। आँत की वायु साधारणत: नीचे के रास्ते से बाहर निकल जाती है। कभी उसमें दुर्गन्ध रहती है, कभी नहीं रहती। जब इसमें दुर्गन्ध रहती है तो समझा जाता है खाना आँत के भीतर सड़ गया है। वर्तमान समय में ऐसा कहा जाता है, वायुफुल्लता कोई रोग नहीं। मुँह से साँस लेने के कारण ही पेट फूल जाता है। किन्तु बाहर से ली हुई वायु कभी दुर्गन्धयुक्त हो नहीं सकती। जब वह दुर्गन्धयुक्त हो तब समझना चाहिये पेट के भीतर खाना सड़ रहा है। इस अवस्था (intestinal toxæmia) से न हो सके ऐसा कोई रोग नहीं। किसी किसी समय यह पेट में गुड़-गुड़ की आवाज पैदा करता है। इसे साधारणत: पेट बोलना कहा जाता है। बहुत बार पेट में वायु जमा होने से पेट में दर्द होने लगता है। कभी-कभी पाकस्थली में वायु जमा होने के फलस्वरूप हृदय पर दबाव पड़ता है। इसके फलस्वरूप हृदय में धड़कन और किसी

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

किसी क्षेत्र में हृदय के विभिन्न रोग-लक्षण पैदा हो जाते हैं। इससे बहुत बार हृद्-रोग का भ्रम होता है। हृत्पिंड के ये सब रोग-लक्षण पेट के फिर ठीक होते ही दूर हो जाते हैं। नये रोग (acute disease) में वायुफुल्लता अल्प समय के लिये स्थायी होता है। किन्तु पुराने रोग में यह प्रायः सब समय के लिये वर्तमान रहता है।

विभिन्न कारणों से पेट के भीतर वायु जमा होती है। जो खाद्य-पदार्थ अच्छी तरह से नहीं चबाकर निगलके खाते हैं उन्हें ही साधारणतः यह रोग हो जाता है (Sir John Conybeare, F.R.C.P., and W.N. Mann, M.D., F.R.C.P.—Text-book of Medicine, p. 327, London, 1956)। साग-सब्जियों में जो सीठी जाति का पदार्थ रहता है, वह सड़कर बहुत बार पेट में वायु पैदा करती है। पाकस्थली की किसी भी गड़बड़ी से यह पैदा होती है। पाकस्थली के घाव, पित्तकोष के विभिन्न रोग एवं पित्त-पथरी रोग का यह एक साधारण रोग-लक्षण है। बहुत अवस्थाओं में यह अजीर्ण रोग का एक प्रधान लक्षण है। साधारणतः स्नायविक दुर्बलता के साथ अजीर्ण (nervous dyspepsia) जिन्हें रहता है, उनके साथ प्रायः ही ऐसा होता है। बहुत क्षेत्र में शरीर की विकारयुक्त अवस्था में रक्त और शरीर में से कार्बनिक एसिड और विभिन्न श्रेणी के गैस आकर पेट में जमा होते हैं। आँत और पाकस्थली के भीतरी भाग खाली होने के कारण पाकस्थली और आँत की दीवाल में से वे बाहर निकल आकर सहज ही पाकस्थली आदि को फूला देते हैं। किसी किसी पुराने रोगी की छाती के खाली स्थान तक वायु आकर जमा होती है। संक्षेप में, शरीर की विभिन्न विकारयुक्त अवस्था के फलस्वरूप जब शरीर टूट जाता है केवल तभी पुराना वायुरोग उत्पन्न होता है।

इसलिये केवल पेट की चिकित्सा करके कभी वायु नीरोग नहीं की जा सकती। शरीर का सब कूड़ा-कर्कट शरीर से झाड़-पोंछकर निकाल देकर शरीर को नीरोग बनाना ही अन्यान्य रोगों की भाँति इसकी भी

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्रधान चिकित्सा है।

इसके लिये प्रतिदिन पेट पर गर्म-ठंडा लेकर डूस, हल्के तापस्नान के बाद ठंडे पानी से स्नान, स्नान के बाद सूखी मालिश, पेट की लपेट, कटिस्नान, पेट और लिवर के ऊपर मर्दन, आसन और प्राणायाम करना एवं आहार की स्वास्थ्यनीति का अनुसरण ही इसकी प्रधान चिकित्सा है। बीच बीच में गीली चादर की लपेट लेना भी विशेष रूप से आवस्यक है।

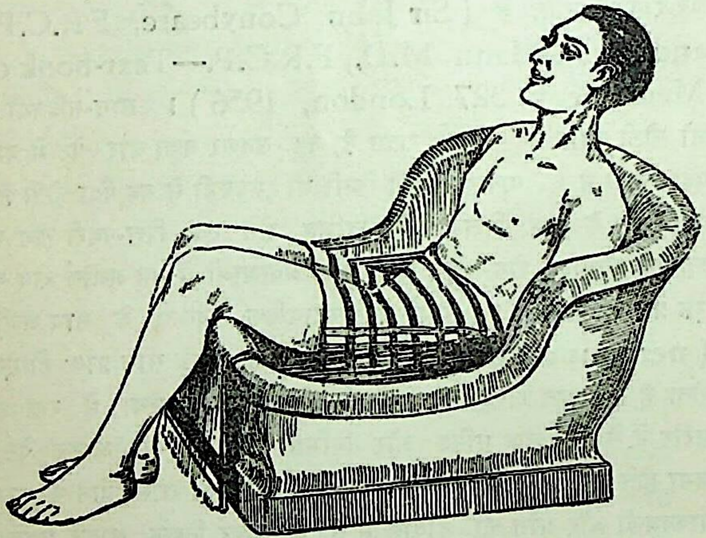

कटिस्नान (hip bath)

प्रतिदिन पेट पर गर्म-ठंडा लेकर और अन्त में पेट अधिक ठंडा नहीं करके ठंडे पानी का डूस लेना इस रोग में विशेष रूपसे आवश्यक है। इससे पेट जितना साफ होता है, वायु भी उतनी ही कम हो जाती है।

कटिस्नान वायुफुल्लता में अत्यन्त हितकर है। बहुत वार कटिस्नान के लिये बैठते ही पेड़ू की वायु अपने आप निकल जाती हैं। इसके

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh
अतिरिक्त पेट की खोयी हुई शक्ति यह लौटा लाती है और पेट में वायु का जमा होना कठिन हो जाता है। अगर कटिस्नान करने की सुविधा न हो तब स्नान के पहले ऊँचे से पेट पर ठंडा पानी गिराकर साथ साथ पेट के ऊपर घर्षण किया जा सकता है।

पेट की लपेट भी वायुफुल्लता में अत्यन्त लाभप्रद है और यही सर्व-प्रमुख चिकित्सा है। यह हर एक से दो घंटे बाद बाद बदल देने से वायु-फुल्लता जल्दी से कम हो जाता है। रोगी का पेट गर्म न हो तो रोगी के पेट पर दिन में दो बार गर्म-ठंडा देकर अधिक समय के लिये पेट की लपेट व्यवहार करना उचित है। वायु रोग में हमेशा ही पेट की लपेट पर विशेष रूप से निर्भर करना चाहिये। रोगी का पेट गर्म होने पर दिन में एक बार या दो बार एक घंटे के लिये पेट के ऊपर मिट्टी की ढकी हुई लपेट (heating earth compress) व्यवहार की जा सकती है। इसीसे पेट की वायु निकल जाती है।

मुक्तासन वायु के लिये अत्यन्त फलप्रद है। पेड़ू में कभी भी वायु होते ही चित होकर बिना तकिये के लेटकर दोनों पाँव सटाकर दोनों घुटनों को लाकर छाती से मिलाना पड़ता है। इसके बाद दोनों हाथ से दोनों पाँव कसके पकड़कर छाती पर लाकर दबाने से यह आसन किया जाता है। इससे पेड़ू की वायु तुरन्त निकल जाती है।

पेट के ऊपर मर्दन से भी विशेष लाभ होता है। विभिन्न श्रेणी के मर्दन में कम्पन (vibration) और घर्षण (friction) से ही विशेष लाभ होता है। पेट के ऊपर हाथ का तलवा रखकर खूब तेजी से हाथ हिलाने से ही कम्पन का प्रयोग होता है। रोगी स्वस्थ हो जाने के बाद पेट का व्यायाम और विभिन्न आसन करना उचित है। पेट को नीरोग बनाने के लिये उत्थान-पादासन, शलभासन, धनुरासन और उड्डीयान आदि अत्यन्त फलप्रद हैं। जिन सब आसनों से रीढ़ का व्यायाम होता है, वे सब आसन भी अवश्य ही करने चाहिये (इसके लिये

4

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh
स्नायविक दुर्बलता द्रष्टव्य)। कारण बहुत अवस्थाओं में स्नायविक दुर्बलता के फलस्वरूप वायुफुल्लता पैदा होता है और बढ़ता रहता है। रोगी

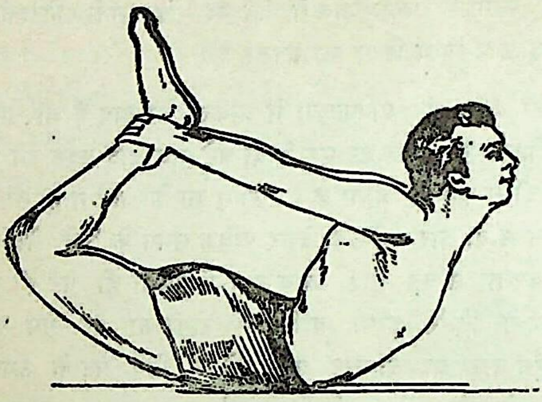

धनुरासन

के लिये सुबह-शाम खुली हवा में व्यायाम और टहलना एवं दोनों शाम स्नान अत्यन्त हितकर हैं। संक्षेप में, स्वास्थ्य जिससे सुन्दर हो जाय, इसकी व्यवस्था करनी चाहिये (Hobart A. Reimann, M.D.—Treatment in General Medicine, Vol. 4, p. 179, Philadelphia, 1948)।

यदि वायु पाकस्थली में जमा हो तब रोग की नयी अवस्था में नीबू के साथ गर्म पानी के पीने से बहुत लाभ होता है। बहुत अवस्थाओं में इस प्रकार से एक ग्लास पानी पीने से ही वायु गायब हो जाती है।

पुरानी अवस्था में प्रतिदिन सुबह में रोगी के लिये एक ग्लास गर्म पानी पीना उचित है। साधारण अवस्था में खाने के आधा घंटा पहले और दो घण्टा बाद पानी पीना चाहिये (G. E. Beaumont, M.A., F.R.C.P.—Medicine, p. 26, London, 1953)। किन्तु रोगी के लिये एक बार अधिक पानी पीना अहितकर है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

जब तक पाकस्थली फूली रहे, तब तक पानी छोड़कर और कुछ भी लेना उचित नहीं। कारण, पेट फूला रहने पर कोई भी खाद्यपदार्थ अच्छी तरह पच नहीं पाता। पाकस्थली जब फूली रहती है तब जोर करके कोई पथ्य वहाँ भर देने से फूलाव और भी बढ़ जाती है और उससे साँस लेने-छोड़ने का कष्ट भी पैदा हो सकता है। इसके बाद रोगी के तनिक नीरोग मालूम होने पर उसे नारंगी, मौसमी, अनन्नास, बिजोड़ा नीबू आदि का रस पानी और मधु के साथ मिलाकर थोड़ा थोड़ा करके दिया जा सकता है। यदि रोगी को अम्लरोग हो, तो जो सब फल खट्टे नहीं हैं, प्रारम्भिक अवस्था में केवल उन्हें ही देना उचित है।

रोगी के पथ्य पर सदा ध्यान देना चाहिये। पुराने अजीर्ण के रोगियों के पेट में प्रायः सब समय वायु भरी रहती है और ऐसे रोगी अनेक हैं, जरा-सा कुछ खाते ही जिन्हें वायु हो जाती है। इसी कारण से रोगी का पथ्य ऐसा होना उचित है जो हल्का हो और साथ ही साथ शरीर की विकारयुक्त अवस्था दूर करे। इसलिये ऐसे सब रोगियों का प्रधान पथ्य होना उचित है फल, फलों का रस, तरकारी का सूप, दही, धान का लावा, मधु, पुराने चावल का मुलायम भात और दलिया।

दही इस रोग में अत्यन्त फलप्रद है। कई दिनों तक सब खाद्य-पदार्थ छोड़कर केवल दही पर रहने से रोगी को बहुत लाभ होता है (James S. McLester, M.D., and William J. Darby, M.D., Ph.D.—Nutrition and Diet in Health and Disease, p. 428, Philadelphia, 1950)। भारतवर्ष में इसे दधि-कल्प (curd-cure) कहा जाता है।

रोगी के लिये सब समय दूध के बदले दही अच्छा है। दही और दूध के खाद्य-मूल्य में कोई फर्क नहीं। किन्तु दूध से साधारणतः ज्यादा वायु पैदा होती है (G. E. Beaumont, M.A., F.R.C.P.—Medicine, p. 26, London, 1953)।

इस रोग में सूखे खाद्यपदार्थ ही अपेक्षाकृत उत्तम हैं। रोगी चाहे

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

तो दही को कपड़े में रखकर पानी बाहर निकालकर खा सकता है।

वायु रोग में सभी प्रकार के सीठी जातीय पदार्थ और दाल तथा बीन जातीय सब चीजों से परहेज करना उचित है (Hobart A. Reimann, M.D.—Treatment in General Medicine, Vol. 4, p. 179, Philadelphia, 1948)। बहुत अवस्थाओं में अत्यधिक श्वेतसार जाति के खाद्यपदार्थ खाने से भी पेट में वायु पैदा होती है। ऐसी अवस्था में श्वेतसार जातीय खाद्य यथेष्ट कम कर देने चाहिये।

रोगी को महीन पुराने चावल का भात और हाथ की बनी मुलायम और गर्म रोटी खाने के लिये दी जा सकती है। किन्तु ये सभी चीजें विशेष रूप से चबाकर खाना आवश्यक है। अन्यथा कष्ट पाने की विशेष सम्भावना रहती है। नारंगी, मौसमी, बिजोड़ा नीबू, पीच, सेव, पपीता, जामुन, सफेद जामुन, अनन्नास का रस तथा डाब का पानी भी उसके लिये सुपथ्य है। रोगी परवल, तरोई, नेनुआ, साग की डाँट, कच्चा पपीता, बैंगन और स्क्वायस आदि खा सकता है। किन्तु सभी सब्जियों का हरा और ताजा होना आवश्यक है। बासी और सूखी तरकारियों के खाने से स्वस्थ व्यक्ति के पेट में भी वायु होती है। विभिन्न हरे साग भी सूप बनाकर लेना उचित है।

जो सब खाद्यपदार्थ वायु पैदा करते हैं उनमें तरबूज, फूट, हरे मटर की फली, बीन, भुट्टा, फूलगोबी, पातगोबी, सलाद, प्याज, लहसुन, पनीर (cheese), कोको, अचार, चटनी, सब प्रकार की तली हुई चीजें, हलवाई की दूकान की सभी चीजें, पिठा मिठाइयां, गाढ़ा दूध और खीर, पुलाव और सब प्रकार के परिरक्षित (preserved) और परिशोधित (refined) खाद्य प्रमुख हैं। इन सब खाद्यपदार्थों से सब समय परहेज करना उचित है। जीवन में कुछ संयम लाना चाहिये। महात्मा गांधी के शब्दों में कहा जा सकता है कि जिसे अपनी जीभ पर संयम नहीं है, उसके आगे स्वास्थ्य की बात करना ही बेकार है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

बवासीर

[Piles]

[१]

मलद्वार के अन्दर और बाहर जो नस (ve n) है उसके फूल जाने और सूज जाने का नाम बवासीर है। यह फूलाव और सूजन कभी बाहर की नस में और कभी अन्दर की नस में होती है। बाहर की नस में होने से इसे बाहरी बवासीर (external piles) कहते हैं। जब यह अन्दर की नस में होती है तब यह भीतरी बवासीर (internal piles) कहलाता है। कभी कभी दोनों प्रकार के बवासीर एक साथ दिखाई पड़ते हैं। उसे मिश्रित बवासीर (mixed piles) कहते हैं।

बाहरी बवासीर गुदामार्ग के बाहर दिखाई पड़ती है। बहुधा विशेष कोई कष्ट दिये बिना यह कई वर्षों तक बनी रहती है। केवल बीच बीच में जब कोई बहुत कड़ा मल निकलता है तब रोगी इसमें जल जाने जैसी पीड़ा अनुभव करता है। कभी कभी ठंडा लग जाने से या अन्य कारण से यह सूजन पैदा हो जाती है। उस समय चलने या कुर्सी आदि पर बैठने में बहुत कष्ट होता है। इस अवस्था में बवासीर बड़ा और लाल हो जाता है और इसमें से एक प्रकार का खून मिला हुआ मवाद निकलता है। इस प्रकार की अवस्था एक से दो सप्ताह तक रहती है। इसके बाद यह कम हो जाता है। लेकिन कुछ दिन बाद पहले जैसा फिर दिखाई पड़ता है।

भीतरी बवासीर साधारणतः मलद्वार के भीतर की ओर एक इञ्च में होता है। इसके अस्तित्व का प्रायः पता नहीं चलता। केवल मलत्याग के समय इसमें से थोड़ा-बहुत काले रंग का खून निकल आता है। किसी किसी रोगी को इतना खून निकलता है कि इससे रक्तहीनता दिखाई पड़ती है। ऐसी अवस्था कुछ दिन रहने पर बवासीर से प्रायः सब समय आँव के साथ थोड़ा खून बाहर निकलता है। लेकिन बवासीर में यदि

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

सूजन न रहें तो इसमें प्रायः वेदना नहीं होती। कभी कभी इस प्रकार का बवासीर बहुत बड़ा हो जाता हैं। तब बहुत बार वह मलत्याग के समय बाहर निकल आता है और कभी इसमें सूजन और दर्द होता है।

बवासीर सभ्य समाजकी ही व्याधि है। सभ्य समाज के ३०% व्यक्ति बृथावस्था में इस रोगके शिकार हो जाते हैं (Gottwald Schwarz, M.D.—Diagnosis and Non-operative Treatment of the Colon and Rectum, p. 449)। जो अधिक भोजन करते हैं और काफी परिश्रम नहीं करते अथवा मलत्याग के समय कूँथते हैं, वही साधारणतः इस रोग से तकलीफ पाते हैं। कभी कभी भींगी मिट्टी या ठंडी फर्श इत्यादि पर बैठने से बवासीर हो जाता है। किन्तु चाहे जिस कारण से भी हो, कोष्ठबद्धता नहीं रहने पर कभी बवासीर नहीं हो सकता (J. Ellis Barker—Chronic Constipation, pp. 194-5)। कोष्ठबद्धता के कारण ही नितंब प्रदेश की नसों में खून अधिक मात्रा में इकट्ठा होता है और कभी-कभी रक्त-सञ्चालन बन्द हो जाता है। तब यही नसें प्रदाहयुक्त होकर बवासीर उत्पन्न करती हैं। बहुधा गुदामार्ग में सञ्चित मल भी इस स्थान की नसों (hæmorrhoidal veins) के सम्पर्क में आकर इसमें सूजन पैदा कर देता है। भीतरी बवासीर बहुधा इसी प्रकार उत्पन्न होता है।

कोष्ठबद्धता से जिस प्रकार बवासीर उत्पन्न होता है, उसी प्रकार उत्पन्न होने के बाद भी यही बवासीर को बढ़ा देता है। किन्तु थोड़ी कोष्ठबद्धता होने से ही बवासीर हो जाता है ऐसी बात नहीं। जब शरीर विभिन्न दूषित और विषाक्त पदार्थों से भर जाता है और उनके द्वारा नितंब प्रदेश की नसें आक्रान्त हो जाती हैं तभी बवासीर प्रकट होता है। इसीसे एक बड़े डाक्टर ने कहा है, बवासीर में बहुत बार स्थानीय चिकित्सा की अपेक्षा दैहिक चिकित्सा की अधिक आवश्यकता रहती है (Otto Juettner M.D., Ph.D.—A Treatise on Naturopathic Practice, p. 196)।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

इस रोग में बहुधा अस्त्र-चिकित्सा की जाती है। किन्तु जिस अवस्था के कारण बवासीर उत्पन्न होता है, अस्त्र से वह दूर नहीं होती। इससे अस्त्र-चिकित्सा के बाद प्रायः नये रोग-लक्षण पैदा हो जाते हैं। विभिन्न औषधियों के व्यवहार से भी कोई लाभ नहीं होता। कारण, इसके द्वारा केवल रोग को दबाने की चेष्टा की जाती है। इसलिये स्थानीय चिकित्सा के साथ साथ शरीर की जिस विकारयुक्त अवस्था से यह रोग उत्पन्न होता है, उसे दूर करना ही इसकी चिकित्सा है।

[२)

इसके लिये चिकित्सा के प्रारम्भ में ही डूस से कोष्ठ साफ कर लेना उचित है और इसके बाद उसे सदा साफ रखना चाहिये। किन्तु इस रोग की प्रबल अवस्था में अधिक डूस देना उचित नहीं और कोष्ठ को साफ रखने के लिये प्रधानतः कटिस्नान, पेट की लपेट एवं पेड़ू पर मिट्टी की लपेट के ऊपर निर्भर करना चाहिये। सम्भव हो तो मिट्टी की लपेट सुरक्षित अवस्था में सारी रात फ्लानेल से ढककर दी जा सकती है। कोष्ठबद्धता अधिक हो तो कई दिनों तक पर्याप्त मात्रा में बेल, अमरूद, मुनक्का, खुबानी और अंजीर इत्यादि खाना चाहिये। रोगी इसफगोल का भी व्यवहार कर सकते हैं।

जभी ऐसा लगे कि बवासीर का प्रकोप हो सकता है, अर्थात् जिस समय गुदामार्ग की नसों में रक्त की अधिकता (congestion) हो, उसी समय अविलम्ब उसे दूर करना आवश्यक है। ऐसी अवस्था में छः मिनटों के लिये उष्ण पादस्नान (hot foot bath) लेकर अन्त में एक घण्टे की पैर की पट्टी (foot pack) लेनी चाहिये। इससे रक्त ऊपर से नीचे उतर आता है और मंत्र की तरह बवासीर का आक्रमण रुक जाता है। आवश्यकतानुसार दो-तीन दिनों तक दिन में एक या दो बार इसी प्रकार करना आवश्यक है। साथ ही दिन में दो बार एक घण्टे तक पेट की लपेट और पेट गर्म होने पर मिट्टी की लपेट देनी चाहिये।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

यदि बवासीर में सूजन रहे तब नितंबो (hip) को थोड़ा ऊंचा करके बिछावन पर आराम करना चाहिये। इस समय बर्फ के पानी या खूब ठंडे पानी में भिगोयी पट्टी (cold compress) गुदामार्ग पर बड़ी करके और जोर से दबाकर रखनी चाहिये और गर्म हो जाने पर बार बार बदल देनी चाहिये। आवश्यकता हो तो थोड़ी बर्फ महीन करके (ice suppository) इसमें भीतर भरकर दी जा सकती है। इस अवस्था में आधे से लेकर एक इंच गहरे बर्फ के पानी अथवा खूब ठंडे पानी में कटिस्नान लेने से भी जलन तेजी से शान्त हो जाती है। रोगी के गुदामार्ग पर मिट्टी की लपेट दी जा सकती है। इस समय रोगी के हाथ-पैर गर्म रखना आवश्यक है और नितंब में ठण्डक पहुँचाने के साथ साथ दिन में दो बार एक घंटे के लिये पाँव की लपेट दी जानी चाहिये। इसके अतिरिक्त दिन में एक बार ठण्डा-गर्म हिप बाथ लेना उचित है अथवा रोगी मलद्वार के ऊपर ठण्डा-गर्म ले सकता है।

अगर बवासीर बाहर निकल आये तो तुरन्त उसे यत्नपूर्वक भीतर घुसा देना चाहिये। जब तक वह भीतर नहीं चला जाय तब तक नितंब यथासम्भव ऊँचा करके और छाती के बल लेटकर विश्राम करना आवश्यक है। इस समय बवासीर के ऊपर खूब ठण्डे पानी की पट्टी देनी चाहिये और बीच-बीच में उसे बर्फ के पानी या ठण्डे पानी से धो देना चाहिये। ऐसी स्थिति में मलत्याग करना हो तो बिछावन पर लेटकर ही मलत्याग करना चाहिये और कभी कूँथना नहीं चाहिये।

रोग की नयी अवस्था में प्रतिदिन रोगी को सर्वाङ्गासन करना उचित है। इस समय मलद्वार और पेड़ू को भीतर की ओर खींचना चाहिये। इससे नितंब का जमा हुआ रक्त नीचे उतर आता है, पेट का दबाव कम हो जाता है और रोगी बहुत आराम अनुभव करता है।

किन्तु बवासीर शीघ्र जड़ से मिटता नहीं। इसके एक बार कम हो जाने से ही निश्चित होना उचित नहीं। प्रारम्भिक प्रकोप दूर होते ही

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

शरीर को विकार-रहित करने की चेष्टा करनी चाहिये। केवल इसीसे रोग का दुवारा आक्रमण असम्भव हो जाता है। इसके लिये प्रतिदिन स्नान के पूर्व कुछ देर के लिये धूपस्नान या सात-आठ मिनटों का फुट बाथ अथवा पाँच-छः मिनटों का हल्का वाष्पस्नान लेकर तब नहा लेना चाहिये। यदि रोगी प्रतिदिन स्नान के पहले गर्म-ठण्डा हिप बाथ ले तो सबसे अधिक लाभ पहुँच सकता है। इससे गुदा (rectum) का बाहर निकलना बन्द हो जाता है और रुग्ण धमनी नये सिरे से स्वस्थ हो उठती है।

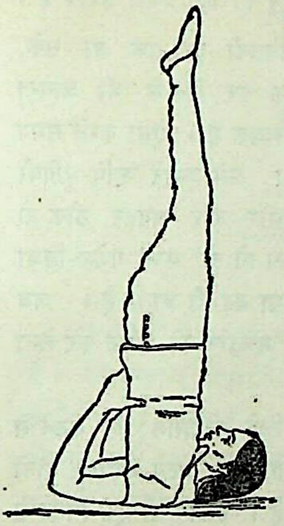

सर्वाङ्गासन

स्नान के बाद सूखी मालिश (day friction) करके शरीर को गर्म कर लेना उचित है।

रोगी को महीने में दो बार पूरा वाष्पस्नान या एक घंटे के लिये गीली चादर की लपेट लेनी चाहिये।

रोगी के लिये व्यायाम विशेष आवश्यक है। व्यायाम से नितंब का जमा हुआ रक्त संपूर्ण शरीर में फैल जाता है एवं शरीर के किसी स्थान विशेष में रक्त रुका नहीं रह पाता। आसन भी उसके लिये विशेष लाभकारी हैं। मालिश से भी रोगी को बहुत आराम पहुँचता है। इस रोग में खासकर लीवर के ऊपर मालिश करनी चाहिये। प्रातःकाल और अपराह्न में लीवर के ऊपर मर्दन करे तो बहुत लाभ होता है।

इस रोग में मलद्वार की मालिश अत्यन्त फलप्रद है। मध्यमा या किसी और उँगली में तेल लगाकर पहले गुदामार्ग में उँगली जितनी दूर जा सके घुसानी पड़ती है। इसके बाद गुदामार्ग में उँगली घुमाने

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

से मलद्वार की मालिश हो जाती है। इसे हमारे योगशास्त्र में गणेश-क्रिया कहा गया है। यह कोष्ठबद्धता दूर करने का एक प्रमुख उपाय है।

मलत्याग के बाद गुदामार्ग में तर्जनी जितनी दूर तक जा सके, धीरे-धीरे ले जाकर मलद्वार भलीभाँति साफ कर लेने से भी अत्यन्त लाभ पहुँचता है। ऐसा कई बार करना आवश्यक है। ऐसा करते समय प्रत्येक बार उँगली पानी से धो लेनी चाहिये। इसे हमारे ऋषि-मुनियों ने मूलशोधन कहा है। इससे बहुधा बवासीर और भगंदर ठीक हो जाते हैं। किन्तु जब बवासीर का नया प्रकोप हो तो कभी गणेश-क्रिया या मूलशोधन नहीं करना चाहिये। इससे यंत्रणा बढ़ ही जाती है। जब रोग सुषुप्तावस्था में हो तभी यह सब करके मलद्वार को ठीक कर लेना उचित है।

भोजन के बाद पन्द्रह-बीस मिनटों के लिये वीरासन पर बैठने से बवासीर और भगंदर रोग में बहुत फायदा होता है। घुटने गड़ाकर दोनों पंजों के बल बैठने से वीरासन करना होता है। इसका दो-एक मिनट से अभ्यास करके धीरे धीरे समय बढ़ा देना चाहिये।

[३]

इस रोग में ऐसा पथ्य खाना चाहिये जिससे कोष्ठ विशेष रूप से साफ रहे और कभी कूँथने की जरूरत न हो। इसके लिये कोष्ठबद्धता की चिकित्सा द्रष्टव्य है। रोगी को एक शाम ढेंकी से छटा हुआ चावल का भात और दूसरे शाम हाथ-चक्की में पीसे आटे की रोटी चोकर (bran) समेत खानी चाहिये। किंतु सभी पुराने रोग में भात-रोटी कम खाकर फल तथा तरकारी पर अधिक जोर देना चाहिये।

अधिक रक्तस्राव होने पर कई दिनों तक केवल फल का रस, डाब का पानी, दही का पतला मट्ठा, विभिन्न हरी सब्जियों का कच्चा रस, साग का शोरबा आर नीबू मिला पर्याप्त पानी लेना चाहिये।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

तृतीय अध्याय

श्वासयंत्र के रोग

पुराना ब्रोंकाइटिस

[Chronic Bronchitis]

[१]

श्वासनली (bronchi) की जो सूजन है उसका नाम ब्रोंकाइटिस है। यह तरुण (acute) और पुराना (chronic) दोनों प्रकार से ही दिखाई पड़ती है। तरुण ब्रोंकाइटिस की भाँति इसमें खाँसी और श्लेष्मा आदि साधारण लक्षण मोटे तौर पर समान रूप से वर्तमान रहते हैं, केवल इसमें ज्वर और दर्द उतना नहीं रहता। इसमें दिन के दूसरे समय की अपेक्षा सुबह में ही खाँसी का जोर अधिक होता है और रोगी की काफी फेन मिली श्लेष्मा खाँसी के साथ निकल आती है। यह रोग साधारणतः ग्रीष्म ऋतु में दबा रहता है और जाड़े के समय उभर जाता है। किंतु रोग अत्यन्त पुराना हो जाने पर खाँसी और कफ का निकलना प्रायः कभी पीछा छोड़ना नहीं चाहता।

साधारणतः प्रौढ़ावस्था और बुढ़ापे में ही इसका अधिक प्रादुर्भाव होता है एवं बहुत अवस्था में यह उनकी मृत्यु का कारण हो जाता है। इस उम्र में लोगों की जो मृत्यु होती है उसमें सैकड़े दस आदमी ही इस रोग से प्राणत्याग करते हैं (John S. Richardson, M.A., M.D., F.R.C.P.—The Practice of Medicine, p. 72, London, 1956)।

हठात् इस रोग का कभी आक्रमण नहीं होता। जब दीर्घ अवधि तक शरीर के भीतर एक विकारयुक्त अवस्था चलती रहती है एवं उसके

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

आक्रमण से श्वासनली दुर्बल हो पड़ती है, तभी यह रोग आ उपस्थित होता है। इसलिये बहुत अवस्था में गांठया, पुराने मूत्रग्रन्थि की सूजन और गर्मी से यह रोग उत्पन्न होता है।

कभी कभी तरुण ब्रोंकाइटिस पुराने रोग में परिणत होता है। तरुण ब्रोंकाइटिस का आक्रमण जब बार बार दबा दिया जाता है, तब बहुत क्षेत्र में रोग पुराना आकार ले लेता है।

संक्षेप में शरीर को एक विकारयुक्त अवस्था के अतिरिक्त कभी पुराना ब्रोंकाइटिस उत्पन्न नहीं होता एवं शरीर की यह विकारयुक्त अवस्था दूर किये बिना कभी पुराना ब्रोंकाइटिस नीरोग किया नहीं जा सकता।

इसलिये अन्यान्य रोगों की भांति शरीर को विकार-रहित करने के साथ साथ अस्वस्थ अंग को विकारशून्य और सबल करके नीरोग बना लेना ही इसको प्रधान चिकित्सा है।

[२]

इसके लिये पहले ही डूस और पेट की लपेट आदि के द्वारा कोष्ठ साफ कर लेना उचित है। कुछ दिनों तक सुबह के समय या अपराह्न में रोगी के पेट पर गर्म-ठंडा देकर उसके बाद थोड़ा गर्म नीबू-पानी का डूस देना चाहिये। पेट की लपेट पहले पहल केवल एक घंटे के लिये और केवल पेट के सामने की ओर प्रयोग करके अन्त में अभ्यास हो जाने पर सारी रात के लिये व्यवहार करना उचित है। इसके बाद रोगी की छाती पर गर्म-ठण्डा देकर छाती की लपेट का प्रयोग ही इसकी प्रधान चिकित्सा है। एक गर्म पानी की थैली द्वारा दो-तीन मिनटों के लिये सेंक का प्रयोग करके उसके बाद गीले गमछे से रगड़कर छाती ठंडी कर लेना उचित है और एक साथ इस प्रकार तीन-चार बार करना चाहिये। यदि रोगी का हार्ट दुर्बल या खराब हो तब गर्मी के प्रयोग के समय एक छोटी गीली तौलिया तह करके हार्ट के ऊपर रखना चाहिये और प्रत्येक बार हटाकर यह स्थान घर्षण करके गर्म कर देना उचित है। बीच

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh
बीच में पीठ में भी गर्म-ठंडा देना चाहिये। छाती के रोग में गर्म-ठंडा हमेशा ही गर्म से आरम्भ करके गर्म पर अन्त करना उचित है और उसके बाद ही छाती गर्म रहते रहते छाती की लपेट प्रयोग करनी चाहिये। भीतर का गीला कपड़ा जलशून्य होगा। उसको एक पशम की चादर आदि से इस प्रकार ढक देना उचित है जिससे अन्दर में एक गर्मी का संचार हो। जरूरत होने पर एक दस हाथ की धोती के द्वारा वह दुबारा ढक दिया जा सकता है। अगर ऊनी कपड़े के ऊपर एक प्लास्टिक का कपड़ा देने के बाद वस्त्र द्वारा ढक दिया जाय तब लाभ बहुत अधिक होता है। रोग की प्रबल अवस्था में यह प्रतिदिन डेढ़ से दो घंटे के लिये दी जा सकती है। इसके बाद एक दिन बाद देकर एक दिन, बाद में सप्ताह में दो दिन, और उसके बाद बीच बीच में लेना आवश्यक है। यदि रोगी को ज्वर रहे तब फ्लानेल द्वारा ढकना ही यथेष्ट होता है एवं मात्र एक घंटे के लिये प्रयोग करना उचित है।

छाती की लपेट (chest pack)

यदि रोगी को सूखी खांसी हो तब श्वास के साथ भाप लेने से रोगी का बहुत उपकार होता है। भाप के भीतर कोई औषधि रहना उचित नहीं और भाप की गर्मी जितनी बिना कष्ट के सह्य हो उतना अधिक होना आवश्यक है। आवश्यकतानुसार प्रत्येक डेढ़ घंटे पर यह यथेष्ट समय के लिये प्रयोग की जा सकती है (H. Corwin Hinshaw, M.D.,

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

Ph.D., and L. Henry Garland, M.B.—Diseases of the Chest, p. 182, Philadelphia, 1956) ।

सूखी मालिश (dry friction)

किंतु सूखी खांसी की प्रधान चिकित्सा ही है दोनों हाथों की अँगुलियों के सिरों को खूब ठण्डे पानी में डूबाकर उनके द्वारा गला, छाती का ऊपरी भाग और दोनों कंधे सामान्य भिगोकर गीले हाथों द्वारा ये सब स्थान रगड़कर सूखे और गर्म कर लेना । इससे श्लेष्मा उठाने की शक्ति विशेष रूप से बढ़ जाती है और पलक मारते ही सूखी खांसी गायब हो जाती है । छाती के रोगवाले रोगियों को स्नान के बाद शरीर पोंछ लेकर अविलम्ब दोनों हाथ द्वारा गला, छाती और कंधे रगड़कर लाल और गर्म कर लेना उचित है । छाती अच्छी रखने का यही एक प्रधान उपाय है । इसके साथ अवश्य ही सारे शरीर में सूखी मालिश का प्रयोग करना चाहिये ।

जिन सब रोगियों को कफ सहज ही नहीं निकल आता उन्हें यथेष्ट मात्रा में पानी पीने की आदत बनानी चाहिये और क्रमशः आदत डालकर रोजाना आठ-दस ग्लास पानी पीना उचित है । इससे कफ तरल

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

होकर निकल आता है (Ibid., p. 182)।

खुले स्थान में निवास इस रोग के लिये अत्यन्त हितकर है। रात में भी बरामदे में या कमरे की खिड़कियाँ खुली रखकर घर के अन्दर सोना चाहिये। इसकी भी धीरे धीरे आदत डालना उचित है। ऐसे रोगियों के लिये सर्वदा सतर्क रहना उचित है कि कभी ठंड न लग जाय। कभी भी ठंड लगते ही हाथ-पांव सेंककर गर्म कर लेना उचित है। किंतु ठंड से बचने के लिये सदा ही बहुत-से गर्म कपड़े-कुरते पहने रहना कभी उचित नहीं। क्रमशः ठंडी हवा का अभ्यस्त होकर धीरे धीरे ठंड पर विजय प्राप्त कर लेनी चाहिये। किंतु धूल, धुआँ और सीलन-भरी जगह से सदा ही परहेज रखना आवश्यक है।

इस रोग में श्वास-प्रश्वास का व्यायाम अत्यन्त हितकर है। यह जल्दी से श्वास कष्ट कम कर देता है और फेफड़ों की क्रिया सहज करता है। जिनकी छाती एक इंच से अधिक फैलती नहीं, इसके लेने से पुराने रोग में और बूढ़े लोगों की भी छाती ४ इंच तक फैल जाती है (The British Encyclopædia of Medical Practice, Vol. 3, p. 1967, London, 1950)।

रोगी का पथ्य विशेष रूप से अनुत्तेजक, पुष्टिकर, सहज ही पचनेवाला और अधिकांशतः क्षारधर्मी होना आवश्यक है। क्षारधर्मी खाद्यों के ऊपर ही सदा जोर देना उचित है। कारण इस जाति के खाद्य के ऊपर ही विभिन्न दूषित और विषाक्त पदार्थों (morbid matter and poisons) से शरीर की मुक्ति निर्भर करती है (Henry Lindlahr, M.D.—The Practice of Nature-Cure, p. 90, Poona, 1954)। रोग का प्राबल्य रहने तक रोगी को यथासम्भव ताजे और सूखे फल, कच्चा सलाद (salad), ताजे साग का रस, हरी लताओं का सूप, उबाली तरकारी एवं थोड़ा-सा दूध खाना चाहिये। रोग का जोर कम हो जाने पर, एक शाम भात और एक शाम हाथ-चक्की में पिसे आटे की रोटी खाई जा सकती है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

रोगी को दही, बर्फ और डाब के पानी का सम्पूर्ण रूप से वर्जन करना चाहिये। चीनी के बदले मधु व्यवहार कर सकने पर रोगी को बहुत लाभ होता है। श्वेतसार जातीय पदार्थ भी यथासम्भव कम खाना चाहिये। इस रोग में केला से परहेज रखना ही उचित है।

दमा

[Asthma]

[१]

हम लोग बाहर से जो वायु लेते हैं वह नाक, गलकोष (pharynx) और वायुनली (wind pipe) पार होकर श्वासनली और सूक्ष्म श्वासनली (smaller bronchial tubes) के भीतर से फेफड़ों में पहुँचती है और एक-एक करके ये सब अंश पार करके शरीर से बाहर हो जाती है।

किसी किसी समय हमारी सूक्ष्म श्वासनली का यह छिद्रपथ इस प्रकार संकुचित हो जाता है कि इसके भीतर से वायु के आवागमन में अत्यन्त असुविधा होती है। सूक्ष्म श्वासनली की इसी खेंचनयुक्त संकोच (spasmodic contraction) को ही दमा कहते हैं।

दमा रोग का प्रकोप होता है साधारणतः रात में या रात के आखिरी पहर में। रोगी तब अत्यन्त डरकर जग उठता है। वह छाती पर भार और दबाव का अनुभव करने लगता है और निःश्वास-प्रश्वास में अत्यन्त कष्ट का अनुभव करता है। इस समय छाती के भीतर एक विशेष प्रकार का शब्द होता है। उसकी तकलीफ तेजी से बढ़ने लगती है। अधिक देर लेटे रहने की उसमें और शक्ति नहीं रहती। तब वह उठ बैठता है। उसका शरीर फीका या नीला और हाथ-पांव ठंडे हो जाते हैं। यह प्रमाणित करता है कि छाती के अन्दर अत्यन्त रक्त की अधिकता हो गई है। निःश्वास-प्रश्वास ग्रहण करने की प्रबल चेष्टा में

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation; Chandigarh

उसके शरीर से पसीना निकल आता है। ऐसी अवस्था एकदम तनिक देर से लेकर बहुत घंटों तक रहती है। इसके बाद यह स्थिति दूर हो जाती है। किंतु इसके लिये रोग दूर नहीं हो जाता। कभी कम, कभी अधिक समय बाद वह फिर नये सिरे से दिखाई पड़ता है।

साधारणतः इस रोग के पीछे एक पुराना ब्रोंकाइटिस (chronic bronchitis) वर्तमान रहता है। जब ब्रोंकाइटिस दूर हो जाता है, तब अपने से ही दमा नीरोग हो जाता है। इसे ब्रोंकाइटिस जातीय दमा (bronchial asthma) कहा जाता है। वस्तुतः पुराने ब्रोंकाइटिस से जब श्वासनली रुग्ण और दुर्बल हो पड़ती है, तभी दमा उत्पन्न होता है।

कभी कभी स्नायविक कारण से यह रोग आ उपस्थित होता है। हम लोगों के शरीर का प्रत्येक यंत्र ही स्नायु द्वारा परिचालित होता रहता है। हमारी सूक्ष्म श्वासनली के छिद्रपथ भी स्नायु द्वारा ही परिचालित होते रहते हैं। स्नायविक विशृङ्खलता के फलस्वरूप यह व्यवस्था जब स्थायी रूप से टूट जाती है, तभी उसमें इस रोग के लक्षण प्रकट होते हैं।

शुरू शुरू में रोग के आक्रमण के पूर्व रोगी अधिकांश समय थकान, तंद्रा और एक विशेष प्रकार की तकलीफ अनुभव करता है। किंतु रोग जब पुराना हो जाता है, तब स्नायु ऐसी उत्तेजित अवस्था में आ जाते हैं कि सामान्य कारण से भी वे विशृङ्खल हो पड़ते हैं और इसके फलस्वरूप दमा प्रकट होता है। इन सब रोगियों को अन्त में ऐसा होता है कि हठात् उत्तेजना, कोई अप्रीतिकर शब्द-श्रवण, अत्यधिक आहार, दुष्पाच्य पदार्थों का भोजन, कुत्ते, बिल्ली, घोड़ा और पेट्रोल आदि की दूषित गंध एवं हँसी, खाँसी और हिचकी से दमा का प्रकोप होता है। इस जाति के दमा को स्नायविक दमा (nervous asthma) कहा जाता है।

किंतु वस्तुतः यह रक्त का रोग है। शरीर के अन्यान्य अंशों की भाँति स्नायु भी रक्त से ही पुष्टि ग्रहण करते रहते हैं। जब किसी कारण से

5

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

रक्तस्रोत दूषित हो जाता है और रक्त का यह विष स्नायुकेन्द्र और सूक्ष्म श्वासनली पर आक्रमण करता है तभी यह रोग होता है। इसलिये गर्मी, गठिया, मूत्रग्रन्थि की पीड़ा, रक्त का अम्लत्व और छोटी माता (measles) आदि से बहुत समय यह रोग उत्पन्न होता है, अथवा रक्त के भीतर जो सब विष संचित होने के फलस्वरूप ये सब रोग उत्पन्न होते हैं, वे जब स्नायु में विशृङ्खलता उत्पन्न करते हैं, तभी यह रोग दिखाई पड़ने लगता है। बहुत अवस्था में कोष्ठबद्धता ही इस रोग का एक प्रधान कारण होता है। एक डाक्टर ने कहा है, शरीर जो अत्यन्त विषाक्त हो उठा है, दमा इसीका प्रमाण है और यह विष अधिकांश अवस्था में बड़ी आँत से निकलकर फैलता है (Otto Juettner, M.D., Ph.D.—A Treatise on Naturopathic Practice, p. 24)।

अतः इसमें सन्देह नहीं कि इस रोग के मूल में तीन अवस्थाएँ वर्तमान रहती हैं। पहली शरीर की विकारयुक्त अवस्था, दूसरी स्नायुओं की गड़बड़ी और तीसरी सूक्ष्म श्वासनली की दुर्बलता।

इसलिये सम्पूर्ण शरीर को विकारशून्य करने के साथ साथ स्नायु और श्वासनली को सबल और स्वस्थ करना तथा उनकी उत्तेजना को दूर करना ही इसकी प्रधान चिकित्सा है।

[२]

दमा एक श्रेणी का जीर्ण रोग है। यह कुछ दिन तक शरीर के अन्दर गुप्त अवस्था में रहता है। इसके बाद अनुकूल अवस्था पाते ही फिर प्रकट होता है। इसलिये शरीर स्वस्थ रहते ही चिकित्सा प्रारम्भ करने की जरूरत है।

चिकित्सा के प्रारम्भ में ही कोष्ठ अस्थायी रूप से साफ करने की व्यवस्था करनी चाहिये। इसके लिये कुछ दिन तक प्रतिदिन पेट और लीवर पर मालिश करके पेट में गर्म-ठण्डा लेकर नीबू का रस मिला हुआ थोड़े

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

गर्म पानी का डूस लेना आवश्यक है। सारी रात के लिये पेट की लपेट भी लेनी चाहिये।

रोगी को प्रतिदिन नीवू के रस के साथ यथेष्ट पानी पीना आवश्यक है। उससे शरीर का बहुत कूड़ा-कर्कट मूत्र के साथ देह से विदा ले लेता है।

रोमकूपों की राह शरीर का यथेष्ट विष शरीर से प्रतिदिन बाहर निकल जाता है। इसलिये प्रतिदिन स्नान के पहले धूपस्नान या कुछ क्षणों का फुट बाथ या पाँच से सात मिनटों के लिये वाष्पस्नान लेना चाहिये। इसके बाद शरीर गर्म रहते रहते स्नान कर लेना उचित है। क्रमशः अभ्यास करके रोगी को ठंडे पानी से स्नान करना चाहिये। यदि रोगी को ठंडा पानी सहन न हो तब पहले सिर धोकर और दोनों पाँव गर्म पानी के भीतर रखकर स्नान करना उचित है। स्नान के बाद शरीर पोंछकर गला, छाती और कंधे जोर जोर से रगड़ लेना आवश्यक है एवं एक बिछावन की चादर द्वारा सारे शरीर में सूखी मालिश लेनी चाहिये।

रोगी को बीच बीच में थोड़ा अधिक समय अर्थात् दस मिनटों से पन्द्रह मिनटों के लिये वाष्पस्नान लेना उचित है। इससे रोग का मूल कारण नष्ट होता है। यह देखा गया है, जब मलेरिया ज्वर होता है तब दमा नहीं रहता (Otto Glasser, Ph.D.—Medical Physics, p. 435, Chiacgo, 1951)। वस्तुतः production of artificial fever is frequently the simplest and most effective method of inducing a remission—वाष्पस्नान आदि द्वारा अस्थायी रूप से शरीर में कृत्रिम ज्वर उत्पन्न करना ही दमा कम कर लेने का सबसे सहज और फलप्रद उपाय है (Howard F. Conn, M.D.—Current Therapy, p. 526, Philadelphia, 1954)। वाष्पस्नान के बाद थोड़े गर्म पानी से तौलिया के स्नान आदि द्वारा शरीर की गर्मी निकाल लेना आवश्यक है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

रोगी की श्वासनली को भी अविलम्ब सबल और विकार-रहित कर लेने की जरूरत है। इसके लिये छाती पर गर्म-ठंडा लेकर छाती की लपेट लेना ही इसकी प्रधान चिकित्सा है। जैसे पेट के रोग में पेट की लपेट है, उसी प्रकार फेफड़े या श्वासनली के रोग में छाती की लपेट रामवाण है। कुछ दिन तक यह एक से दो घंटे के लिये व्यवहार करनी चाहिये। छाती की पट्टी लेने के पहले सदा ही छाती के ऊपर बाहर से बीस मिनटों के लिये गर्म-ठंडा देकर अन्तिम बार और ठण्डा नहीं देकर शरीर गर्म रहते रहते लपेट लेनी चाहिये। जब तक कफ गिरना वन्द नहीं हो तब तक ही यह लपेट चलाते जाना उचित है। रोग की प्रवल अवस्था में यह प्रतिदिन लेना आवश्यक है। इसके बाद क्रमशः कम कर लेना चाहिये।

रोगी को सर्वदा सतर्क रहने की जरूरत है जिसमें कभी भी सर्दी का आक्रमण नहीं हो और होने पर भी अविलम्ब छाती की लपेट लेकर सर्दी आरोग्य कर लेनी चाहिये। कारण सर्दी को लेकर ही बहुत अवस्था में दमा आरम्भ होता है। छाती की लपेट के व्यवहार से सर्दी जिस तरह जल्दी नीरोग होता है, उसी तरह दमा के साथ साथ छाती के भीतर जो कभी कभी पुरानी सूजन जैसी रहती है, वह भी अत्यन्त सहज ही दूर हो जाती है।

जब दमा का आक्रमण होता है, तब इस चिकित्सा द्वारा अनायास रोग को वश किया जा सकता है। दमा का वेग उठते मात्र ही गर्म पानी से रोगी को डूस देकर उसको छः-सात मिनटों के लिये एक फुट बाथ देना आवश्यक है एवं उसके बाद ही एक घंटे के लिये पांवों की लपेट प्रयोग करनी चाहिये। दमा के समय अधिकांश अवस्था में सूक्ष्म श्वासनली के भीतर एक रक्ताधिक्य होता है और वह रोगी का कष्ट बहुत अधिक रूप में बढ़ा देता है। इस लपेट से छाती का रक्त पांव में उतर आता है और इसीलिये लपेट देने के कुछ देर बाद ही रोगी स्वस्थ हो जाता है। किंतु प्रकोप यदि अधिक हो तब पांव की लपेट कें साथ

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

साथ रोगी की छाती के ऊपर गर्म सेंक देकर ठीक इस समय ही गर्दन के ऊपर गीली तौलिया रखकर उसके ऊपर बर्फ की थैली (ice bag)

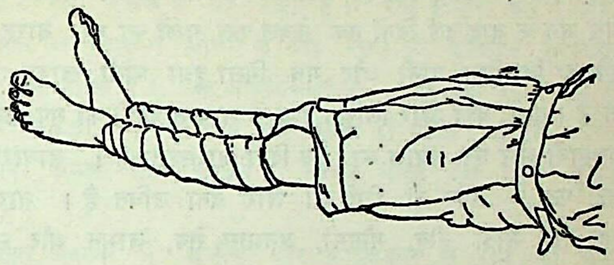

पांव की लपेट (foot pack)

प्रयोग करनी पड़ती है। देहात में बर्फ नहीं मिलने पर खूब ठंडे पानी की पट्टी या गीली मिट्टी मक्खन की तरह करके रक्खी जा सकती है। किंतु इस समय सतर्क होना पड़ता है छाती पर जिसमें किसी तरह से ठंडा पानी न पड़ने पावे। ठंडी लपेट से स्नायविक केन्द्रों (medulla) का रक्ताधिक्य दूर होता है। अतः श्वास-प्रश्वास केन्द्र की उत्तेजित अवस्था कम हो जाती है। फिर छाती की गर्म सेंक श्वासनली की खेंचन शिथिल कर देती है। इस व्यवस्था से प्रायः उसी समय दमा का प्रकोप निष्फल हो जाता है। जरूरत होने पर यह दिन में दो बार किया जा सकता है।

रोगी की छाती में यदि ऐंठन होती हो तब रोगी की पीठ में खाली हाथ से रगड़ना चाहिये। जब तक पीठ लाल और गर्म नहीं हो तब तक ही रगड़ना आवश्यक है।

रोग के समय पूर्णरूपेण विश्राम लेना चाहिये।

[३]

इस रोग में उपवास एक प्रधान चिकित्सा है। रोग का प्रकोप होने पर उपवास रखकर ही रोगी सबसे अधिक अच्छा रहता है। किंतु इस

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

समय नीबू के रस के साथ काफी पानी पीना उचित है। रोगी जितनी लम्बी अवधि तक उपवास रख सकता है उसका शरीर उतना विकार-रहित होता है। किंतु सदा ही धीरे धीरे उपवास तोड़ना आवश्यक है। उपवास भंग के बाद कई दिनों तक केवल फल, फलों का रस, बारह घंटे भिगोये हुए किशमिश, पानी और मधु मिला हुआ पानी खाकर रहना उचित है। इसके बाद ऊपर लिखित पथ्य के साथ तरकारी का सूप, उबली हुई तरकारी और एक उबाल का दूध दिया जा सकता है। साधारणतः रसयुक्त फल के ऊपर ही रोगी को जोर देना उचित है। नारंगी, बिजोड़ा नीबू, मीठा नीबू, मौसमी, अनन्नास, सेव, जामुन और सफेद जामुन आदि उसके लिये सुपथ्य है। क्रमशः आदत डालकर रोगी टमाटर, लेटूस, गाजर, धनिया-पत्ता और पुदीना-पत्ता आदि कच्ची तरकारी (salad), नीबू का रस और ओलिव ऑयल मिलाकर ले सकता है। किंतु प्रारम्भिक अवस्था में सीठी फेंककर केवल रस ग्रहण करना उचित है। रोगी के लिये धारोष्ण बकरी का दूध अति उत्तम पथ्य है। रोग के प्रकोप के बाद कई एक दिन उसे उल्लिखित पथ्य पर रखकर अन्त में एक शाम धान का लाबा, भात या रोटी और दूसरे शाम ये सब पथ्य देना उचित है। रोग सम्पूर्ण रूप से नीरोग नहीं होने तक भात या रोटी यथासम्भव कम कर उल्लिखित पथ्य के ऊपर ही जोर देना चाहिये। ऐसा होने से भीतर से शरीर साफ हो जाता है।

रोगी के शरीर को जिसमें यथेष्ट मात्रा में कैलशियम प्राप्त हो इसकी व्यवस्था करना उचित है। कारण यथेष्ट मात्रा में कैलशियम प्राप्त होने से श्वासनली में शिथिलता आती है और खैंचन गायब हो जाती है। इसलिये उसको दिन में कम से कम दो-तीन बार दूध लेना उचित है। उसीसे शरीर यथेष्ट मात्रा में कैलशियम प्राप्त कर पाता है। रोगी के लिये यथेष्ट मात्रा में ई-विटामिन भी लेना आवश्यक है। यही दमे की आधुनिकतम औषधि और पथ्य है। ई-विटामिन का प्रधान आधार ही है गेहूँ का अँकुर और गेहूँ के बीज का तेल (wheat

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

germ oil)। इसके अतिरिक्त लेटूस साग, पालक साग, अँकुर आया हुआ मुँग, तरल गुड़, हाथ-चक्की का पीसा आटा और हाथ का छाँटा हुआ चावल में यह रहता है। रोग सम्पूर्ण रूप से नीरोग नहीं होने तक जाड़े में भोजन के बाद रोगी को प्रतिदिन कॉडलीवर ऑयल लेना उचित है। यह औषधि नहीं है। यह एक श्रेष्ठ खाद्य है। यदि रोगी बहुत दुर्बल हो जाय तब अवश्य ही माल्ट (malt) मिला कॉडलीवर ऑयल लेना चाहिये। कारण माल्ट एक विशेष पुष्टिकर खाद्य है।

बहुत अवस्था में अजीर्ण और कोष्ठबद्धता से रोग का प्रकोप होता है। यहाँ तक कि यदि पाकस्थली फूल जाय तो उससे भी रोग का आक्रमण हो सकता है (John S. Richardson, M.A., M.D., F.R.C.P.—The Practice of Medicine, p. 85, London, 1956)।

इसलिये जो सब खाद्य पेट खराब कर सकते हैं उनसे सदा परहेज रखना उचित है।

यह स्मरण रखना आवश्यक है, इस रोग में चर्बी जातीय खाद्य अच्छी तरह से पच नहीं पाते। दमा रोग रहने पर कभी भी एक बार में पेट भरकर भोजन करना उचित नहीं, बल्कि थोड़ा थोड़ा करके बार बार खाद्य ग्रहण करना चाहिये। बहुत अधिक पेट भरकर खाने से रोग का प्रकोप होने की विशेष सम्भावना रहती है। बहुत बार दिन के समय बहुत अधिक खाने से भी रात को दमा आ जाता है। रोग सम्पूर्ण रूप से नीरोग नहीं होने तक साँझ के पहले खाना खत्म करना आवश्यक है और साँझ का खाना भी बहुत हलका होने की जरूरत है। भोजन का भी सदा ही निर्दिष्ट समय रहना उचित है और सब खाद्य ही विशेष रूप से चबाकर खाना कर्तव्य है।

इस रोग में श्वास-प्रश्वास का व्यायाम अत्यन्त हितकर है (Ibid., p. 406, London, 1952)। साँझ में और सुबह में इसका

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

पन्द्रह मिनटों के लिये अभ्यास करना उचित है (British Encyclopædia of Medical Practice, Vol. 2, p. 579, London, 1950)। इस समय गहरी साँस लेने की अपेक्षा खींची हुई वायु जिसमें अच्छी तरह निकल जाय इसकी ओर अधिक ध्यान देना चाहिये (H. Corwin Hinshaw, M.D., Ph.D., and L. Henry Garland, M.D.—Diseases of the Chest, p. 258, Philadelphia, 1956)। कुछ दिनों तक श्वास-प्रश्वास का व्यायाम ग्रहण करने से रोग सहज ही फिर लौट नहीं पाता।

यह देखा गया है, भय, भावावेग, उद्वेग, उत्तेजना आदि से बहुत बार दमा का प्रकोप लौट आता है (Harold A. Abramson, M.D.—Treatment of Asthma, p. 390, Baltimore, 1951)। दमा के रोगी स्वभावतः ही स्नायविक दुर्बलता के शिकार और भावप्रवण होते हैं। इसलिये बहुत समय झूठे इंजेक्शन से दमा अस्थायी रूप से रुक जाता है। एक डाक्टर ने लिखा है, 'और सब लोगों की तरह, हम लोगों ने भी दमा की अवस्था में डिस्टिल्ड वाटर इंजेक्ट करके आश्चर्यजनक फल पाया है" (Dr. M. Dunlop, M.D., F.R.C.P., L. S. P. Davidson, M.D., F.R.C.P., and J. W. McNee, D.Sc., M.D., F.R.C.P.—Text-book of Medical Treatment, p. 757, Edinburgh, 1949)। किंतु छलना करके अस्थायी रूप से रोग दबा दिया जा सकता है, रोग नीरोग नहीं किया जा सकता। शरीर की जिस अवस्था में स्नायु दुर्बल हो पड़ते हैं उन्हें दूर करना और आसन तथा हिप बाथ आदि द्वारा स्नायुओं को सबल बना लेना ही इसकी चिकित्सा है (इसके लिये स्नायविक दुर्बलता देखिये)। इस रोग में हिप बाथ लेने के समय दोनों पाँव गर्म पानी में डूबाकर सिर पर गीला गमछा रखना चाहिये। इसी प्रकार कुछ दिन हिप बाथ लेने

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

से रोगी की स्नायविक उत्तेजना दूर होती है। इसके फलस्वरूप दमा का आक्रमण ही क्रमशः बन्द होने लगता है। हिप बाथ और साधारण स्नान के अतिरिक्त सुबह-शाम दो बार गीली तौलिया से सारा शरीर पोंछ देना आवश्यक है। रोगी को यथेष्ट रूप से विश्राम लेना उचित हैं। रोग मिटाने और प्रतिरोध करने के लिये यही एक प्रधान अवलम्बन है। प्रतिदिन उसको शवासन ग्रहण करना उचित है। इससे थोड़े समय में विश्राम प्रगाढ़ होता है। रोगी को सब प्रकार के उद्वेग और उत्तेजना से बचना चाहिये। किन्तु स्वस्थ अवस्था में दैनन्दिन काम-काज किसी हालत में भी बन्द रखना उचित नहीं।

इस रोग में खुली और ठंडी, लेकिन सीलन-भरी न हो, ऐसी जगह ही सर्वश्रेष्ठ है। जिसमें धूल, धुआँ अथवा कोई उत्तेजक गंध नाक में प्रवेश करने न पाय इसके लिये सदा चेष्टा करना आवश्यक है। रोगी के घर में बिल्ली, कुत्ता और चिड़िया इत्यादि जीव-जन्तु भी रखना उचित नहीं। उसकी मसहरी और बिछावन की चादर आदि भी जिसमें दुर्गन्धयुक्त न हों, उसकी व्यवस्था करने की जरूरत है। रोगी का बिछावन सदा घर के बरामदे में बिछाना चाहिये। यह असम्भव होने पर घर के भीतर ऐसे स्थान में बिछावन रखना उचित है जहाँ सहज ही हवा आकर रोगी के मुँह में लग सके। रोगी के लिये खुली हवा में क्रमशः बढ़नेवाला व्यायाम (graduated exercise) अत्यन्त हितकर है। किंतु बहुत अधिक परिश्रम, विशेषतः थकान सदा वर्जनीय है। रोगी को जिसमें गाढ़ी नींद आये इसके लिये व्यवस्था करनी चाहिये। बहुत अधिक गर्म और ठंडी हवा से सदा बचना उचित है।

इस रोग की प्रबल अवस्था में समय समय पर विभिन्न प्रकार के चूर्ण, सिगरेट और स्प्रे का व्यवहार होता है। कोकीन आदि विभिन्न विषाक्त औषधि द्वारा ये प्रस्तुत किये जाते हैं। इसके व्यवहार से दमा का प्रकोप बहुत बार रुक जाता है अथवा थोड़ा कम हो जाता है। किंतु ये

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

सब औषधियाँ आँख, नाक और गले की श्लैष्मिक झिल्ली में उत्तेजना पैदा करती हैं और जोर की खाँसी उत्पन्न करती हैं (R. N. Chopra, B. Mukherjee and I. C. Chopra—A Treatise on Tropical Therapeutics, p. 1090, Calcutta, 1954)।

वस्तुतः इस रोग की कोई औषधि नहीं। औषधियों के देश अमेरिका के सैकड़े प्रायः ४ आदमी ही इस रोग से पीड़ित रहते हैं (Michael G. Wohl, M.D., F.A.C.P.—Internal Medicine, p. 689, Philadelphia, 1951)। इंगलैण्ड में भी इसका प्रकोप यथेष्ट है। जो सब औषधियाँ इस रोग में व्यवहृत होती हैं उनसे तो यह रोग अच्छा ही नहीं होता, वरन् रक्त को और भी दूषित करके रोग को ही स्थायी कर देती हैं।

यह कहा जाता है, दमा कभी भी अच्छा नहीं होता। लेकिन यह नीरोग नहीं होता, यह कहना एकदम गलत है।

सभी रोगों का जो मूल कारण है, शरीर का वही सञ्चित विष जब शरीर से निकाल दिया जाता है और साथ साथ शरीर को सबल बना लिया जाता है तब रोग का स्वाभाविक अन्त होता है।

वस्तुतः केवल दमा की ओर ध्यान देकर कभी यह नीरोग नहीं किया जा सकता। नीरोग करने के लिये the patient should be thoroughly overhauled—रोगी के शरीर को नये सिरे से गढ़ लेना उचित है (Ibid., p. 1089)। इसके अतिरिक्त आहार-बिहार से जिसमें जीवन में नया प्रवाह (reorganisation of life), प्रवर्तित हो इसके लिये व्यवस्था करनी चाहिये (Dr. M. Dunlop, M D., F.R.C.P.—Text-book of Medical Treatment, p. 767, Edinburgh, 1949)।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

क्षयरोग
[Tuberculosis]
[१]

देश में हैजा या चेचक का प्रादुर्भाव होने पर जनसाधारण में बहुत अधिक आतंक फैल जाता है। किन्तु लोगों की आंखों की ओट में दिन पर दिन क्षयरोग से कितने लोग प्राणत्याग करते हैं जनसाधारण उसका हिसाब नहीं रखता।

प्रति वर्ष पृथ्वी पर विभिन्न रोग से जितने लोगों की मृत्यु होती है उसके एक प्रधान अंश की मृत्यु होती है क्षयरोग से। इस रोग में शरीर का जो कोई भी स्थान आक्रान्त हो सकता है। जब फेफड़े पर इसका आक्रमण होता है, तभी उसको क्षयरोग (pulmonary tuberculosis) कहा जाता है।

विभिन्न रूप से इस रोग की सूचना मिलती है। किन्तु साधारणतः रोग के शरीर में घर कर लेने के पहले धीरे-धीरे विभिन्न रोग लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। पहले ही रोगी की भूख कम हो जाती है। इसके बाद वजन धीरे धीरे घटने लगता है। सहज ही उसको थकान मालूम होने लगती है। प्रायः ही खाँसी का उपद्रव होता रहता है। जब तीन सप्ताह या इससे अधिक समय यह स्थायी होता है तब यह एक आतंक का विषय बन उठता है। कभी कभी रोगी के कफ के साथ खून गिरता है अथवा कफ में खून के छींटे दिखाई पड़ते हैं। इसके बाद शाम के पहले भीतर भीतर बुखार, छाती में दर्द तथा सोने में पसीना (night sweat) आरम्भ होता है। दूसरी अवस्था में क्षय के बीजाणु फेफड़े के अन्दर खोखला बना देते हैं और अन्तिम अवस्था में रोगी का दूसरा फेफड़ा भी आक्रांत हो जाता है।

यह रोग विशेष एक प्रकार के जीवाणु (tubercle bacillus) से उत्पन्न होता है इसमें सन्देह नहीं। किंतु ये जीवाणु शरीर के भीतर

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

रहने से ही रोग होता हो ऐसा नहीं। यहाँ तक कि वे यदि फेफड़े में घाव उत्पन्न कर दें ऐसा होने पर भी रोग नहीं होता। यह देखा गया है, मनुष्य की उम्र जितनी बढ़ती जाती है, इस जीवाणु का विस्तार उतना ही अधिक होता है। जो सब लोग क्षय के अतिरिक्त और रोगों से मरे हैं उनके मृत शरीर की परीक्षा करके देखा गया है, तीस वर्ष की उम्र में सैकड़े नब्बे से अधिक लोगों के फेफड़े में टी० बी० से उत्पन्न घाव रहता है (T. Holmes Sellors, M.A., F.R.C.S., and J. L. Livingstone, M.D., F.R.C.P.—Modern Practice in Tuberculosis, p. 29, Temple Bar, 1952)। १९४४ ईस्वी में स्वीडेन के एक शहर में प्रायः ५०,००० निवासियों की क्षयरोग के लिये परीक्षा की गयी थी। उसमें देखा गया जो चालीस वर्ष के हो गये हैं, ऐसे प्रायः प्रत्येक आदमी को टी० बी० है। वस्तुतः अधिकांश लोग जीवन में किसी न किसी समय इस रोग से आक्रांत होते हैं (Ibid., p, 29)। किंतु वे इसे जान नहीं पाते। असल में the infection is universal—इस रोग का आक्रमण सर्वव्यापी है। किंतु इसीलिये सभी ही रोगग्रस्त होंगे, ऐसा नहीं। जब विभिन्न कारणों से शरीर के अन्दर रोग विस्तार की अनुकूल अवस्था उत्पन्न होता है, तभी केवल क्षयरोग का आक्रमण होता है।

वस्तुतः हठात् इस रोग का आक्रमण होना कभी भी सम्भव नहीं। 'जितने दिन रक्त साफ रहता है और शरीर के तन्तु सबल तथा स्वस्थ रहते हैं, उतने दिन क्षय के जीवाणु शरीर को कोई क्षति नहीं कर सकते। पहले शरीर विभिन्न दूषित पदार्थों द्वारा बोझिल हो उठता है, इसके बाद क्षय प्रकट हो जाता है (Louis Kuhne—The New Science of Healing, p. 166) शरीर में टी० बी० के जीवाणु वर्तमान रहने के कारण कभी रोग नहीं होता। शरीर की विकारयुक्त अवस्था ही अन्य रोगों के जीवाणु के समान टी० बी० के जीवाणु को रोग उत्पन्न करने में सक्षम बनाती है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

इसलिये क्षयरोग की चिकित्सा में factors which predispose to infection must be looked for, not so much among the seeds as in the soil in which the seed is sown—शरीर की जिस अवस्था में रोग का आक्रमण सम्भव होता है उसे ढूँढ़ निकालना उचित है। इसे जीवाणु के अन्दर नहीं ढूँढ़कर जिस जमीन में जीवाणु विस्तार प्राप्त करते हैं उसके अन्दर अनुसन्धान करना चाहिये (Dr. M. Dunlop, M.D., F.R.C.P., and others—Medical Treatment p. 114, Edinburgh, 1949)।

वस्तुतः it is obvious that the development of tuberculosis depends more on the nature of the soil than on the presence of seed—यह स्पष्ट है कि, यक्ष्मा का प्रकट होना जीवाणु की उपस्थिति की अपेक्षा जिस जमीन में जीवाणु विस्तार प्राप्त करते हैं उसकी अवस्था के ऊपर अधिक निर्भर करता है (Morris Rubin, B.A., M.D.—Diseases of the Chest, p. 176)।

वर्तमान समय में विभिन्न जीवाणुनाशक औषधियाँ (antibiotics) क्षयरोग की चिकित्सा में प्रयोग की जा रही हैं। किंतु इसके फलस्वरूप पृथ्वी से क्षयरोग उठ नहीं गया है। इस रोग से अभी भी प्रति वर्ष ५० लाख व्यक्ति प्राणत्याग करते हैं एवं प्रायः ३० करोड़ व्यक्ति इस रोग से भुगतते रहते हैं (The Statesman, editorial, 11th January, 1957)।

यह अवश्य ही सत्य है कि वर्तमान समय में पाश्चात्य जगत् में टी० बी० के रोगियों की संख्या तेजी से घटती जा रही है। किंतु यह किसी औषधि के व्यवहार के फलस्वरूप नहीं हुआ है। स्ट्रेप्टोमाइसिन आदि आधुनिक औषधि के प्रवर्तन के पहले से ही यह घटती जा रही है (T. Holmes Sellors, M.A., F.R.C.S., and J. L.

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

Livingstone, M.D., F.R.C.P.—Modern Practice in Tuberculosis, p. 29, Temple Bar, 1952)।

अमेरिका के ३२ अस्पतालों की रिपोर्ट यही है कि इन सब औषधियों द्वारा केवल आधे रोगी नीरोग होते हैं और बाकी आधे नहीं होते (R. B. Billimoria, B.A., M.D.—Tuberculosis and Drugs, Indian Medical Profession, Vol. 1, No. 1, April, 1954)। यह भी देखा गया है जो इस चिकित्सा से नीरोग हुए हैं वे जिस किसी क्षण फिर रोगग्रस्त हो सकते हैं (John H. Musser, M.D., F.R.C.P.—Internal Medicine, p. 933, Philadelphia, 1951)।

क्यों इस प्रकार होता है ? होता है इसलिये कि वर्तमान समय में केवल जीवाणु-हत्या की ओर ही ध्यान दिया जाता है, शरीर की जिस अवस्था के कारण रोग होना सम्भव होता है उसको दूर करने की ओर नहीं।

इसलिये जिस अनुकूल अवस्था में यक्ष्मा-जीवाणु का ध्वंसकार्य सम्भव होता है, उसे दूर करना अर्थात् फेफड़े के साथ सम्पूर्ण शरीर को विकार-रहित करना, शरीर की रोग-प्रतिरोध की क्षमता में वृद्धि करना और शरीर के भीतर रोग नीरोग करने की जो व्यवस्था है उसको काम में लाना ही इसकी प्रमुख चिकित्सा है।

[२]

इस रोग में विश्राम ही सर्वप्रधान चिकित्सा है। शरीर को विश्राम देते ही प्रकृति शरीर का संस्कार कर देने का अवसर पाती है। इसलिये रोगी को विश्राम देने से धीरे धीरे उसके सब रोग-लक्षण कम हो जाते हैं। यदि रोगी को आवश्यकतानुसार कई दिन से कई सप्ताह बिछावन में रखकर पूर्ण विश्राम दिया जाय, तब बहुत समय केवल इसीके द्वारा रोगी की दुर्बलता, मन्दाग्नि, अजीर्ण, कलेजे की द्रुत धड़कन, ज्वर, खाँसी और श्लेष्मा कम हो जाते हैं। इसलिये जितने दिन रोगी का ज्वर

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

रुकता नहीं, उतने दिन रोगी को बिछावन में रखकर विश्राम देना चाहिये (France's Marrion Pottenger, M.D., L.L.D. —Tuberculosis in Child and the Adults, p. 404) । इससे घाव का विस्तार रुकता है एवं छाती के भीतर का गड्ढा (cavity) हो नहीं पाता (John H. Musser, M.D., F.A.C.P., and Michael G. Wohl, M.D., F.A.C.P. —Internal Medicine, p. 925, Philadelphia, 1951)। रोगी का यथासम्भव अधिक समय तक चित होकर विश्राम करना उचित है। इससे छाती की रोग-प्रतिरोध क्षमता बढ़ जाती है और घाव सहज ही सूख जाता है। इसके अतिरिक्त श्लेष्मा सहज ही निकल आती है और उसके साथ यथेष्ट जीवाणु शरीर से विदा ले लेते हैं। जब चित होकर लेटना अच्छा नहीं लगे तब जिस भाग में रोग का आक्रमण हो, उसी भाग पर दवाव देकर सोया जा सकता है। इससे फेफड़े अधिक विश्राम पाते हैं।

क्षयरोग के आक्रमण होते ही यथासम्भव शीघ्र चिकित्सा प्रारम्भ करना उचित है और रोग के विभिन्न लक्षणों के दिखाई पड़ने के लिये कभी भी प्रतीक्षा करना उचित नहीं। किंतु चिकित्सा का अर्थ ही परिपूर्ण विश्राम-ग्रहण है। यही क्षयरोग की सर्वप्रधान चिकित्सा एवं बहुत समय एकमात्र चिकित्सा है। All other treatments are to be considered adjunct therapy—और सब चिकित्सा को ही आनुषंगिक चिकित्सा जैसा गिनना चाहिये (Ibid., p. 924)।

किसी को टी० बी० हुआ है ऐसा सन्देह होते ही सब कोई अस्पताल में बेड पाने के लिये बेचैन हो उठते हैं। किंतु किसीको भी छाती में सामान्य एक घाव होते ही घर-आंगन छोड़कर यदि अस्पताल में परिपक्व टी० बी० रोगियों के बीच आश्रय लेना पड़े, तब लोगों के घर-द्वार तोड़कर देशव्यापी टी० बी० अस्पताल खड़ा करने की व्यवस्था करना उचित है। टी० बी० हुआ है ऐसा सन्देह होने पर पहले ही

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

विश्राम के साथ शरीर को विकार-रहित करने की चेष्टा करना कर्तव्य है।

हमेशा ध्यान रखना आवश्यक है रोगी जिसमें बहती हवा में रहकर विश्राम ले सके। इससे रात को पसीना (night sweat) गायब हो जाता है, गाढ़ी नींद आती है, कफ और खाँसी कम हो जाती है, शरीर का ताप घटता है, मन की अवस्था उन्नति प्राप्त करती है और जीवन में आशा का संचार होता है (Dr. M. Dunlop, M.D., F.R.C.P.—Text-book of Medical Treatment, p. 122, Edinbugh, 1949)। यह स्मरण रखना चाहिये कि रोगी को खुली हवा में रखना ही सब प्रकार के संक्रामक रोग में, विशेषतः श्वास-प्रश्वास के रोगों में शरीर की रोग-प्रतिरोध शक्ति को बढ़ाने का सर्वप्रधान उपाय है। वर्तमान समय में यह निःसन्देह प्रमाणित हो गया है कि खुली हवा से जो उपकार होता है, वह त्वचा के ऊपर बहती हवा के प्रभाव से ही हो पाता है (Ibid., p. 122)। अतः रोगी को बहुत अधिक कपड़ों से ढककर रखना उचित नहीं। इस समय विशेष रूप से ध्यान देना चाहिये, ठंडी हवा में रोगी को जिसमें कष्ट न हो और सदा आराम अनुभव करे। ग्रीष्मकाल में रोगी को प्रतिदिन १० से १२ घण्टे एवं शीतकाल में ६ से ८ घण्टे खुली हवा में रखने से ही साधारणतः पर्याप्त होता है।

किंतु शारीरिक विश्राम सदा ही मानसिक विश्राम से युक्त होना चाहिये। अन्यथा पूर्ण विश्राम प्राप्त नहीं होता।

रोगी को शुरू से ही कोष्ठ साफ रखना उचित है। अन्यथा सब चिकित्सा ही बेकार हो सकती है। इसके लिये प्रधानतः पथ्य के ऊपर निर्भर करना चाहिये (कोष्ठबद्धता देखिये)। तथापि कुछ भी सोचे बिना सप्ताह में दो दिन करके रोगी को डूस देना उचित है।

छाती के अन्यान्य रोगों की भाँति छाती की लपेट (chest-pack) ही इसकी प्रधान चिकित्सा है। यह रोमकूप खोल देकर

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

त्वचा की राह रोग-विष खींच लेती है और भीतरी रक्तबद्धता दूर करके फेफड़े को स्वस्थ कर देती है। यह लपेट कुछ दिन नियमित रूप से व्यवहार करने पर रोगी की खाँसी, ज्वर और रात का पसीना कम हो जाता है और बहुत बार गायब हो जाता है। छाती की लपेट श्वेतकणों की संख्या इस प्रकार बढ़ा देती है कि उसके फलस्वरूप घाव अपने आप नीरोग होता है एवं प्रधानतः इसीलिये छाती की लपेट लेने से ज्वर और खाँसी आदि कम हो जाते हैं (J. H. Kellogg, M.D.—Rational Hydrotherapy, p. 862, Battle Creek, 1928)। विश्राम के साथ प्रयोग करने से रोग-लक्षण अपेक्षाकृत तेजी से गायब होते हैं। शुरू से ही रोगी को दिन भर में दो बार एक से दो घंटे के लिये छाती की लपेट का प्रयोग करना आवश्यक है। रोगी अत्यन्त दुर्बल होने से दिन में एक बार एक घंटे के लिये प्रयोग करना उचित है। इस समय ध्यान रखना आवश्यक है, लपेट देने पर रोगी जिसमें जाड़ा जैसा अनुभव न करे।

रोगी के पेट की ओर भी विशेष रूप से ध्यान देना आवश्यक है। इस रोग में पुष्टि ग्रहण करने की शक्ति इस प्रकार घट जाती है कि यथेष्ट खाने पर भी रोगी दैनन्दिन क्षय के साथ ताल मिलाकर चल नहीं पाता। अतः सहज ही मौत के मुँह में जा पड़ता है। इसलिये फेफड़े का क्षयरोग होने पर भी रोगी की पाचन और रस खींचने की शक्ति बढ़ाना चिकित्सा का एक प्रधान अंश है।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये पेट की लपेट सर्वप्रमुख सहायक है। पेट की लपेट लेने से आँत की रस खींचने की शक्ति बढ़ती है और शरीर तेजी से सबल हो उठता है। किन्तु जब रोगी को ज्वर न रहे तभी इसका प्रयोग करना उचित है। ज्वर की अवस्था में रोगी के पेट पर दिन में दो बार बिना ढकी हुई अवस्था आधे घंटे के लिये गीला गमछा रक्खा जा सकता है। किन्तु गर्म होते ही उसे बार बार बदल देना चाहिये। इसकी अपेक्षा भी अच्छा होता है, यदि दिन में तीन बार रोगी का पेट

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Arya Samaj Foundation, Chandigarh

दस मिनटों के लिये गीले गमछे से पोंछ दिया जाय। इससे पेट अच्छा रहता है और ज्वर कम हो जाता है। अतिसार (diarrhoea) होने पर भी प्रत्येक आधे घंटे पर बदल देकर रोगी के पेट पर गीला गमछा रखना आवश्यक है। लपेट लेने से कठिन अतिसार भी अच्छा होता है और रोगी का पेट सदा के लिये अच्छा रहता है।

इस रोग में जो साधारणतः अतिसार और मन्दाग्नि दिखाई पड़ती है वह क्षयरोग के विषक्रिया से उत्पन्न होती है। रोग जितना घटता जाता है, पेट उतना स्वस्थ होता है। इसलिये छाती की लपेट विश्राम और खुली हवा में रहने पर सदा जोर देना चाहिये।

उठकर बैठने की शक्ति रहने पर प्रत्येक क्षयरोगी को ही नियमित रूप से प्रतिदिन हिप बाथ लेना आवश्यक है। इससे केवल कोष्ठ साफ रहता है और पेट अच्छा रहता है यही नहीं, शरीर की रोग-प्रतिरोध शक्ति बढ़ाने में इस प्रकार का वैज्ञानिक स्नान दूसरा नहीं है।

जर्मनी के प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सिक ऐडल्फ जुष्ट ने अत्यन्त जोर के साथ कहा है, यह बाथ नियमित रूप से चलाने पर क्षयरोग किसी तरह भी बढ़ नहीं सकता (Return to Nature, p. 19)। रोग के प्रारम्भ से हिप बाथ चलाने पर इस रोग में मृत्यु होना अत्यन्त कठिन हो जाता है।

इन सब बाथ के अतिरिक्त रोगी को प्रतिदिन तौलिया स्नान का प्रयोग करना चाहिये। अधिकांश अवस्था में जब रोगियों को थोड़ा थोड़ा ज्वर रहता है, तब वे स्नान बन्द करके रोग को अत्यन्त भयंकर बना लेते हैं। शरीर के ऊपर सीमित ठंडे पानी के प्रयोग से रोगी की क्षुधा, पाचन शक्ति और आँत की रस खींचने की शक्ति एवं समस्त शरीर की जीवनी शक्ति विशेष रूप से बढ़ जाती है।

शय्याग्रस्त और ज्वरग्रस्त रोगियों को अत्यन्त सतर्कता के साथ दिन में दो बार तौलिया स्नान (graduated sponge bath) क्रमशः बढ़ाकर प्रयोग करना आवश्यक है। सुबह बिछावन छोड़ने

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

के बाद तथा रात के बिछावन पर जाने के पहले यह करने पर अत्यन्त लाभ होता है। शुरू शुरू में रोगी को हल्के गर्म पानी से थोड़े समय के लिये स्पंज करना चाहिये। इसके बाद दिन दिन पानी की गर्मी कम करते करते अन्त में ठंडे पानी से रोगी को पोंछ देना पड़ता है। तौलिया स्नान का समय भी प्रतिदिन बढ़ाते जाना आवश्यक है। तौलिया स्नान की प्रयोग करने के पहले दिन में दो बार उसे एक घंटे के लिये पाँवों को लपेट देना नितान्त आवश्यक है। यह क्षयरोग की एक उत्कृष्ट चिकित्सा है। पाँवों की पट्टी खोलकर ही स्पंज बाथ देना चाहिये।

रोगी को प्रतिदिन एक बार तौलिया स्नान के पहले बीस से तीस मिनटों के लिये घर्षण स्नान का प्रयोग करने से अत्यन्त उपकार होता है। सब प्रकार के ज्वर नीरोग करने के लिये घर्षण स्नान की भाँति दूसरा कुछ नहीं है। इस रोग में छाती की लपेट जिस तरह छाती अच्छी करके ज्वर को कम करती है उसी तरह घर्षण स्नान शरीर को रोग-प्रतिरोध शक्ति बढ़ा देकर ज्वर को कम कर देती है। यह प्रयोग करते समय सदा ही पाँवों के नीचे एक गर्म पानी की थैली रखना आवश्यक है। किन्तु छाती के रोग में कभी भी छाती और पीठ पर घर्षण स्नान का प्रयोग करना उचित नहीं। यह सम्पूर्ण शरीर में प्रयोग करके छाती और पीठ गीले गमछे द्वारा पोंछ देना आवश्यक है और उसके बाद हल्के रगड़-कर गर्म कर लेना उचित है।

किन्तु रोगी को सब प्रकार के ठंडे बाथ के प्रयोग के समय ध्यान रखना उचित है जिसमें कभी उसे ठंड न लग जाय। इसलिये कमरे के दरवाजे-खिड़कियाँ बन्द करके और उसके पाँवों के नीचे एक गर्म पानी की थैली रखकर उसके शरीर पर सदा ठंडा का प्रयोग करना चाहिये। रोगी का पाँव यदि ठंडा हो तो पहले पाँव गर्म कर लेना आवश्यक है। रोगी के हाथ-पाँव भी सदा के लिये गर्म रखने की जरूरत है।

रोगी को प्रतिदिन नीबू के रस के साथ काफी पानी पीने के लिये देना उचित है। उससे भीतर से शरीर धुल जाता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

यह सब चिकित्सा निष्ठा के साथ चलाने से रोगी के ज्वर की मात्रा भी धीरे धीरे कम हो जाता है। उसके बाद साधारणतः ज्वर केवल एक शाम होता है। तब रोगी को एक शाम छाती की लपेट देकर दूसरे समय जब ज्वर न रहे तब तनिक भी विराम दिये बिना एक घंटे या आधे घंटे पर बदल देकर सब समय के लिये पेट की लपेट प्रयोग करनी चाहिये। साधारणतः दिन में तीन-चार बार करने से ही यथेष्ट होता है। क्षय के रोगी को दीर्घ समय के लिये गीली चादर का पैक देने से उसका बहुत नुकसान हो सकता है। इसलिये इस तरह की दुर्बल अवस्था में ये सब आंशिक लपेट प्रयोग करके रोगी के शरीर को विकार-रहित करना आवश्यक है।

इन सब चिकित्सा से एक ओर मल, मूत्र और पसीने के साथ जब शरीर में सञ्चित दूषित पदार्थ बाहर निकल जाते हैं और दूसरी ओर शरीर की पुष्टिग्रहण और रोग-प्रतिरोध की शक्ति बढ़ ज़ाती है, तब क्षय के जीवाणु शरीर का कोई अनिष्ट करने में समर्थ नहीं होते। अतः रोगी आरोग्य प्राप्त कर लेता है और रोग भी फिर लौटता नहीं।

सब प्रकार की उद्वेग से बचकर यह चिकित्सा ग्रहण करनी चाहिये। किन्तु ज्वर बन्द होते ही रोगी को निश्चिन्त होना उचित नहीं। कारण, ज्वर बन्द होने से ही रोग नीरोग नहीं होता। दीर्घ अवधि तक रोग उसके भीतर सो रहता है एवं अनुकूल अवस्था पाते ही फिर उभर आता है। इसलिये ज्वर बन्द होने के बाद भी दीर्घ अवधि तक बीच-बीच में छाती की लपेट और पेट की लपेट लेनी चाहिये।

इस अवस्था में शरीर को सबल बनाने के लिये भी चेष्टा करनी चाहिये। इसके लिये ज्वर रहने पर रोगी का विश्राम ही जैसे चिकित्सा है, वैसे ही ज्वर उतरने पर खुली जगह में व्यायाम ही प्रधान चिकित्सा है। किन्तु यह भी बहुत थोड़े से आरम्भ करके धीरे धीरे बढ़ाना चाहिये।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

[३]

क्षयरोग एक विनाशकारी रोग है। इसलिये रोगी का पथ्य ऐसा होना आवश्यक है जिसमें उसका विनाश रुके और रोगी दिन पर दिन पुष्टि प्राप्त करे। किन्तु वर्तमान चिकित्सा-जगत् का मत यही है कि रोगी को कभी जोर करके खिलाना उचित नहीं। रोगी को जोर करके खिलाने से मन्दाग्नि, पेट फूलना और डायरिया इत्यादि प्रकट हो सकते हैं।

इस रोग में पाचन शक्ति स्वभावतः ही अत्यन्त दुर्बल रहती है। इसलिये जितने दिन पेट अच्छा नहीं होता और शरीर ग्रहण करने के लायक अवस्था में नहीं आ जाता, उतने दिन रोगी को कम करके केवल हल्के पथ्य देना आवश्यक है। इस समय रोगी को केवल फल, फलों का रस, तरकारी का जूस, छेना का पानी, मधु, अण्डे का पीला अंश, दूध और पेट बहने पर चूड़ा की लेई आदि देना उचित है। इसके बाद पेट और शरीर की अवस्था में उन्नति होने के साथ साथ अन्यान्य पथ्य दिये जा सकते हैं। साधारणतः उसे दिन में तीन बार खाने को देने से ही यथेष्ट होता है।

रोगी के अत्यन्त दुर्बल हो जाने पर उसको यथेष्ट परिमाण में माल्ट देना चाहिये एवं साथ साथ ओलिव ऑयल, मक्खन या क्रीम देना उचित है। इससे जिस किसी खाद्य से अपेक्षाकृत जल्दी शरीर में चर्बी संचित होती है। माल्ट के साथ उचित मात्रा में मक्खन या ओलिव ऑयल मिलाकर दिन में तीन बार खाद्य के साथ यथेष्ट परिमाण में लिया जा सकता है। इस पथ्य से रोगी का वजन कुछ दिनों तक रोजाना एक पौंड करके बढ़ाया जा सकता है (J. H. Kellogg, M.D.—The New Dietetics, p. 890, Washington, 1923); किन्तु यह हजम होना चाहिये।

अन्यान्य खाद्य भी रोगी को यथेष्ट रूप में देना उचित है। रोगी का लिवर यदि अच्छा रहे तब उसको थोड़ा अधिक चर्बी जातीय खाद्य

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

देना चाहिये। शर्करा खाद्य के समान यह फेफड़ों का श्रम बढ़ाता नहीं। किन्तु वह सदा ही शर्करा खाद्य के साथ ग्रहण करना उचित है। अन्यथा वह पच नहीं पाता। किन्तु कभी भी खिला खिलाकर रोगी को बहुत अधिक मोटा करना उचित नहीं। इससे फेफड़े का श्रम बढ़ जाता है (John H. Musser, M.D., F.R.C.P. and Michael G. Wohl, M.D., F.A.C.P.—Internal Medicine, 928, Philadelphia, 1951)। प्रोटीन खाद्य रोगी को बहुत अधिक देना उचित नहीं। कारण टायफायड आदि से शरीर का प्रोटीन जिस प्रकार से ध्वंस होता है, क्षयरोग में उस प्रकार नहीं होता (Clifford J. Barborka—Treatment by Diet. p. 440, Philadelphia, 1948)।

रोगी को प्रोटीन खाद्य के लिये भी प्रधानत: दूध और दुग्धजात द्रव्य के ऊपर निर्भर करना उचित है। कारण वह विशुद्ध खाद्य है और मांस की भाँति ही पुष्टिकर है। रोगी जितना दूध सहन कर सके उतना ही उसको देना उचित है। दूध सहन नहीं होने पर रोगी छेना तथा छेना का पानी ले सकता है। किन्तु श्वासयंत्र के रोग में दही खाना उचित नहीं। डाब का पानी एवं बर्फ भी निषिद्ध है। विभिन्न खट्टे जाति के फल उसके लिये हितकर हैं। रोगी यथेष्ट मात्रा में नारंगी, टमाटर, बिजोड़ा नीबू तथा अनन्नास आदि फल का रस ले सकता है। इसके अतिरिक्त सेव, डाब का गूदा, जामुन, सफेद जामुन, मौसमी आदि मौसमी फल प्रचुर परिमाण में खाना उचित है। प्रतिदिन थोड़ी-सी उबाली तरकारी, तरकारी का सूप एवं सहन होने पर सलाद लेना चाहिये। तरह तरह से रोगी को सफेद कुम्हड़े का रस देना आवश्यक है। छाती के घाव में यह जैसा पथ्य है, वैसी ही दवा भी। मधु भी अत्यन्त हितकर है। सब प्रकार की खाँसी और दुर्बलता में यह एक श्रेष्ठ खाद्य है। ज्वर उतरने के बाद तनिक भी देर न करके कॉडलीवर आयल आरम्भ करना चाहिये। इससे नियमित रूप से विटामिन-ए शरीर को प्राप्त होता

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

है। किन्तु कॉडलीवर ऑयल शुरू में केवल तीन बूंद से आरम्भ करना उचित है एवं क्रमशः बढ़ाकर जितना सहन हो उतना खाया जा सकता है। रोगी का पथ्य सदा ही इस प्रकार का होना उचित है जो सहज पचनेवाला, अनुत्तेजक और क्षार जातीय खाद्य के अन्तर्गत हो।

धूम्रपान इस रोग में अत्यन्त हानिकर है। यह फेफड़े की अवस्था खराब करता है और भूख मार देता है।

यथासमय चिकित्सा आरम्भ करने पर इस रोग में कभी भी औषधि व्यवहार करना आवश्यक नहीं होता। किन्तु रोग यदि एक बार भीतर बैठ जाता है तब किसी चिकित्सा से ही शीघ्र आरोग्य प्राप्त करना कठिन हो जाता है और सब रोगी कभी आरोग्य प्राप्त नहीं करते। किन्तु केवल औषध पर कभी भी निर्भर करना उचित नहीं।

आधुनिक जीवाणुनाशक औषधियों से बहुत बार रोग तेजी से आराम (relief) हुआ है सही, किन्तु drug therapy alone can never cure tuberculosis. It is an aid, not a cure—केवल मात्र औषधि कभी टी० बी० नीरोग नहीं कर सकती। यह आरोग्य के लिये सहायक मात्र है, अचूक औषधि नहीं (R. B. Billimoria, B.A., M.D.—Medical Director, Belair Sanitorium, Panchgani, Tuberculosis and Drugs, Indian Medical Profession, Vol. 1. April, 1954)।

औषधि की चिकित्सा करने पर भी इस रोग में सदा ही प्राकृतिक चिकित्सा एक बार करना उचित है। इसके अतिरिक्त कभी निश्चिन्त हुआ नहीं जा सकता।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

चतुर्थ अध्याय

पुष्टि संबंधी रोग

रक्तहीनता
[Anaemia]

[१)

शरीर में रक्त का अंश कम होने का नाम रक्तहीनता है। इसमें शरीर की त्वचा और ओठ निष्प्रभ हो जाते हैं और रोग यदि प्रबल हो तब सर चकराना, थकान, दुर्बलता, श्वासकष्ट, हृदय की धड़कन एवं मूर्च्छा आदि प्रकट होते हैं। रोग पुराना हो जाने पर रोगी की पाचनशक्ति नष्ट हो जाती है, हृत्पिंड अत्यन्त दुर्बल हो जाता है एवं कभी कभी सूजन दिखाई पड़ती है।

विभिन्न कारणों से यह उत्पन्न होता है। साधारणत: नाक, पाकस्थली, गर्भाशय, ववासीर या और किसी घाव से अत्यधिक रक्तस्राव होने के फलस्वरूप यह प्रकट होता है।

तुरंत तुरंत गर्भाधान और दीर्घ अवधि तक स्तन पान कराने के फलस्वरूप कभी कभी यह अवस्था आ जाती है।

हमारे शरीर में रक्त निर्माण में जो सब उपादान आवश्यक होते हैं उनमें लोहा ही प्रथम स्थान दखल करता है। जब खाद्य में यथेष्ट लोहा नहीं रहता तब बहुत अवस्था में रक्त की कमी उपस्थित होती है।

किंतु रोग कठिन होता है यदि पाकस्थली से लोहा ही शरीर में खींचा न जाय। जब पाकस्थली से यथेष्ट पाचक रस (hydrochloric acid) उत्पन्न नहीं होता, तब पाकस्थली से लोहा शरीर में ग्रहीत नहीं होता एवं खाद्य लौहप्रधान होने पर भी वह शरीर के किसी काम में

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh
नहीं आता। पुराना अजीर्ण रहने पर भी शरीर की लोहा खींचने की शक्ति घट जाती है।

हमारी अस्थियों की मज्जा (bone marrow) के भीतर ही साधारणतः रक्त गठित होता है। जब अस्थिमज्जा की यह शक्ति नष्ट हो जाती है तब सदा ही शरीर में रक्तहीनता आ उपस्थित होती है।

इस प्रकार रक्तहीनता विभिन्न श्रेणियों की होती है। यह सबसे अधिक घातक होती है जब सांघातिक रक्तहीनता (pernicious anaemia) दिखाई पड़ती है। यह एक पृथक पुरानी व्याधि है। इस रोग में पाकस्थली के पाचक रस का निकलना बन्द हो जाता है और शरीर में जितनी तेजी से रक्त बनता है उससे अपेक्षाकृत तेजी से रक्तकणों का ध्वंस हो जाता है।

घाव के मुँह से रक्त निकलने के फलस्वरूप जो रक्तहीनता दिखाई पड़ती है उसको एक दुर्घटना कहकर विवेचना करना उचित है। इसके अतिरिक्त अन्य जिस किसी कारण से ही रक्तहीनता उत्पन्न हो सदा ही वह शरीर की एक विकारयुक्त अवस्था से उत्पन्न होती है। शरीर स्वस्थ रहने पर कभी भी इस प्रकार होना सम्भव नहीं कि पाकस्थली में पाचक रस उत्पन्न नहीं हो अथवा अस्थि का मज्जा रक्त बनाने की क्षमता खो बैठे, यह कभी स्वाभाविक नहीं। जब शरीर विभिन्न दूषित पदार्थों द्वारा बोझिल होता है और उसके फलस्वरूप शरीर का रक्त और रस विषाक्त हो उठते हैं, तभी शरीर के भीतर इस प्रकार की अवस्था उत्पन्न होना सम्भव होता है। इसीलिये विभिन्न रोगों में रक्तहीनता उत्पन्न हो जाती है एवं बहुत अवस्था में आर्सेनिक, सोना, शीशा, आइडिन और पारा आदि विषाक्त औषध के व्यवहार के फलस्वरूप शरीर में ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है एवं उसके रक्त की कमी प्रकट होती है। स्ट्रेप्टोमाइसिन, क्लोरोमाइसिटिन एवं विभिन्न आधुनिक औषधियाँ (sulphonamides, para-aminosalicylic acid आदि) सभी रक्त की कमी उत्पन्न कर सकती हैं और इसके व्यवहार से बहुत

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

बार घातक रक्तहीनता (fatal anaemia) उपस्थित होता है (Health For All, July, 1957, p. 95)।

इसलिये शरीर को विकार-रहित करना और साथ-साथ रक्त-निर्माण-कारी और रक्तहीनता निवारणकारी एवं विभिन्न रक्षाकारी खाद्य (protective foods) देना ही इसकी प्रधान चिकित्सा है।

[२]

जब किसी रोग के कारण न होकर रक्तस्राव के फलस्वरूप रक्तहीनता उत्पन्न होती है, तब केवल पथ्य की देखभाल से ही शरीर में तेजी से रक्त उत्पन्न होता है एवं रोगी शीघ्र आरोग्य प्राप्त कर लेता है। इसके साथ अवश्य ही काफी खुली हवा, प्रातःकालीन सूर्य की रोशनी और परिपूर्ण अखण्ड विश्राम भी नितान्त आवश्यक है। वस्तुतः इस अवस्था में विश्राम ही प्रधान चिकित्सा है। रक्तस्राव के बाद सदा ही कई एक दिनों के लिये रोगी को बिछावन पर सुलाये रखना चाहिये। इससे रोगी की पाचन शक्ति बढ़ती है और रोगी का हार्ट भी बहुत स्वस्थ होता है। प्रबल रक्तस्राव के बाद रोगी उठ खड़े होने या चलने की चेष्टा करने पर हठात् हार्ट फेल करके मर भी जा सकता है।

इस अवस्था में रोगी का सिर दिन में तीन बार धोकर सारा शरीर गीली तौलिया द्वारा पोंछ देना उचित है। रोगी सबल होने पर स्नान भी कर सकता है। रोगी के हाथ-पाँव जिसमें ठंडे न हो जाँय इसकी ओर सदा ध्यान रखना चाहिये। इसके लिये जरूरत होने पर उसे मोजा पहनाकर रखना उचित है। अथवा कई एक सेकेण्डों के लिये हाथ-पाँव पर गर्म थैली रखकर हाथ-पाँव गर्म कर लिये जा सकते हैं। किन्तु रक्तस्राव-युक्त रोग में रोगी के शरीर में कभी भी अधिक गर्मी प्रयोग करना उचित नहीं। उसको वाष्पस्नान इत्यादि भी नहीं दिया जाय। उत्ताप चिकित्सा से रक्तस्रावयुक्त रोगी का रक्तस्राव बढ़ता ही है। रोगी का कोष्ठ साफ

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

रखने की व्यवस्था करना उचित है। इसके लिये प्रधानतः फल पर निर्भर करना चाहिये और बीच बीच में डूस देना उचित है।

किन्तु जब शरीर की विकारयुक्त अवस्था के फलस्वरूप रक्त में कमी उपस्थित होती है, तब शरीर को विकार-रहित करने के लिये विशेष सावधानी लेना आवश्यक है।

अन्यान्य रोग के समान इस रोग के शुरू में ही कोष्ठ को साफ कर लेना चाहिये और सदा के लिये साफ रखने की जरूरत है। इसलिये रोगी को प्रतिदिन डूस और पेट की लपेट प्रयोग करना उचित है।

प्रतिदिन स्नान के पूर्व उसका शरीर अवश्य ही गर्म कर लेना चाहिये। इसलिये प्रतिदिन उसको मालिश प्रयोग किया जा सकता है। किन्तु रक्तहीनता में अतिमर्दन वर्जनीय है (American Medical Association—Handbook of Physical Medicine and Rehabilitation, p. 163, Philadelphia, 1950)। इसके अतिरिक्त स्नान के पहले तीन से सात मिनट के लिये वाष्पस्नान या आठ-दस मिनटों के लिये फुट बाथ या जब तक आराम अनुभव हो तब तक धूपस्नान (sun bath) प्रयोग करने के बाद शरीर गर्म रहते रहते स्नान कराना उचित है।

किन्तु सबसे अधिक लाभ होता है यदि शरीर को इस प्रकार गर्म करके रोगी आधे घंटे के लिये घर्षण स्नान (cold friction) ले सके। शरीर में नया रक्त उत्पन्न करने में इसके समान दूसरा कुछ है या नहीं इसमें सन्देह है। इससे कई एक दिनों के अन्दर ही समस्त शरीर नये रक्त से लाल हो उठता है। सम्भव होने पर सदा ही रोगी को प्रतिदिन इसका प्रयोग करना चाहिये। यही इस रोग की सर्वप्रधान चिकित्सा है।

रोगी को हिप बाथ से भी यथेष्ट लाभ होता है। किन्तु खूब दुर्बल रोगी को हठात् कभी भी ठंडे पानी में लेकर बैठाना नहीं चाहिये। शुरू

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

शुरू में थोड़ा और समशीतोष्ण पानी में हिप बाथ देकर क्रमशः पानी की मात्रा बढ़ाना और पानी की गर्मी घटा लेना उचित है।

खूब दुर्बल रोगी को प्रारम्भिक अवस्था में बहुत ठंडे पानी में स्नान कराना भी उचित नहीं। शुरू शुरू में गीली तौलिया द्वारा शरीर पोंछ देकर उसको ठंडे पानी का अभ्यास बना लेना आवश्यक है। रोगी को स्नान कराने के बाद सदा ही उसका शरीर रगड़ देना चाहिये।

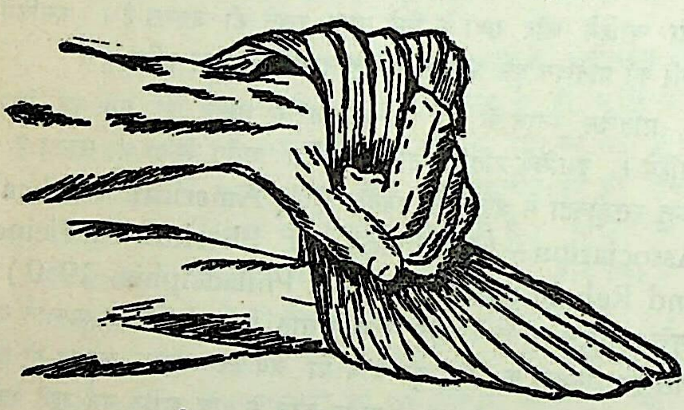

घर्षण स्नान (cold friction)

प्रतिदिन प्रधान भोजन के कुछ ही देर बाद रोगी की पाकस्थली के ऊपर दस-पन्द्रह मिनटों के लिये एक हल्के गर्म पानी की थैली (hot water bag) रखना उचित है। इससे पाकस्थली में प्रचुर पाचक रस निकलता है और लोहा सहज ही पाकस्थली से ग्रहीत होता है।

रोगी को यथासम्भव खुली हवा में रहने की जरूरत है और रात में भी सब खिड़कियाँ खोलकर सोना उचित है। रोगी यदि अत्यन्त दुर्बल हो एवं ठंडी हवा सहन न कर सके तब उसको गले तक सारा शरीर अच्छी तरह ढककर उसे प्रतिदिन कम से कम दो बार पाँच मिनट से एक घण्टा तक कमरे की सभी खिड़कियाँ-दरवाजे खोल देकर खुली हवा

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

में रखना चाहिये। इस प्रकार ठंडी हवा का अभ्यास लगाकर सब समय उसे खुली हवा में रक्खा जा सकता है।

[३]

पथ्य ही इस रोगी की एक प्रधान औषधि है। यदि रोगी के पथ्य में यथेष्ट मात्रा में लोहा दिया जाय, तब वह औषधि का ही काम करता है। कारण लोहा हमारे रक्त के लाल कणों का एक प्रधान उपादान है और खाद्य में यह यथेष्ट परिमाण में रहने से शरीर में नये रक्तकण उत्पन्न होते हैं।

विभिन्न फल विशेषतः पीच, खूबानी और प्रुन (prune) अत्यन्त रक्तवर्धक खाद्य हैं (James S. McLester, M.D.—Nutrition in Health and Disease, p. 677, London, 1954)। साधारणतः शाक-सब्जियों की अपेक्षा ये सब फल बहुत अधिक लाभदायक हैं। किन्तु पालक के साग का रस विशेष रूप से रक्त उत्पन्न करता है। प्रतिदिन कम से कम एक बार उसको कच्चा पालक के साग का रस देना उचित है। चने का साग, चोलाई साग, मेथी का साग और पुदीना के साग में भी यथेष्ट लोहा पाया जाता है। इनका कच्चा रस या सूप उनको देना चाहिये। कोमल नीम के पत्ते, किशमिश, सोयाबीन और तरल गुड़ (molasses) भी इस हिसाब से लाभदायक हैं (W. R. Aykroyd—The Nutritive Value of Indian Foods, pp. 28—57, Government of India Press, Delhi, 1956)। जो शाकाहारी नहीं हैं वे लोहे के लिये जन्तुओं के यकृत (liver) खा सकते हैं। लोहे का सर्वप्रधान आधार ही जन्तुओं का यकृत है। विभिन्न जन्तुओं के यकृत लेने से ही समान लाभ होता है। किंतु रक्तहीनता में मछली का लीवर किसी भी काम का नहीं होता। यकृत उबालकर या कच्ची अवस्था में खाया जाता है। किंतु अत्यधिक उबालना कभी भी उचित नहीं है (Hobart A. Reimann, M.D.—

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

Treatment in General Medicine, Vol. 2, p. 422, Philadelphia, 1948)। यदि कच्चा यकृत पीसकर टमाटर के रस के साथ खिलाया जाय तब रक्त बहुत तेजी से तैयार हो उठता है। इसके अतिरिक्त रोगी को प्रतिदिन यकृत का जूस दिया जा सकता है। यकृत के साथ किडनी देना भी अच्छा है। रक्त निर्माण में वह प्रायः यकृत के समान ही फलप्रद है।

रोगी के लिये यथेष्ट प्रोटीन आवश्यक है। कारण रक्त के लाल कणों के सैकड़े ९५ भाग प्रोटीन द्वारा निर्मित हैं। जभी खाद्य में प्रोटीन का अभाव होता है तभी समझा जा सकता है, रक्तहीनता आ रही है (Clifford J. Barborka, M.D., D Sc., F.A.C.P — Treatment by Diet, p. 603, Philadelphia, 1948)। किंतु प्रोटीन के लिये प्रधानतः दही, छेना और दूध के ऊपर निर्भर करना उचित है। यद्यपि दूध रक्तवर्धक खाद्य नहीं तथापि यह विशुद्ध प्रोटीन का सर्वश्रेष्ठ आधार है। जिन सब खाद्यों से रक्तहीनता प्रतिरोधक वस्तु शरीर में ग्रहीत होता है उनमें छेना, चावल के ऊपर की परत (rice polishings), इष्ट, गेहूँ का अंकुर (wheat germ), मांसपेशी के मांस और अंडे उल्लेखयोग्य है (James S. McLester, M.D.—Nutrition and Diet in Health and Disease, p. 677, London, 1954)।

जो सब रक्तहीनता, लोहे के अभाव से उत्पन्न होती है (iron deficiency anaemia) उसमें ये अत्यन्त फलप्रद हैं।

इसके अतिरिक्त उसके खाद्य में जिसमें विभिन्न विटामिन और खनिज लवण ग्रहीत हो इसकी ओर सदा ध्यान देना उचित है। इसलिये रोगी को यथेष्ट मात्रा में फल और साग-सब्जी ग्रहण करनी चाहिये।

१९२६ साल के पूर्व सांघातिक रक्तहीनता (pernicious anaemia) को असाध्य व्याधि कहकर गिना जाता था। किंतु इस वर्ष जानवरों के लीवर में बी० १२ नाम से एक नये विटामिन का

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh
आविष्कार हुआ है। यह देखा गया है, यह जो केवल रक्त के विकार ही नष्ट करता हो ऐसा नहीं, इसके प्रयोग से समस्त शरीर के भीतर ही आश्चर्यजनक उन्नति होती है (Leslie J. Harris, D.Sc., Ph.D.—Vitamins, pp. 278-9, Cambridge, 1955)।

यह साधारणतः इनजेक्ट कर दिया जाता है एवं जीवन भर इनजेक्ट करने की जरूरत बनी रहती है। कारण यह रोग सदा ही बार बार लौट आता है। किन्तु उसका प्रधान कारण यही है कि शरीर की विकारयुक्त अवस्था दूर करने के लिये कभी भी चेष्टा नहीं की जाती। शरीर की दूषित स्थिति के फलस्वरूप शरीर में जो रोग-लक्षण उत्पन्न होते हैं उन्हें ही दूर करने की केवल चेष्टा की जाती है। किंतु यदि शरीर को विकार-रहित करने के साथ रोगी जिसमें यथेष्ट परिमाण में विटामिन बी० १२ पा सके इसकी व्यवस्था की जाय तब रोगी स्थायी रूप से आरोग्य प्राप्त कर सकता है और कभी भी उसको जीवन भर सुई नहीं लेनी पड़ती।

मधुमेह

[Diabetes Mellitus]

[१]

भात, रोटी आदि जो शर्करा जातीय खाद्य (carbohydrate) हम खाते हैं, जीर्ण होने पर वह शरीर के अन्दर चीनी में बदल जाता है। इस चीनी के शरीर के पेशी समूह (muscles) एवं तन्तुओं (tissues) में दग्ध होने के फलस्वरूप शरीर में गर्मी और शक्ति उत्पन्न होती रहती है। जब किसी शारीरिक विशृङ्खलता के फलस्वरूप पेशी और तन्तुओं की चीनी के शोषण (absorb) की शक्ति नष्ट हो जाती है, तब चीनी रक्त में जमा होने लगती है और अन्त

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

में पेशाब के साथ बाहर निकल आती है। इसी का नाम मधुमेह या डायविटीज है। मूत्र के साथ जो शर्करा निकलती है, यह बात हाल ही में यूरोपनिवासी जान पाये हैं। किन्तु ईसा के जन्म के छः-सात सदियाँ पहले भी भारतीय चिकित्सकों को यह बात मालूम थी (R. N. Chopra, M.D.—A Handbook of Tropical Therapeutics, p. 1043)।

प्रारम्भिक अवस्था में यह रोग प्रायः ही पकड़ में नहीं आता। किंतु शरीर क्रमशः सूखता जाता है। रोगी शरीर में बल नहीं पाता और मूत्र की मात्रा प्रायः ही बढ़ जाती है। रोग कठिन होने पर समय समय १० से २० पौंड तक मूत्र निकलता है। मूत्र का आपेक्षिक गुरुत्व (specific gravity) बढ़ जाता है—यह १,०३० से १,०५० तक होता है। रोगी को सदा ही प्रबल प्यास रहती है और उसके शरीर की गर्मी घट जाती है। शरीर के तन्तुओं की जीवनी शक्ति क्षीण हो जाने के कारण प्रायः ही व्रण एवं कभी कभी दुष्ट व्रण उपस्थित हो रहता है। बहुत क्षेत्र में व्रण या दुष्ट व्रण ही इस रोग के प्रथम लक्षण के रूप में प्रकट होते हैं। जो सब लोगों को ज्वर नहीं रहता उनका वजन यदि घट जाय और भूख बढ़ जाय तब यह बहुत अवस्था में मधुमेह से होता है (John S. Richardson, M.A., M.D., F.R.C.P.—The Practice of Medicine, p. 330, London, 1956)।

जो अत्यधिक मात्रा में मीठे पदार्थ या श्वेतसार जातीय खाद्यों का आहार करते हैं उन्हें ही साधारणतः यह रोग होता है। स्वाभाविक अवस्था में लोग एक साथ में एक पाव से अधिक चीनी हजम नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त चीनी खाने से पेशाब में चीनी पाई जाती है। अर्थात् शरीर के तन्तुओं की चीनी सोखने की क्षमता सीमाबद्ध है। अतिरिक्त शर्करा जातीय खाद्य खाने के फलस्वरूप शरीर के तन्तुओं की चीनी सोखने की क्षमता ही क्षीण हो जाती है। तब खाद्य के साथ

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

ग्रहीत शर्करा मूत्र के साथ निकल आती है। इसलिये जो जरूरत से अधिक खाते हैं फिर भी ग्रहीत खाद्य तन्तुओं में शोषित होने के लायक यथेष्ट परिश्रम नहीं करते, उन्हें ही मधुमेह अधिक होता है।

साधारणत: क्लोमयन्त्र (pancreas) की गड़बड़ी के फलस्वरूप ही तन्तुओं की चीनी सोखने की यह क्षमता नष्ट होती है। कारण क्लोमयन्त्रों से जो पाचक रस (insulin) निकलता है, वही शर्करा दग्ध करके शरीर में गर्मी और शक्ति उत्पन्न करता है। "अत्यधिक शर्करा जातीय पदार्थ खाने से क्लोमयन्त्र को अतिरिक्त परिश्रम करना पड़ता है। उससे वह क्रमशः दुर्बल हो जाता है और उसका स्राव कम हो जाता है। तब हम लोगों के रक्त में शर्करा का आधिक्य होता है और मधुमेह रोग जन्म लेता है। यही रोग का प्रधान कारण है ऐसा वर्तमान समय में समझा जाता है। जो अत्यधिक भोजन-विलासी हैं उन्हें ही साधारणत: यह रोग होता है। इसीलिये संयुक्तराष्ट्र के सैकड़े प्राय: दो लोग इस रोग से भुगते रहते हैं (Michael G. Wohl, M.D., F.A.C.P.—Internal Medicine, p. 515, Philadelphia, 1915)।

बहुत क्षेत्र में स्थूलता इसी रोग के कारण होता है। साधारणत: हल्के लोगों को यह रोग जितना होता है उसके आठ गुना अधिक होता है मोटे लोगों को (Ibid., p. 515)।

मानसिक अशांति, दुश्चिन्ता, दुर्भावना आदि कारणों से भी क्लोमयन्त्र की अथवा तन्तुओं की क्षमता क्षीण हो जाती है और उसके फलस्वरूप यह रोग होता है।

स्नायविक दुर्बलता एवं लीवर की अवस्था के फलस्वरूप भी यह रोग उत्पन्न होता है ऐसी बहुतों की धारणा है।

किंतु जिस कारण से भी मधुमेह हो, यह सत्य है कि शरीर के तन्तु, मांसपेशियाँ एवं प्रधानतः क्लोमयन्त्र दुर्बल नहीं होने से कभी भी मधुमेह नहीं हो सकता। किंतु किसी एक यंत्र के अत्यधिक काम

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

करने से ही वे दुर्बल हो जायेंगे, इसका कोई मतलब नहीं होता। हम लोगों के हार्ट और फेफड़ा आदि यन्त्र जन्म से मृत्यु तक दिन-रात अथक रूप से परिश्रम करते रहते हैं। उसके कारण वे दुर्बल नहीं हो जाते। अन्यान्य रोग जिस तरह शरीर की दूषित स्थिति से उत्पन्न होते हैं, मधुमेह भी उसी तरह उत्पन्न होता है। पहले शरीर में कई तरह के दूषित पदार्थों का संचय होता है, इसके बाद वे जब क्लोमयन्त्र और शरीर के तन्तु आदि पर आक्रमण करके उन्हें दुर्बल कर देते हैं, तभी यह रोग होता है।

बहुत अवस्था में शरीर में संचित ये दूषित पदार्थ आँत (intestines) से आते हैं। पुरानी कोष्ठबद्धता से आँत के भीतर जिस विष का संचार होता है वह जब क्लोमयन्त्र आदि पर आक्रमण करके उन्हें दुर्बल कर देता है, तब बहुत क्षेत्र में यह रोग होता है (J. H. Kellogg, M.D.—The New Dietetics, p. 772)।

अन्यान्य बहुत कारणों से भी रक्तस्रोत दूषित होने से यह रोग उत्पन्न हो सकता है।

अतः शरीर की दूषित अवस्था ही मूल रोग है। मधुमेह उसी का एक लक्षण मात्र है। जब समस्त रोगों का यह मूल कारण शरीर से बाहर कर दिया जाता है तब क्लोमयन्त्र और तन्तु सबल हो उठते हैं एवं रोगी धीरे धीरे स्वस्थ हो जाता है।

[२]

इसलिये चिकित्सा के प्रारम्भ में ही पेट साफ कर लेना चाहिये और दोनों आँतों को इस प्रकार सबल कर लेना आवश्यक है जिसमें वे प्रतिदिन दोनों शाम मल को बाहर कर दे सकें। इसके लिये प्रतिदिन पेट में गर्म-ठंडा लेकर डूस, हिप बाथ, पेट की लपेट, पेट का मर्दन और व्यायाम एवं आसन लेने चाहिये।

इसके साथ शरीर को विकार-रहित करने के लिये सब तरह से चेष्टा

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

करना आवश्यक है। इसलिये रोगी को सप्ताह में कम से कम एक बार एक घंटे के लिये गीली चादर का पैक (wet sheet pack) प्रयोग करना चाहिये। इससे शरीर शीघ्र विकार-रहित होता है। यदि रोगी के शरीर में यथेष्ट मांस हो तब सप्ताह में दो-तीन दिन भी पैक दिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त रोगी को काफी पानी पीना आवश्यक है। इससे शरीर में संचित विष शरीर से घुलकर बाहर आ जाता है। इसके अतिरिक्त मधुमेह के रोगियों के रक्त के भीतर अत्यधिक शर्करा रहती है। जो चीनी शरीर में ग्रहीत नहीं होती, उसे शरीर से बाहर निकाल देना ही आवश्यक है। ऐसा नहीं होने से वे शरीर के विभिन्न यन्त्रों को गुरुतर क्षति पहुँचा सकते हैं। रोगी को यदि तेज प्यास रहे तब प्रत्येक घंटे पर उसे आधा ग्लास करके पानी पीना आवश्यक है। यदि रोगी को अस्वाभाविक प्यास रहे तब अत्यन्त गर्म पानी अंजला भर बार बार पीने से रोगी को लाभ होता है।

इस रोग में तन्तुओं की जीवनी शक्ति (tissue vitality) अत्यन्त कम रहती है। इसके फलस्वरूप देह-संचित शर्करा तन्तुओं में यथेष्ट मात्रा में दग्ध नहीं हो पाता। वस्तुतः इसी दहन क्रिया (oxidation) के अभाव का नाम ही मधुमेह है। जब शरीर में आमिष जातीय पदार्थों (protein wastes) की उत्तम रूप से दहन क्रिया नहीं होती, तब उसे वात रोग (rheumatism) कहा जाता है; जब चर्बी जातीय पदार्थों की अच्छी दहन क्रिया नहीं होती, तब उसे कहा जाता है स्थूलता (obesity) एवं शरीर में जब भली भाँति शर्करा की दहन क्रिया नहीं होती तब उसको कहते हैं मधुमेह। इसलिये प्रारम्भ में ही शरीर को विकार-रहित करके, शरीर की दहन क्रिया बढ़ाना ही इसकी चिकित्सा है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये ठंडे पानी से स्नान अत्यन्त सहायक है। ठंडे पानी से स्नान करने से शरीर में यथेष्ट आक्सिजन सोखा जाता है एवं रक्त में जमा हुआ अतिरिक्त शर्करा बहुत कुछ दग्ध होकर शरीर के काम आती है

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

तथा बचा हुआ अंश विभिन्न दूषित पदार्थों के आकार में शरीर से बाहर निकल आता है (J. H. Kellogg, M.D.—Rational Hydrotherapy, p. 972)। इसके लिये मधुमेह के रोगी को प्रतिदिन हिप बाथ लेना चाहिये। प्रतिदिन थोड़ी देर के लिये ठंडे पानी से स्नान करना भी उसके लिये बहुत आवश्यक है। किन्तु रोग यदि अत्यन्त पुराना हो एवं रोगी के शरीर की गर्मी कम हो जाय, तब उसको यथासम्भव हल्के स्नान का प्रयोग करना चाहिये (F. E. Bilz—The Natural Method of Healing, p. 277)। इस प्रकार की अवस्था में स्नान के बदले रोगी को दो बार स्पंज बाथ देना आवश्यक है। स्नान की मात्रा जिससे सदा ही क्रमशः बढ़ाई जाय इसकी व्यवस्था करनी चाहिये। स्नान के समय रोगी की रीढ़ पर ऊपर से पानी गिराने पर विशेष लाभ होता है। मधुमेह के रोगियों का शरीर साधारणतः अत्यन्त ठंडा रहता है। इसलिये स्नान के पहले मर्दन, व्यायाम या धूपस्नान आदि द्वारा शरीर अवश्य ही गर्म कर लेना उचित है।

स्नान के पहले रोगी का सारा शरीर अवश्य ही हल्के हाथ से मर्दन कर लेना उचित है। मर्दन से तन्तुओं की जीवनी शक्ति और पुष्टि ग्रहण करने की क्षमता विशेष रूप से बढ़ जाती है एवं शरीर गरम हो उठता है। मर्दन के साथ सदा ही सरसों के तेल का व्यवहार करना आवश्यक है। कारण इस रोगी की त्वचा अत्यन्त सूखी रहती है। नियमित तेल मर्दन से त्वचा की यह अवस्था गायब हो जाती है। जाड़े में सदा ही रोगी को धूप में तेल मालिश करनी चाहिये।

नियमित सूर्यताप ग्रहण रोगी के लिये अत्यन्त फलप्रद है। प्रतिदिन स्नान के पहले भीगे सिर से कुछ क्षणों के लिये धूपस्नान (sun bath) लेकर शरीर गर्म रहते रहते स्नान करना आवश्यक है। मर्दन के बाद प्रतिदिन इस प्रकार स्नान ग्रहण किया जा सकता है। यदि आकाश में धूप न रहे तब धूपस्नान के बदले स्नान के पहले ३ से ७

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh
मिनटों के लिये कुर्सी में स्टीम बाथ लेना चाहिये। इस प्रकार से शरीर को गर्म करके यदि प्रतिदिन आधे घण्टे के लिये घर्षण स्नान ग्रहण किया जाय तब थोड़े ही दिनों के भीतर ही रोगी को नवजीवन प्राप्त होता है।

जिस प्रकार बाथ या स्नान ग्रहण करने के पहले शरीर गर्म कर लेना उचित है, उसी प्रकार स्नान के बाद भी सदा ही सूखी मालिश (dry friction) आदि ग्रहण करके शरीर की गर्मी फिर वापस ले आनी चाहिये। मधुमेह के रोगियों के लिये यह विशेष रूप से आवश्यक है। सदा ध्यान रखना चाहिये स्नान के बाद जिसमें एक उद्दीपना आ जाय और रोगी का शरीर ठंडा न हो जाय।

क्रमशः बढ़ानेवाला व्यायाम (graduated exercise) इस रोग में विशेष रूप से आवश्यक है। कारण व्यायाम के द्वारा शरीर के भीतर दहन क्रिया बढ़ जाती है। यह देखा गया है, नियमित रूप से व्यायाम ग्रहण करने पर शर्करा और अन्यान्य खाद्य शरीर में सहज ही ग्रहीत होते हैं एवं इनसुलिन की आवश्यकता कम हो जाती है (Garfield G. Duncan, M.D.—Diseases of Metabolism, p. 875, Philadelphia, 1953)। इसलिये मधुमेह की चिकित्सा में व्यायाम एक प्रधान अंग है। व्यायाम करने में असमर्थ हों ऐसे लोग प्रायः दिखाई नहीं पड़ते। कारण हाथ या पैर खींच लेकर फिर सीधा करने से भी व्यायाम होता है। बहुत दुर्बल रोगी खुले स्थान में भ्रमण कर सकते हैं। किन्तु शक्ति से बाहर कभी भी व्यायाम नहीं करना चाहिये एवं थक जाते ही विश्राम लेना चाहिये। श्वास-प्रश्वास के व्यायाम का धीरे धीरे अभ्यास करने से भी अत्यन्त लाभ होता है। व्यायाम के साथ सदा ही आसन ग्रहण करना चाहिये। जिन सब अंगों के चलाने से मध्य शरीर का व्यायाम होता है उनकी ओर सदा ही ध्यान देना उचित है। इससे क्लोमयंत्र विशेष रूप से सबलता प्राप्त करता है। रोगी के लिये भुजंगासन, शलभासन, पश्चिमोत्तानासन,

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

हलासन आदि अत्यन्त फलप्रद हैं। यथासम्भव दीर्घ समय उसे खुले स्थान में निवास करना आवश्यक है। रोगी को सब प्रकार स्वास्थ्य-विधि मानकर चलना चाहिये। इसलिये उत्कण्ठा, उद्वेग, आवश्यकता से अधिक भोजन, अनियमित समय पर भोजन, बिना चबाये भोजन, अनियमित समय पर सोना, आवश्यकता से अधिक सोना एवं सब प्रकार के असंयम और अनियम का परित्याग करना चाहिये। रोगी के शरीर का ताप जिसमें अत्यधिक रूप से बाहर निकल न पाये, इसके लिये सदा सतर्क रहना आवश्यक है। रोगी के शरीर में कभी भी ठंड लग जाने पर उसको उष्ण पादस्नान से ठंड दूर कर देना चाहिये।

[३]

शरीर के भीतर शर्करा दग्ध करने की जैसी जरूरत है, वैसे ही शर्करा जातीय खाद्य शरीर के भीतर जिसमें अधिक प्रवेश न कर पायें इसकी व्यवस्था भी करनी चाहिये। इसलिये प्रारम्भिक अवधि से ही पथ्य नियमित करना आवश्यक है। किंतु हठात् कभी भी अभ्यस्त पथ्य में परिवर्तन नहीं लाना चाहिये। पथ्य में परिवर्तन धीरे धीरे करना उचित है। किंतु पहले से ही रोगी को चीनी, गुड़ और रसगुल्ला आदि सभी मिठाइयाँ छोड़ देना उचित है। इसके बाद भात, रोटी आदि शर्करा जातीय खाद्य क्रमशः कम करते जाना जरूरी है। जो भात खाने के अभ्यस्त हैं, वे प्रारम्भिक अवस्था में भात के बदले कम करके कुछ हाथ-चक्की के पिसी हुई रोटी खा सकते हैं। कारण भात की अपेक्षा रोटी में श्वेतसार (starch) थोड़ा कम है। इसके अतिरिक्त सागू, बार्ली और आरारोट आदि जितने श्वेतसार प्रधान खाद्य हैं, उनसे परहेज करना चाहिये। कारण मधुमेह के रोगी के शरीर में ये सब चीजें तो किसी काम आती ही नहीं बल्कि शरीर के भीतर जाकर एक विषाक्त पदार्थ में ही बदल जाती हैं।

मधुमेह के रोगी का प्रधान पथ्य ही होना उचित है दह ि

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh
फल और साग-सब्जी। रोगी को दूध के बदले सदा ही दही और मट्ठा खाना उचित है। कारण दूध में चीनी का अंश बहुत अधिक है। दही में दूध के सभी उपादान ही रहते हैं। किंतु शर्करा का अंश बहुत कम रहता है। इसलिये दूध से दही इन रोगियों के लिये अपेक्षाकृत बहुत अच्छा पथ्य है।

रोगी को यथेष्ट फल खाना उचित है। जिन सब फलों में चीनी का अंश कम और अम्ल का अंश अधिक है वे सब फल ही इस रोग में श्रेष्ठ हैं। नीबू, नारंगी, बिजोड़ा नीबू, अनन्नास, काला जामुन, टमाटर और अनार आदि फल ही इस रोग में विशेष सुपथ्य हैं। मधुमेह रोग में फलजात शर्करा ईख के शर्करा की अपेक्षा बहुत आसानी से हजम होती है। इसलिये चिकित्सा आरम्भ करने के कुछ दिन बाद साधारण मामूली मीठा फल वह आसानी से खा सकता है। किंतु खजूर, अंजीर और मुनक्का आदि से प्रारम्भिक अवस्था में परहेज करना चाहिये।

यथेष्ट मात्रा में हरी साग-सब्जियाँ भी उसे प्रतिदिन ग्रहण करना उचित है। इस रोग में तन्तु के भीतर जो अम्ल-विष उत्पन्न होता है हरी साग-सब्जियों के खाने से वह नष्ट हो जाता है (J. H. Kellogg, M.D.—The New Dietetics, p. 780, Washington, 1923)। कारण क्षारजातीय लवण (alkaline salts) का वह प्रधान आधार है।

साग में चोलाई, लेटूस, धनिया-पत्ता, मटर का साग, ब्राह्मी साग, बथुआ, मेथी और सरसो आदि सब साग ही रोगी ले सकता है। यूरोप में बहुत दिनों तक लेटूस साग मधुमेह रोगों की एक श्रेष्ठ औषधि ऐसा गिना गया है। यद्यपि यह सम्मान का आसन लेटूस साग का अब नहीं है, फिर भी यह यथेष्ट मात्रा में लेना उचित है। लेटूस और अन्यान्य साग का ताजा रस सुबह के समय आधा ग्लास से एक ग्लास तक पीने में रोगी को अत्यन्त लाभ होता है। उसे प्रतिदिन यथेष्ट मात्रा में

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

सलाद खाना भी उचित है। धनिया-पत्ता, पुदीना-पत्ता, लेटूस, टमाटर, मूली और खीरा इत्यादि सलाद के रूप में ग्रहण किये जा सकते हैं। विभिन्न साग-सब्जी उबालकर भी खाना उचित है और उनका सूप ग्रहण करना कर्तव्य है। तरकारियों में परवल, तरोई, नेनुआ, लौकी, गोबी, केला का फूल, बैंगन, टमाटर, खीरा और तिलकोर आदि बिना रोकटोक खाये जा सकते हैं।

चिकित्सा के समय इसी प्रकार रोगी को केवल दही, फल और साग-सब्जी खाकर रहना उचित है। इससे ही तीन सप्ताह के अन्दर मूत्र से चीनी अदृश्य हो जाती है। इसके बाद भी कम से कम दो महीने इन सब पथ्य के ऊपर रहना उचित है। इसके बाद एक शाम रोटी या धान का लावा थोड़ा करके आरम्भ किया जा सकता है। इस समय अच्छा पका केला थोड़ा करके आरम्भ करना उचित है। पेशाब से चीनी गायब होने पर उसे थोड़ा-सा आलू भी दिया जाता है। रोगी को भात और रोटी के बदले कुछ कुछ उबाला अरबी और जिमीकन्द भी दिया जा सकता है। भात-रोटी से वे सब खाद्य अपेक्षाकृत श्रेष्ठ हैं। कारण भात, रोटी अम्लधर्मी खाद्य और ये सब क्षारधर्मी हैं। इसलिये जहाँ रोगी भात, रोटी कुछ न कुछ खाता है, वहाँ ये सब खाद्य अनायास चल सकते हैं। स्वस्थ अवस्था में भात, रोटी कम खाकर इन सब खाद्यों के ऊपर जोर देने से कभी भी मधुमेह आ नहीं सकता।

इस रोग में चर्बी जातीय खाद्य थोड़ा अधिक खाना आवश्यक है। रोटी में सदा ही थोड़ा मक्खन लगाकर खाया जा सकता है। विभिन्न उबाली तरकारियों के साथ भी सदा थोड़ा-सा तेल मिला लेना चाहिये। यदि कोष्ठबद्धता न रहे तब घी भी व्यवहार किया जाता है। इस रोग में नारियल खूब सुपथ्य है। नारियल में सैकड़े ४२ भाग चर्बी जातीय पदार्थ रहता है। मूँगफली, अखरोट और काजू बादाम आदि भी अति उत्कृष्ट खाद्य हैं। उनका सैकड़े ५०-६० भाग ही चर्बी (fat) है। किंतु बादाम जातीय खाद्य शुरू में बहुत थोड़ा करके आरम्भ करना

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh
चाहिये। उसके बाद सह्य होने के साथ साथ मात्रा बढ़ाना उचित है। बादाम सदा ही विशेष रूप से चबाकर खाना चाहिये।

इस रोग में आमिष जातीय खाद्य बहुत अधिक खाना उचित नहीं। कारण शरीर में यदि शर्करा जातीय खाद्य का अभाव होता है, तब वे शर्करा जातीय खाद्य में परिणत हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त इस रोग में प्रोटीन से, विशेषत: छेना और दाल से, ज्यादा शर्करा उत्पन्न होता है। इसलिये छेना और दाल नहीं खाना ही उचित है। प्रोटीन खाद्य के लिये सदा दही के ऊपर जोर देना चाहिये। किन्तु सर्वदा ध्यान रखना आवश्यक है खाद्य जिसमें सहज पचनेवाला, अनुत्तेजक और विशेष रूप से क्षारधर्मी हो। सब पुराने रोंगों में ही पूरे खाद्य का कम से कम ५० भाग क्षारधर्मी होना आवश्यक है।

इस रोग में चीनी के बदले बहुत लोग ही सैकरीन (saccharin) व्यवहार करते हैं। किन्तु अधिक मात्रा में यह ग्रहण करने से सिरदर्द, मानसिक थकान एवं पाचनयंत्र में विभिन्न विश्रृङ्खलता उत्पन्न होती है (G. C. David, M.B., B.S., Ph.D., and others—Pharmacology and Pharmaco-therapeutics, p. 655, Madras, 1956)। अत: मधुमेह के रोग में चीनी खाने का लोभ वर्जन करना ही उचित है। किंतु जब मूत्र में चीनी और नहीं पायी जाती तब बहुत थोड़ा करके मधु की आदत डाली जा सकती है। यह अत्यन्त सुपाच्य एवं एक स्वास्थ्यकर खाद्य है। इसलिये कोई कोई कहते हैं, नियमित रूप से यह लेने से मधुमेह दुबारा लौटके नहीं आ सकता (Bodog F. Beck, M.D., and Doree Smedly—Honey and Your Health, New York, 1946)। चीनी के बदले १२ घंटे फुलाये हुए भीगे किशमिश का पानी भी ग्रहण किया जा सकता है। अथवा रोगी छिलके में काला दाग पड़ा है और मक्खन की तरह मुलायम है फिर भी सड़ा नहीं है इस तरह का अच्छा पका केला खा सकता है। आयुर्वेद के

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

पथ्य के भीतर है—सुपक्वं कदलीफलम्। किंतु एक बार कम हो जाने पर फिर जिसमें मूत्र में चीनी दिखाई नहीं दे इसकी ओर सदा ध्यान रखना उचित है।

अन्यान्य रोगों की भाँति इस रोग में उपवास अत्यन्त फलप्रद है। साधारण श्रेणी के मधुमेह में कई एक दिन उपवास करने से प्रायः ही मूत्र में शर्करा नहीं पाई जाती। इसलिये साधारणतः एक से पाँच दिन उपवास रखना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त नीबू के रस के साथ प्रचुर पानी पीकर कुछ समय तक प्रतिमास रोगी को कम से कम दो तीन दिन उपवास करके रहना चाहिये। बीच बीच में तीन-चार दिन उपवास रखकर दीर्घ अवधि के बहुत मधुमेह के रोगियों ने आरोग्य प्राप्त किया है (चुनीलाल बसु, एम० बी०—खाद्य, १६५ पृष्ठ)। किन्तु दुर्बल रहने पर एवं शरीर में चर्बी न रहने पर शुरू शुरू एक शाम से अधिक उपवास रखना उचित नहीं। इस अवस्था में उपवास के बदले बीच बीच में केवल फल खाकर रह सकने से अत्यन्त लाभ होता है। लेकिन शरीर का वजन अधिक रहने पर सदा ही घटाकर स्वाभाविक कर लेना चाहिये। किन्तु वजन बहुत अधिक घटाना भी कभी उचित नहीं।

रोगी को तम्बाकू से सब तरह परहेज करना चाहिये। इस रोग में तम्बाकू व्यवहार करना अन्य जिस किसी रोग की अपेक्षा अधिक हानिकर है (Michael G. Wohl, M.D.—Diatotherapy, p. 629, London, 1946)।

वर्तमान समय में मधुमेह रोग में इनसुलिन (Insulin) अत्यन्त लोकप्रिय हो उठा है। किंतु इससे जो रोग नीरोग होता है ऐसा नहीं। इनसुलिन से मधुमेह नीरोग होता है इस अर्थ में जैसे खाने से भूख नीरोग होती है (Calcutta Medical Review, March, 1940, p. 380)। किन्तु फिर भूख लगती

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

है। इनसुलिन बन्द करते ही इसका असर चला जाता है और रोगी पूर्वावस्था में लौट आता है। इनसुलिन का असर अत्यन्त क्षणस्थायी है। इसलिये किसी किसी समय दिन में दो-तीन बार यह प्रयोग किया जाता है। किन्तु इनसुलिन देने में प्रत्येक रोगी का पृथक रूप से विचार करके इनसुलिन की मात्रा निर्धारित की जाती है (Garfield G. Duncan, M.D.—Diseases of Metabolism, p. 856, Philadelphia, 1953)। वस्तुतः प्रतिबार पेशाब परीक्षा करके अगला डोज तय करने का नियम है (James S. McLester, M.D., and William J. Darby, M.D., Ph.D.—Nutrition and Diet, p. 300, Philadelphia, 1952)। किन्तु कदाचित् कोई भाग्यवान् रोगी इस तरह सेवा प्राप्त करता है। इससे बहुत समय रक्त में चीनी की मात्रा घट जाती है। इसके फलस्वरूप दुर्बलता, सर चकराना, हृदय का धड़कन, मनःसंयोग में अक्षमता, विचारशक्ति का लोप और आत्मसंयम में अक्षमता आदि लक्षण प्रकट होते हैं (Council of the Pharmaceutical Society of Great Britain—British Pharmaceutical Codex, p. 373, London, 1953)। एक डाक्टर ने कहा है, Nature's way is the best—प्रकृति का पथ सर्वोत्तम है। औषधि जितनी कम व्यवहार की जाय उतना अच्छा है।

स्थूलता
[Obesity]

[१]

शरीर में अत्यधिक चर्बी के संचय का नाम स्थूलता है। साधारणतः चर्बी त्वचा के नीचे एवं विभिन्न यंत्रों के चारों ओर संचित होती हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

सब लोगों के शरीर में ही कम-अधिक कुछ चर्बी संचित होती है और वह स्वास्थ्य के लिये भी आवश्यक है। किंतु जब शरीर अत्यधिक चर्बी से भारी हो उठता है तभी वह शरीर के लिये हानिकारक हो जाता है।

इस अवस्था में चलने-फिरने में अत्यन्त असुविधा होती है। रोगी तनिक परिश्रम से ही हाँफ जाता है। शरीर में अत्यधिक चर्बी संचित होने से त्वचा और माँसपेशियों की कार्यक्षमता में ह्रास हो जाता है एवं हार्ट का बोझ बढ़ जाता है। इस अवस्था में स्वास्थ्य कभी भी दीर्घ अवधि तक अच्छा नहीं रहता और प्रायः ही शरीर में दूसरा कोई कठिन रोग उत्पन्न हो जाता है। रक्तहीनता, गठिया, मधुमेह, ब्लड प्रेसर और हृत्‌यंत्र के रोग से प्रायः ही स्थूलकाय लोग अधिक कष्ट पाते हैं।

अमेरिका के एक डाक्टर ने एक सौ स्थूल लोगों की परीक्षा करके देखा है कि उनमें सैकड़े ३३ व्यक्ति हृद्‌रोग एवं रक्तसंचालक यंत्र के रोग से, सैकड़े १५ व्यक्ति उच्च रक्तचाप के रोग से एवं सैकड़े १२ व्यक्ति मूत्रयंत्र के रोग से पीड़ित हैं (Oliver E. Byrd, M.D.—Health Instruction Yearbook, 1951, p 31, California)। इसलिये overweight after 35 and in middle life is a menace to health and longevity —प्रौढ़ावस्था में विशेषतः ३५ वर्ष के बाद अत्यधिक वजन स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन प्राप्ति में बाधक हैं (U.S.A. Department of Agriculture—Food and Life, p. 121, Washington, 1939)।

वस्तुतः life expectancy is greater if with advancing years the person remains thin—यदि उम्र की वृद्धि के साथ मनुष्य कृशकाय रहे तब उसके लिये दीर्घ अवधि तक जीवित रहने की सम्भावना बढ़ जाती है (James S. McLester—Nutrition and Diet in Health and Disease, p. 438, London, 1944)।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

अमेरिका की ४० जीवन बीमा कम्पनियों की सम्मिलित रिपोर्ट यही है कि प्रौढ़ावस्था में जिनका वजन स्वाभाविक की अपेक्षा कई एक पौंड कम रहता है उनके भीतर मृत्यु की संख्या सब की अपेक्षा कम होती है (U.S.A. Department of Agriculture—Food and Life, p. 121, Washington, 1939)।

वस्तुतः ३० अथवा ३५ वर्ष में शरीर का जो वजन रहता है यदि उससे वह और नहीं बढ़े तभी उसे आदर्श वजन कहकर गिनना उचित है (Garfield G. Duncan, M.D.—Diseases of Metabolism, p. 60, Philadelphia, 1953)।

अत्यधिक आहार, अत्यधिक निद्रा एवं बहुत कम परिश्रम ही इस रोग के प्रधान कारण हैं। साधारणतः अधिक आहार के फलस्वरूप ही यह रोग उत्पन्न होता है। शरीर में जितनी ताप और शक्ति की जरूरत है उससे अधिक खाद्य ग्रहण करने से ही वह शरीर में चर्बी में बदल जाता है।

किंतु केवल अत्यधिक आहार से ही यह रोग उत्पन्न होता हो, ऐसा नहीं। बहुत लोग हैं जो आवश्यकता से अधिक आहार करते हैं, किंतु वे किसी तरह भी शरीर का वजन बढ़ाने नहीं पाते। शरीर के अन्यान्य रोग जिस प्रकार शरीर में विभिन्न दूषित पदार्थों के संचय से उत्पन्न होते हैं, ये भी उसी प्रकार उत्पन्न होते हैं। जब शरीर में विभिन्न दूषित पदार्थों का संचय होता है और उसके फलस्वरूप किसी किसी अवस्था में शरीर के भीतर चयापचय की व्यवस्था (metabolism) ही उलट-पलट जाती है, तब ग्रहीत खाद्य शरीर में ताप और शक्ति उत्पन्न नहीं करके शरीर के भीतर चर्बी के रूप में संचित होता है। इसलिये शरीर को साफ करने के साथ साथ शरीर की दहन क्रिया (oxidation) को बढ़ाना ही इसकी मूल-चिकित्सा है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

[२]

इसके लिये प्रारम्भ में ही रोगी के पेट पर गर्म-ठण्डा लेकर थोड़ा गर्म पानी का डूस लेना आवश्यक है। यह कम से कम दो महीने तक करने की जरूरत है। इस रोग में पेट के ऊपर पाँच मिनटों के लिये गर्म सेंक देकर उसके बाद पेट ठण्डा कर लेना उचित है और इस प्रकार एक समय में तीन-चार बार करना चाहिये। इससे बढ़ी हुई तोंद देखते देखते छोटी हो आती है एवं अन्त में भीतर घुस जाती है।

इसके बाद कुछ समय के लिये हल्का वाष्पस्नान या उष्ण पादस्नान या धूपस्नान लेकर शरीर गर्म रहते रहते स्नान कर लेना चाहिये। यदि शरीर गर्म करने के बाद रोगी दिन में एक बार ३० मिनटों के लिये घर्षण स्नान ले सके तब अत्यन्त लाभ होता है।

इस रोग में कभी भी एक साथ दस मिनटों से अधिक समय का वाष्पस्नान लेना उचित नहीं। किंतु रोगी बीच बीच में एक घण्टे के लिये गीली चादर का पैक (wet-sheet pack) ग्रहण करके आश्चर्यजनक फल प्राप्त कर सकता है। शरीर का वजन कम करने के लिये यही सर्वप्रधान चिकित्सा है। यह रोगी की कोई क्षति न करके धीरे धीरे वजन घटा लाता है। यह पैक लेने के पहले शुरू शुरू में मध्य शरीर का पैक (trunk pack) लेना उचित है। प्रारम्भिक अवस्था में यह सप्ताह में दो-तीन दिन एक घण्टे के लिये लेकर पैक में अभ्यस्त होने के बाद गीली चादर का पैक लेना चाहिये। कुछ दिन के बाद यह एक दिन का बीच देकर लिया जा सकता है।

स्थूलता में व्यायाम अत्यन्त हितकर है। कारण इससे शरीर के भीतर दहन क्रिया (oxidation) शीघ्र बढ़ जाती है। रोगी दंड, बैठक आदि सब प्रकार के व्यायाम ही कर सकता है। इस रोग में भ्रमण अत्यन्त फलप्रद है। एकमात्र भ्रमण से ही रोगी की चर्बी यथेष्ट मात्रा में घट जाती है और कार्यक्षमता बढ़ जाती है। किंतु थकान आने के पहले सदा विश्राम ग्रहण करना चाहिये। व्यायाम के साथ साथ रोगी

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

के मालिश ग्रहण कर सकने से रोगी का अत्यन्त उपकार होता है। शरीर में कहीं भी चर्बी की तह पड़ जाने से चौड़ाचौड़ी मर्दन न करके ऊपर से नीचे मर्दन करना चाहिये। योगासन और प्राणायाम भी स्थूलता में अत्यन्त हितकर हैं। स्नान के पहले या बाद रोगी एक बार व्यायाम ग्रहण करके दूसरी बार आसन ग्रहण कर सकता है। उसको अवश्य ही दिन में दो बार स्नान करना चाहिये एवं धीरे धीरे

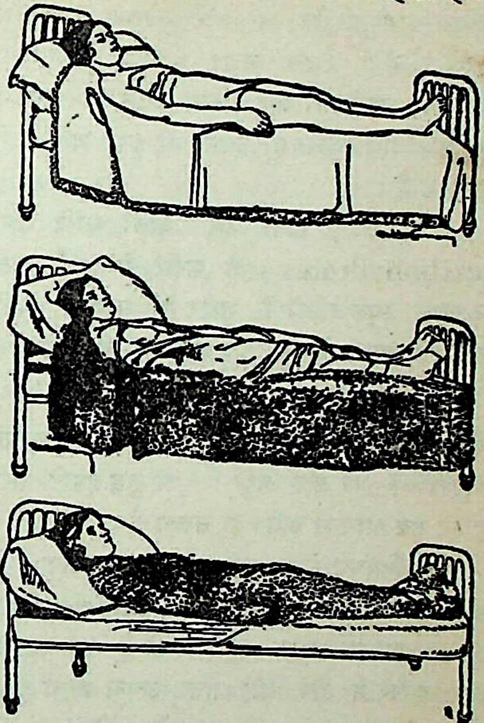

गीली चादर का पैक (wet-sheet pack) सदा ही स्नान का समय बढ़ाना आवश्यक है। कारण स्नान से शरीर का चयापचय (metabolism) बढ़ती है।

[३]

पथ्य का नियंत्रण ही इस रोग की प्रधान चिकित्सा है। जिन खाद्यों से शरीर में चर्बी उत्पन्न होती है, चिकित्सा प्रारम्भ करने के साथ साथ पहले ही वे यथासम्भव कम कर देने उचित है। साधारणतः

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

चर्बी जातीय खाद्य से ही शरीर में अधिक चर्बी उत्पन्न होती है। इसलिये पहले ही तेल, घी और मक्खन आदि खाद्य से परहेज करना आवश्यक है। केवल सलाद आदि में सामान्य तेल व्यवहार करना चाहियें। नारियल और बादाम आदि जिन सब खाद्यों में अधिक चर्बी जातीय पदार्थ रहता है उनका भी कुछ दिनों के लिये परित्याग करना आवश्यक है।

भात, रोटी, चीनी और बार्ली आदि शर्करा जातीय खाद्य (carbohydrates) से शरीर में चर्बी उत्पन्न होती है एवं ये सब खाद्य स्थूल लोगों के शरीर में सहज ही चर्बी में बदल जाते हैं। इसलिये ये सब खाद्य भी यथेष्ट मात्रा में कम कर देना उचित है।

जब तक रोगी का वजन स्वाभाविक न हो, तब तक रोगी का प्रधान पथ्य ही होना उचित है फल, सलाद, उबाली हुई तरकारी, तरकारी का सूप और मट्ठा। जो कुछ हमारे शरीर के लिये जरूरत है वह इन सब खाद्य से ग्रहीत हो सकता है।

पथ्य नियंत्रण में यह ध्यान रखना आवश्यक है जिसमें खाद्य का माप ठीक रखकर उसका तापमूल्य (caloric value) कम किया जाय। हम जो खाद्य ग्रहण करते हैं, वह आक्सिजन की आग में दग्ध होकर शरीर में ताप और शक्ति उत्पन्न करता है। चर्बी, शर्करा और आमिष जातीय खाद्य के ग्रहण से शरीर में अधिक ताप और शक्ति उत्पन्न होती है। किंतु फल और सागसब्जी शरीर के लिये अत्यन्त हितकर होते हुए भी चर्बी आदि की भाँति शरीर में ताप और शक्ति उत्पन्न नहीं करती। आधा सेर मक्खन का तापमूल्य (caloric value) ३,६१५ है, आधा सेर चीनी का १,८२० और आधा सेर गेहूँ का १,६४५। किन्तु आधा सेर खीरा से उत्पन्न होता है केवल ७० कैलोरी, टमाटर से १०५, पालक के साग से १२० और आधा सेर सेव से मात्र ३२० कैलोरी उत्पन्न होता है। पूर्ण युवक के शरीर-यंत्र की परिचालना के लिये साधारणतः ३,०००

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

कैलोरी आवश्यक होता है। यदि चर्बी, शर्करा और आमिष जातीय खाद्य कम करके सागसब्जी और फल आदि द्वारा रोगी की भूख मिटा दी जाय अर्थात् तीन हजार कैलोरी के स्थान में मात्र दो हजार या डेढ़ हजार कैलोरी दिया जाय तब क्या होगा ? इस अवस्था में शरीर का काम चलाने के लिये बाहर से आये इंधन के अभाव में शरीर में संचित चर्बी ही जलकर शरीर में ताप और शक्ति उत्पन्न करेगी। इससे अपने आप रोगी का वजन घट जायगा फिर भी रोगी भूख का कष्ट नहीं पायेगा। इसके अतिरिक्त शरीर को जिस विकारयुक्त अवस्था के कारण यह रोग उत्पन्न होता है फल, सागसब्जी और मट्ठा यथेष्ट मात्रा में लेने से उसकी जड़ ही नष्ट हो जायगी। इसलिये शरीर की सफाई करने के साथ इस प्रकार का पथ्य ग्रहण करने से शरीर एक बार हल्का होने के बाद दुबारा मेदा बढ़ता नहीं। किन्तु रोग नीरोग होने के बाद भी अत्यधिक चर्बी और शर्करा जातीय खाद्य के सम्बन्ध में सदा सतर्क रहना आवश्यक है।

स्थूल रोगियों को साधारणतः अत्यधिक भूख रहती है। इसलिये ही वे अत्यधिक आहार करते हैं। किन्तु खट्टे जातीय फल यथेष्ट मात्रा में खाने से अपने आप भूख कम हो जाती है। बियालिस रोगियों के ऊपर परीक्षा करके देखा गया है, स्थूल व्यक्तियों की जो दुर्जय भूख रहती है, आहार के ३० से ६० मिनट के पहले सुबह-शाम उनको कुछ खट्टे जातीय फल (citrus fruits) खाने को देने से वह बहुत कम हो जाती है (Oliver E. Byrd, M.D.—Health Instruction Yearbook, p. 31, California, 1951)। वजन घटाने के लिये साथ साथ यह भी ध्यान रखना आवश्यक है, शरीर के तन्तुओं की सजीवता जिसमें सुरक्षित रहे। इसलिये उसको प्रतिदिन कुछ प्रोटीन खाद्य देना उचित है। मट्ठा लेने से यह अभाव पूरा होता है। रोगी मक्खन-निकाला दूध भी थोड़ा-सा ले सकता है।

इस रोग में उपवास अत्यन्त फलप्रद है। इससे शीघ्र वजन घट

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

जाता है। किन्तु सप्ताह में दो-तीन पौंड से अधिक वजन घटाना उचित नहीं। इससे हार्ट, किडनी और स्नायविक यंत्र खराब हो जा सकते हैं (Lelu Hurt Petus, M.D.—Diet and Health, p. 85)। अत्यधिक तेजी से वजन घटाने से दुर्बलता, सर चकराना एवं हृतशूल आदि के आक्रमण की सम्भावना रहती है (Michael G. Wohl, M.D., F.A.C.P.—Internal Medicine, p. 555, Philadelphia, 1951)। किन्तु शुरू में दो सप्ताह में प्रति सात दिन में पाँच से सात पौंड वजन घटने से चिन्तित होना उचित नहीं। कारण शरीर में जो पानीवाली चर्बी रहती है, वही शुरू में निकल जाती है।

बहुत समय रोगी के तन्तुओं के भीतर अत्यधिक पानी संचित रहता है। इस अवस्था में लवणशून्य खाद्य (salt-free diet) कुछ दिन व्यवहार करना उचित है।

इस चिकित्सा में शरीर के जो तन्तु स्खलित होते हैं वे जिसमें यथासमय निकल जा सके इसकी ओर सदा ध्यान रखना आवश्यक है। ऐसा न होने से शरीर की गुरुतर क्षति हो सकती है। अत्यधिक तेजी से वजन घटाने से इसीलिये विभिन्न रोग-लक्षण उत्पन्न होते हैं। अतः चिकित्सा के समय और चिकित्सा के बाद भी कुछ समय शरीर का स्खलित कूड़ा-कर्कट शरीर से यथासमय जिसमें बाहर हो जा सके इसकी ओर सदा ध्यान रखना चाहिये। इसलिये कोष्ठ सदा साफ रखना उचित है, नीबू के रस के साथ यथेष्ट पानी पीना कर्तव्य है और हल्का वाष्पस्नान तथा मर्दन आदि ग्रहण करके त्वचा को सदा सक्रिय रखना आवश्यक है।

रोगी के शरीर का वजन बहुत कम हो जाने पर रोगी की त्वचा बहुत समय झूल जाती है। किन्तु कुछ दिनों तक घर्षण-प्रधान मालिश चलाते रहने से फिर शरीर सुडौल हो जाता है और त्वचा तथा मांसपेशियों की सजीवता (tone) लौट आती है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

कृशता

[Emaciation]

स्वाभाविक वजन की अपेक्षा शरीर का वजन जब सैकड़े १५ भाग या उससे भी अधिक घट जाता है तब उसे कृशता की संज्ञा दी जाती है।

यह साधारणतः दो श्रेणियों की देखी जाती है। एक श्रेणी के लोग हैं जो स्वभावतः ही कृश (constitutionally lean) हैं। इन्हें कोई रोग नहीं रहता। इनकी मांसपेशियाँ सबल और इनकी कार्यक्षमता, सहनशक्ति और रोंग-प्रतिरोध क्षमता पूर्णरूपेण बनी रहती है। इस जाति की कृशता स्वास्थ्य के लिये प्रतिकूल न होकर वरन् अनुकूल होती है (Hugh G. Garland, M.D., F.R.C.P., and William Phillips, M.D., F.R.C.P.—Medicine, p. 746, London, 1953)।

किन्तु बहुत-से कृश लोग हैं, जिनकी मांसपेशियाँ सुगठित नहीं है, जो सदा मानसिक या शारीरिक दुर्बलता अनुभव करते हैं, अजीर्ज से कष्ट पाते हैं एवं प्रायः ही ज्वर या अन्य कोई रोग भोगते हैं। इस जाति की कृशता एक व्याधि या व्याधि का फल है। जब शरीर विभिन्न दूषित पदार्थों द्वारा बोझिल हो उठता है, तब शरीर में संचित विष शरीर के जिस किसी यंत्र पर आक्रमण कर सकता है। जब उसके द्वारा शरीर के पाचन, परिशोषण (absorption) और परिग्रहण (assimilation) की क्षमता उलट-पलट हो जाती है तभी यह अवस्था प्रकट होती है। अतः अन्यान्य रोगों की भाँति शरीर को विषरहित करना और साथ-साथ दुर्बल शरीर को उपयुक्त खाद्य देना ही इसकी मूल चिकित्सा है। इसके लिये रोगी को मालिश, पेट में गर्म-ठंडा, डूस, हल्का तापस्नान, घर्षण स्नान या तौलिया स्नान या हिप बाथ और पेट की लपेट इत्यादि प्रयोग करनी चाहिये। इस समय रोगी को केवल फ़ल, फलों का रस, सलाद, कच्ची साग-सब्जियों का सूप, उबाली

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

हुई तरकारी, तरकारी का सूप, दूध, दही और मट्ठा तथा थोड़ा भात या रोटी देना आवश्यक है। इस प्रकार रोगी को कुछ दिन चिकित्सा ग्रहण करना उचित है। इस समय रोगी मोटा हो रहा है या नहीं यह ध्यान देने का विषय नहीं। रोगी का वजन खूब अधिक कम न हो जाना ही यथेष्ट है। इसके बाद रोगी को प्रधानतः दूध पर रखना उचित है।

वजन बढ़ाने के लिये milk is the food on which greatest dependence should be placed—दूध के ऊपर ही सबकी अपेक्षा अधिक निर्भर करना उचित है। भूख न रहने पर भी अनायाश ही यथेष्ट दूध ग्रहण किया जा सकता है (James S. McLester, M.D., and William J. Darby, M.D., Ph.D.—Nutrition and Diet in Health and Disease, p. 341, Philadelphia, 1952)। इस प्रकार पर्याप्त दूध ग्रहण करके वजन बढ़ाने की पद्धति को दुग्ध-कल्प (milk-cure) कहा जाता है। इसके द्वारा सारी पृथ्वी में अनगिनत लोगों ने स्वास्थ्य की उन्नति प्राप्त की है। भारतवर्ष में यह चिकित्सा-पद्धति चली आ रही है स्मरणातीत युग से। यह कृशता और अन्यान्य बहुत व्याधियों की एक अमोघ चिकित्सा है। इसके व्यवहार द्वारा प्रथम सप्ताह में प्रायः पाँच पौंड एवं उसके बाद जितने दिन पर्याप्त वजन प्राप्त न हो उतने दिन आधा पौंड करके दैनिक वजन में वृद्धि होती है (Charles Sanford Porter, M.D.—Milk Diet, p. 91)।

यह ग्रहण करने की विशेष एक पद्धति है। उस पद्धति के अनुसार ग्रहण करने से ही लाभ होता है। दूध सदा ही स्वस्थ गाय से संग्रह करके कच्ची अवस्था में ग्रहण करना चाहिये। इसलिये जो दूध व्यवहृत होगा उसे दूहने के तुरन्त बाद दो बर्तनों में फेंट कर (aerated) ठंडा कर लेना आवश्यक है। ऐसा होने से कई दिनों में भी वह नष्ट नहीं होता। रात का दूध सुबह लिया जा सकता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

किंतु सुबह में पहली बार का दूध थोड़ा गर्म करके लेना उचित है ।
Digitized by Agamnigam Foundation Chandigarh

दुग्ध-कल्प आरम्भ करने के पूर्व कम से कम ३६ घण्टा उपवास रखना चाहिये । इस समय केवल नीवू के साथ पानी पीना उचित है । ऐसा होने से ग्रहीत दूध बहुत सहज ही शरीर में शोषित और ग्रहीत हो जाता है । किन्तु यह सम्भव नहीं होने पर रसयुक्त फल या फलों का रस खाकर रहना चाहिये ।

इसके बाद सुबह छः बजे से दूग्ध-पान आरम्भ करके रात के आठ बजे तक प्रति दो घण्टे पर समान परिमाण में दूध पीना उचित है । दो-तीन दिन पर एक-एक घण्टे के बाद दूध पीना चाहिये और उसके भी दो-तीन दिन बाद प्रति आधे घन्टे पर रात के साढ़े आठ बजे तक दिन में तीन बार दूध पीना आवश्यक है । इस समय प्रति बार ५ से ६ औंस दूध पीना उचित है एवं भूख है कि नहीं इसकी ओर ध्यान नहीं देना चाहिये । इस प्रकार पूरे दिन में पाँच-छः सेर दूध पीना कर्तव्य है । पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को कुछ कम ग्रहण करना उचित है (Bernarr Macfadden—The Miracle of Milk, p. 200)। दूध सदा ही धीरे धीरे थोड़ा थोड़ा करके लेना चाहिये ।

इस समय कम से कम १५ दिन बिछावन में रहकर पूरा विश्राम ग्रहण करना आवश्यक है और शौच तथा स्नान आदि के कारण के अतिरिक्त कभी भी बिछावन छोड़ना उचित नहीं । जिनकी पाकस्थली अत्यन्त दुर्वल है वे बिछावन में लेटकर विश्राम नहीं लेने से प्रायः ही दूध पचा नहीं पाते । चिकित्सा के आरम्भ में इस प्रकार विश्राम नितान्त आवश्यक है । इसके बाद दूध जब अनायास ही पच जाय तब थोड़े समय के लिये टहला जा सकता है ।

दुग्ध-कल्प ग्रहण करने के समय प्रतिदिन गर्म पानी से स्नान करने की भी बहुत अधिक जरूरत है । इसके लिये छः फीट गहरा एक टब व्यवहार करना आवश्यक है । शुरू-शुरू में १५ से २० मिनटों के लिये यह ग्रहण करके प्रतिदिन १५ मिनट करके स्नान का समय बढ़ाना

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

चाहिये और अन्त में एक घंटे के लिये इसे ग्रहण करना उचित है। Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh इस समय सिर पर सदा ठंडा गमछा रहेगा और गले तक पूरा शरीर पानी के भीतर रहेगा। पहले पहल पानी की गर्मी शरीर की गर्मी की अपेक्षा कम रहना आवश्यक है। इसके बाद गर्म पानी डालकर पानी का ताप शरीर के ताप के समान करना उचित है एवं स्नान समाप्त करने के पहले और थोड़ा गर्म पानी देकर पानी को गर्म कर लेना चाहिये। इसके बाद टब से निकलकर सदा ही सरीर पर ठण्डा पानी डालकर स्नान समाप्त करना उचित है।

गर्म पानी में बाथ लेने के फलस्वरूप शरीर के समस्त यन्त्र और तन्तु उद्दीप्त हो उठते हैं और इसके फलस्वरूप ग्रहीत दूध सम्पूर्ण रूप से शरीर के काम आता है। जिनके लिये टब स्नान करने की सुविधा न हो वे उसके बदले धूपस्नान (sun bath) लेकर उष्ण स्नान के बहुत कुछ लाभ प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु जो स्नायविक दुर्वलताग्रस्त हैं उन्हें कभी भी दीर्घ समय के लिये गर्म स्नान लेना उचित नहीं।

दुग्ध-कल्प ग्रहण करने के समय सदा ही ध्यान रखना आवश्यक है कोष्ठ जिसमें साफ रहे। स्वाभाविक रूप से यदि कोष्ठ साफ न हो, तब प्रदिदिन सुबह में एक डूस लिया जा सकता है।

बहुत समय पाकस्थली अत्यधिक दूध ग्रहण कर नहीं पाती एवं किसी किसी समय शुरू शुरू में रोगी का अजीर्ण और जी मिचलाना आदि लक्षण प्रकट होते हैं। इस अवस्था में सदा ही थोड़ा गर्म दूध लेना चाहिये। किन्तु दूध बिना खौलाये एक गर्म पानी के कटोरे में दूध का ग्लास थोड़े समय के लिये रखकर दूध गर्म कर लेना आवश्यक है। सुबह का दूध भी इसी प्रकार गर्म कर लेना उचित है।

यदि दूध पीने से अतिसार दिखाई पड़े तब पूरे दूध के बदले मक्खन-निकाला दूध या मट्ठा ग्रहण किया जा सकता है। सदा ही दूध के बदले मट्ठा व्यवहार किया जाता है। पुराने पेचिश में यह अत्यन्त फलप्रद है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

जी मिचलाने पर रोगी को बीच बीच में नीबू का रस लेना चाहिये। दुग्ध-कल्प आरम्भ करने के बाद जो कुछ साधारण रोग-लक्षण उपस्थित हों, एकमात्र नीबू का रस लेने से ही वे आरोग्य प्राप्त कर लेते हैं। रोगी को इच्छा होने पर खट्टे जाति का फल या फलों का रस भी ले सकता है। किन्तु दुग्ध-कल्प का अर्थ है केवल दूध पीकर रहना और उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं खाना।

इस प्रकार कम से कम एक महीना दुग्ध-कल्प ग्रहण करना आवश्यक है। इसके बाद फिर धीरे धीरे स्वाभाविक पथ्य पर लौट आना चाहिये। इसके लिये कभी भी जल्दीबाजी करना उचित नहीं। पहले दोपहर के समय दो-तीन घण्टे दूध बन्द करके कुछ हल्के फल लिये जा सकते हैं। इसके दो-तीन दिन बाद साँझ में दूध बन्द करके थोड़ा थोड़ा भात या रोटी तथा उबाली तरकारी और तरकारी का सूप लिया जाता है। इस प्रकार से क्रमशः स्वाभाविक खाद्य पर लौट आना चाहिये। किन्तु जब तक पाकस्थली साधारण पथ्य में अभ्यस्त न हो तब तक अत्यन्त हल्का पथ्य ग्रहण करना उचित है।

इस चिकित्सा में कृश व्यक्ति जो केवल आवश्यक शरीर ही प्राप्त कर सकते हों ऐसा ही नहीं, इसके द्वारा विभिन्न रोग भी नीरोग होते हैं।

आयुर्वेद में दूध को रसायन कहकर वर्णन किया गया है (वाभटः, अष्टाङ्गहृदयसंहिता, सूत्रस्थानम्, ६।१८)। रसायन शब्द का अर्थ है जो व्याधि और बुढ़ापा नष्ट करे। दूध को विषघ्न भी कहा जाता है। इसके अतिरिक्त जो कुछ विटामिन और खनिज लवण मानव शरीर के लिये जरूरी हैं वे सब कुछ ही दूध के भीतर रहता है। इन सब कारणों से दूध प्रकृति की एक श्रेष्ठ औषधि है। डा० पोर्टर (Charles Sanford Porter, M.D.) ने कहा है, केवल चार सप्ताह के लिये दुग्ध-कल्प ग्रहण करने से स्नायविक दुर्बलता (nervous prostration), कर्णनाद, कोष्ठबद्धता, बवासीर, अनिद्रा, पाकस्थली

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh
का घाव, पुराना पेचिश (colitis), स्नायुशूल, पाकस्थली का अम्लत्व, सन्धिवात (arthritis), मूत्राशय में सूजन, पाकस्थली की सूजन (gastritis), नपुंसकता (impotence), कटिशूल, साइटिका, प्रोस्ट्रेट ग्लैंड की वृद्धि, लीवर की गड़बड़ी एवं मूत्रयंत्र के विभिन्न रोग नीरोग हो सकते हैं (Milk-cure, p. 70) ।

किंतु दूध ग्रहण करने के पहले सदा ही शरीर को विकार-रहित कर लेना उचित है । अन्यथा कभी स्थायी लाभ नहीं होता ।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

पंचम अध्याय

रक्त-संचालक यंत्र के रोग

हृद्रोग
[Heart Disease]

[१]

हमारा हार्ट मांसपेशियों द्वारा प्रस्तुत एक खोखला यंत्र है। शरीर के दूषित रक्त को लेकर फेफड़ों में भेजना एवं वही शोधित रक्त फिर शरीर में सर्वत्र प्रेषित करना ही हार्ट का काम है। इस यंत्र के रोग को ही हृद्रोग कहा जाता है। इस रोग में कभी कभी हृत्कम्प (palpitation of heart) उपस्थित होता है, किसी किसी समय हार्ट में दर्द होता है, कभी हार्ट बड़ा हो जाता है, किसी समय हार्ट रक्त पम्प करने में अक्षम हो पड़ता है और किसी किसी समय हार्ट के एक या एक से अधिक कपाट (valve) अकर्मण्य हो जाते हैं। इनमें से प्रत्येक को भिन्न भिन्न रोग कहकर गिना जाता है।

विभिन्न कारणों से हृद्रोग उपस्थित होता है। जो एकदम परिश्रम नहीं करते या शक्ति के अतिरिक्त परिश्रम करते हैं, श्रम करके विश्राम नहीं करते फिर श्रम में प्रवृत्त होते हैं, भोजन के बाद जो विश्राम नहीं करते, जो सदा ही उत्तेजना के भीतर रहते हैं एवं अत्यधिक भोजन करते हैं, उनका हार्ट ही साधारणतः खराब हो जाता है।

किंतु ये सब ही उपलक्ष या उत्तेजक कारण मात्र है। जब शरीर के भीतर अत्यधिक दूषित पदार्थों का संचय होता है एवं उनके द्वारा हार्ट आक्रांत हो जाता है, तभी इन सब कारणों से हृद्रोग प्रकट होता

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

है। हमारे शरीर के अन्यान्य यंत्रों की भाँति हार्ट की मांसपेशियाँ भी शरीर के साधारण रक्तस्रोत से ही पुष्टि ग्रहण करती हैं। जब किसी कारण से यही साधारण रक्तस्रोत ही दूषित हो जाता है, तब रक्त का विष जिस किसी दुर्बल अंग पर आक्रमण करके उसमें रोग उत्पन्न कर सकता है। इसलिये वात-ज्वर (rheumatic fever), सिफलिस, न्यूमोनिया, क्षय, प्लूरेसी, गठिया (gout) और वेरीबेरी आदि रोग बहुत बार हार्ट के विभिन्न रोग उत्पन्न करते हैं। इन सब रोगों में रक्तस्रोत के भीतर जिस विष का संचार होता है, वह जब हार्ट पर आक्रमण करता है, तभी हार्ट का रोग हो जाता है। इसी कारण से अत्यधिक मद्यपान या धूम्रपान से भी इस रोग का आक्रमण होता है। किंतु बहुत क्षेत्रों में साधारण रोग को दबा देना ही हृद्रोग का प्रधान कारण है। जब शरीर को विकार-रहित न कर केवल जीवाणु हत्या करके रोग आरोग्य किया जाता है, तब देह-सञ्चित विष बहुधा हार्ट पर आक्रमण करता है। इसलिये जीवाणुनाशक औषधियों का जितना अधिक प्रचार हो रहा है, हृद्रोग उतना ही बढ़ता जा रहा है और अब ऐसी स्थिति आ गई है कि इस रोग को public enemy number one—जनसाधारण का एक नंबर शत्रु कहा जाता है।

इस रोग में हार्ट को सबल कर लेने के लिये विभिन्न उत्तेजक औषधियों का व्यवहार होता रहता है। ये सब औषधियाँ क्षण भर के लिये हार्ट को सबल बना देती हैं। हम लोग उनको शक्ति कहकर भ्रम में रहते हैं। किंतु इस उत्तेजना की प्रतिक्रियास्वरूप शीघ्र ही थकान उतर आती है। तब हार्ट पहले की अपेक्षा भी दुर्बल हो पड़ता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न विषाक्त औषधियाँ इस रोग में व्यवहृत होती हैं। ये सब औषधियाँ केवल हार्ट के ऊपर ही प्रभाव विस्तार नहीं करतीं, वे दिन पर दिन क्रमशः रक्त को ही अधिक विषाक्त कर देती हैं। इसलिये औषधि द्वारा जिस रोग को दूर करने की चेष्टा होती है, औषधि बहुत बार वही बढ़ा देती हैं (B. L. Alsaker, M.D.—

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

Curing Diseases of Heart and Arteries, p. 83)। अतः इस रोग की जितनी औषधि है नदी के पानी में फेंक देकर हार्ट को सबल और स्वस्थ करने के साथ साथ शरीर को विकार-रहित करने की व्यवस्था करनी चाहिये। सब प्रकार के हृद्रोगों की यही चिकित्सा है।

[२]

हृद्रोग में अवरुद्ध आँत को सदा ही एक विपत्ति जैसा गिनना चाहिये (Frederic Tice, M.D.—Practice of Medicine, Vol. II, p. 178)। इसके लिये पहले ही पेट की लपेट और डूस आदि द्वारा कोष्ठ साफ और पेट को स्वस्थ कर लेना आवश्यक है। इस रोग में पेट की लपेट प्रतिदिन तीन घंटे के लिये प्रयोग करके प्रत्येक घंटे पर बदल देनी चाहिये। इससे कोष्ठ ही केवल साफ होता है यही नहीं, पेट ही अच्छा हो उठता है एवं पेट अच्छा होने से अपने आप ही हार्ट अच्छा होता है। हृद्रोग में सदा ही पेट की लपेट के ऊपर प्रधान भरोसा रखना उचित है। किन्तु वह आरामप्रद होना चाहिये और उसके भीतर एक हल्के ताप का संचार होना जरूरी है।

इस रोग में सुदीर्घ समय के लिये कभी उत्ताप चिकित्सा नहीं की जाती। उसके बदले उसको एक घंटे के लिये पाँव की लपेट प्रयोग करके उसका सारा शरीर गीले गमछे से पोंछ देना उचित है। रोगी सबल रहने पर स्नान भी कर ले सकता है। पाँव ठंडा रहने पर सदा ही गुनगुना पानी में पाँव डुबाये रखकर स्नान करना कर्तव्य है।

इसके अतिरिक्त प्रतिदिन नींद खुलने के बाद और सोने के पहले सिर धोकर या पोंछकर सारा शरीर गीले गमछे द्वारा पोंछ लेना उचित है। स्नान अथवा स्पंज बाथ के बाद सारा शरीर रगड़कर गर्म कर देना कर्तव्य है।

रोग की प्रबल अवस्था में उसको प्रतिदिन एक घंटे के लिये पाँव

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

की लपेट (foot pack) देकर आधे घंटे के लिये घर्षण स्नान का प्रयोग करना उचित है। ऐसा होने पर देखते देखते हार्ट स्वस्थ हो जाता है। ठंडे पानी के स्पर्श से हार्ट की कार्यक्षमता बढ़ती है एवं किडनी और लीवर आदि विष निकालनेवाले यंत्र अपना काम भलीभाँति कर सकते हैं, अतः शरीर द्रुत विकार-रहित होता है। इसके अतिरिक्त ठंडे पानी के प्रयोग के बाद शरीर की छोटी छोटी रक्तवाहिनी नलियों की कार्यक्षमता उन्नति प्राप्त करती है। इससे शरीर के रक्त-संचालन में वृद्धि होती है, अतः हार्ट का परिश्रम भी कम हो जाता है। इन सभी कारणों से क्रमशः बढ़ाकर ठंडे पानी के प्रयोग से रोगी का हार्ट सबल और स्वस्थ हो जाता है एवं नाड़ी-स्पन्दन की अवस्था सभी तरह से उन्नति प्राप्त करती है। इसीलिये डा० केलाग ने कहा है, अलकोहल, डिजिटेलिस, स्टिकनिया और दूसरी कोई औषधि जो कर नहीं सकती, ठंडा पानी हार्ट के लिये वही करता है। किंतु सदा ही अत्यन्त धीरे धीरे रोगी को ठंडे पानी का अभ्यास कराना उचित है एवं कभी भी शरीर एकदम ठंडा नहीं कर देना चाहिये।

बीच बीच में ठंडे पानी में भिगोई तौलिया के द्वारा रोगी के मुँह का ऊपरी हिस्सा और छाती पोंछ देना कर्तव्य है। इससे हार्ट विशेष रूप से उद्दीपित (stimulated) होता है।

किंतु रोग की प्रबल अवस्था में हार्ट को सबल करने के लिये विशेष रूप से व्यवस्था करनी चाहिये। यदि हार्ट की धड़कन अधिक रहे तब ऐसी अवस्था में प्रतिदिन पाँच मिनट से क्रमशः बढ़ाकर पन्द्रह मिनटों तक हार्ट के ऊपर ठंडी पट्टी (cold compress) दिन में एक से दो बार प्रयोग करना कर्तव्य है। यह प्रयोग करने के समय पाँवों के नीचे हलका गर्म-युक्त एक गर्म पानी की थैली रखनी चाहिये। पट्टी हटा लेने के बाद यह स्थान सूखे फ्लानेल द्वारा हल्के हाथ से रगड़कर लाल और गर्म कर देना उचित है। इस पट्टी के प्रयोग से हार्ट इस तरह सबलता प्राप्त करता है कि, आसन्न हार्ट फेलियोर भी रुक जाता

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

है। इस व्यवस्था से हार्ट की धड़कन क्रमशः कम होकर स्वाभाविक हो आती है।

इस रोग में समय समय पर जो हार्ट की वृद्धि (hypertrophy) होती है वह भी इस पट्टी से आरोग्य प्राप्त कर लेती है।

किंतु जिनके हार्ट की धड़कन स्वाभाविक की अपेक्षा कम रहती है उनकी ऊपरी रीढ़ में प्रतिदिन ६ से १२ मिनटों के लिये गर्म-ठंडा प्रयोग करना उचित है। गर्म और ठंडा दोनों ही प्रति बार आधा मिनट से एक मिनट के लिये प्रयोग करना आवश्यक है। इसके द्वारा इच्छा-नुकूल हार्ट का बीट बढ़ाकर स्पन्दन स्वाभाविक कर लिया जा सकता है एवं यह फल सदा ही स्थायी होता है। रोगी को तौलिया स्नान, घर्षण स्नान या साधारण स्नान कराने के पहले यह करना कर्तव्य है एवं रीढ़ में गर्म-ठंडा देने के पहले सिर सदा धुला देना उचित है।

इस प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा के द्वारा पृथ्वी की जिस किसी औषधि की अपेक्षा द्रुत और स्थायी रूप से हार्ट को स्वस्थ कर लिया जा सकता है।

छाती की सहज लपेट
(chest pack)

रोगी को जिसमें कभी भी सर्दी न हो इसकी ओर सदा ही ध्यान देना आवश्यक है। बहुत बार रोगी के हार्ट की तकलीफ सर्दी ही लेकर आरम्भ होती है। इसलिये किसी प्रकार ठंडा लगकर सर्दी होते ही रोगी को एक घंटे के लिये छाती की एक लपेट देना उचित है।

रोगी को यदि अत्यधिक खखार उठती हो और खाँसी रहे, तब पाँव के पैक के साथ दिन में दो बार एक घंटे के लिये उसको

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

छाती की लपेट (chest pack) देना कर्तव्य है। यह पैक देने के समय पैक के नीचे हार्ट के ऊपर एक पतला गीला कपड़ा रख देना आवश्यक है। रोगी की हार्ट की अवस्था यदि अत्यन्त खराब हो, तब छाती की लपेट केवल छाती घुमाकर प्रयोग की जा सकती है। यह पेट की लपेट के अनुरूप है, केवल पेट के बदले छाती में दी जाती है। यह जितनी आसानी से प्रयोग की जाती है, उतनी ही आसानी से खोल दी जाती है। इसलिये इसको छाती की सहज लपेट कहा जाता है।

इस रोग की प्रबल अवस्था में प्रायः ही जलशोथ (dropsy) के लक्षण प्रकट होते हैं। इस अवस्था में रोगी का पेशाब जिसमें साफ हो इसकी ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिये। जलशोथ नहीं घटने तक रोगी को बिछावन में रहकर परिपूर्ण विश्राम ग्रहण करना आवश्यक है।

इस रोग में कभी कभी श्वासकष्ट उपस्थित होता है। इसको हार्ट का दमा (cardiac asthma) कहते हैं। इस अवस्था में उसको छः मिनटों के लिये उष्ण पादस्नान देकर एक घंटे के लिये पाँवों की लपेट प्रयोग करना चाहिये। इस समय हार्ट के ऊपर पानी की पट्टी देना आवश्यक है। यह ५ से १५ मिनटों के लिये दी जा सकती है। पानी की पट्टी हटा लेते ही सूखे फ्लानेल द्वारा यह स्थान रगड़कर लाल और गर्म कर देना उचित है। इस अवस्था में रोगी का सिर और गर्दन सदा ऊँचे पर रखकर रोगी को लिटाना चाहिये।

रोगी के हार्ट के कपाट नष्ट हो जाने पर (in valvular disease of the heart) कोई कोई चिकित्सक बताते हैं कि, यह रोग पुनः अच्छा नहीं होगा। किन्तु रोगी के हार्ट के दरवाजे नष्ट हो जाने पर सदा के लिये वे खराब रहते हैं ऐसा नहीं। जब रोगी का शरीर खराब होता है, तभी साथ साथ हार्ट के कपाट भी खराब हो जाते हैं। जब दीर्घ दिन रोगी को स्वस्थ रक्खा जाता है तब अपने आप कपाट

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

फिर ठीक हो जाते हैं। संक्षेप में, रोगी यह विधि-निषेध अनुसरण करके ही स्वस्थ शरीर से दीर्घ जीवन प्राप्त कर सकता है।

रोगी के लिये सब प्रकार की उत्तेजना, दुश्चिन्ता, जल्दीबाजी, दौड़ना एवं हठात् परिश्रम त्याग करना कर्तव्य है। A single rash act may precipitate a fatality—उतावले होकर कोई काम करने से मृत्यु भी आ सकती है (Frederick Tice, M.D.—Practice of Medicine, Vol. VI, p. 120)। रात्रि जागरण भी सब तरह से परित्याग करना कर्तव्य है एवं सभी स्वास्थ्य-विधियों को मानकर चलना आवश्यक है। इस रोग में इन्द्रिय-संयम विशेष रूप से आवश्यक है। स्त्री-रोगियों के लिये गर्भावस्था अत्यन्त विपत्ति का काल है, ऐसा समझना चाहिये।

हार्ट की ताकत कम हो जाने पर बाहर के काम भी यथेष्ट कम कर देना आवश्यक है। नियमित काम के अतिरिक्त कोई काम ही और तब ग्रहण करना उचित नहीं। रोगी के लिये पर्याप्त विश्राम लेना भी नितान्त कर्तव्य है। कोई परिश्रम का काम करते ही कुछ क्षणों के लिये उसको विश्राम ग्रहण करना उचित है। भोजन के बाद भी सदा ही रोगी को प्रायः एक घंटा विश्राम ग्रहण करना आवश्यक है। सामान्य कुछ आहार करने पर भी कुछ क्षण विश्राम नहीं करके उसका काम में लग जाना उचित नहीं। आहार के बाद आधे घंटे के बीच परिश्रम का काम करने से रोगी को खाँसी, दर्द, पेट फूलना एवं श्वासकष्ट आदि रोग-लक्षण प्रकट हो सकते हैं (Ibid., p. 164)। प्रतिदिन रात में भी खूब शीघ्र बिछावन पर जाना कर्तव्य है एवं कम से कम नौ घन्टे सोना आवश्यक है। His sleep is more essential than food—उसके लिये नींद आहार ग्रहण की अपेक्षा भी अधिक जरूरी है। इस प्रकार विश्राम ही विपत्ति के दिनों के लिये स्वास्थ्य के हिसाब से एकमात्र संचय है। इसके अतिरिक्त सप्ताह में एक दिन कोई काम न करके चुप रहकर बैठे या लेटे रहना उचित है। रोग की प्रबल अवस्था में बिछावन में रहकर

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

पूर्ण विश्राम ग्रहण करना चाहिये। यदि रोगी की हार्ट-फेलियोर जैसी अवस्था हो, तब अविलम्ब उसको बिछावन में रहकर पूर्ण विश्राम ग्रहण करना उचित है। इस अवस्था में विश्राम के समान और कुछ भी नहीं है एवं बहुत समय केवल विश्राम के द्वारा ही रोगी आरोग्य प्राप्त कर लेता है (Sir James Mackenzie, M.D., F.R.C.P.—Diseases of the Heart, p. 359)। विश्राम की उपकारिता सौगुना बढ़ाई जा सकती है यदि रोगी बीच-बीच में शवासन ग्रहण करे। शवासन ग्रहण करते ही हार्ट की उत्तेजना पल भर में गायब होती है।

किंतु स्वस्थ अवस्था में हल्का व्यायाम ही रोगी के लिये एक प्रधान चिकित्सा है। पहले पहल मात्र आधे मिनट के लिये हल्का व्यायाम करके क्रमशः व्यायाम का समय और तीव्रता बढ़ाबी होती है। सदा ही शक्ति के अनुसार व्यायाम ग्रहण करना आवश्यक है एवं इस प्रकार व्यायाम करने की जरूरत है कि जिससे व्यायाम का बोझ अनुभव न हो। इस प्रकार व्यायाम से हार्ट क्रमशः सबल होता है एवं उसका नये सिरे से गठन होता है (Sir Thomas Lewis, M.D., D.Sc., F.R.C.P.—Diseases of the Heart, p. 56)। अन्त में हार्ट की अवस्था इस प्रकार उन्नत होती है कि कठिन परिश्रम करने से या कष्टसाध्य व्यायाम करने से भी हृदय की धड़कन नहीं होती या श्वासकष्ट उपस्थित नहीं होता एवं असमय में हार्ट फेल करने का कोई भय ही नहीं रहता। डा० मेकेन्जी ने भी कहा है, हार्ट के ऊपर प्रभाव विस्तार करने में व्यायाम से बढ़कर और दूसरा कोई साधन नहीं है (there is no agent so potent as exercise)। किंतु हृद्रोग में व्यायाम के सम्बन्ध में मूलनीति यही है, रोग की प्रबल अवस्था या रोग की वृद्धि के समय विश्राम ही चिकित्सा है, इसके अतिरिक्त अन्य सब अवस्था में ही व्यायाम लाभदायक है (Diseases of the Heart, p. 563)। जीवन में

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

अवकाश प्राप्त करने के बाद काम-काज छोड़कर कभी भी रोगी को चुप करके घर के भीतर बैठे रहना उचित नहीं। इससे बहुत बड़ी हानि हो सकती है। मन का बल भी सदा अक्षुण्ण रखना चाहिये। एक बार अमेरिकन सैनिकों की स्वास्थ्य-परीक्षा के समय देखा गया, १०४ सैनिकों को हृद्रोग (rheumatic heart) है। ये सब सैनिक प्रतिदिन नियमित रूप से कवायद करते जाते थे और श्वासकष्ट आदि कोई रोग-लक्षण इन्हें नहीं था। किंतु जभी उनको सावधान रहने के लिये कहा गया, उसके बाद छः महीने के भीतर उनमें से सैकड़े अस्सी व्यक्तियों को श्वासकष्ट उपस्थित हुआ (Dr. Craddock, M.D., Ch.D. —An Introduction to General Practice, p. 158, London, 1953)।

बीच बीच में वायु-परिवर्तन इस रोग में हितकर है। किंतु २,५०० फीट के ऊपर का स्थान रोगी के लिये विपत्तिजनक है। अत्यधिक गर्म और अत्यधिक ठंडा जलवायु से रोगी को बचना चाहिये।

[३]

हम लोगों का हार्ट और पाकस्थली जिस प्रकार परस्पर सम्बन्धित हैं, शरीर के भीतर इस प्रकार और दो यंत्र नहीं हैं। इसलिये पाकस्थली का काम घटाकर हार्ट की ही परोक्ष रूप से सहायता कर सकते हैं। अतः हार्ट की कार्यक्षमता जब कम हो जाती है, तब पथ्य खूब सहज-पाच्य होना आवश्यक है एवं रोगी को एक बार में बहुत-सा नहीं खिलाकर काफी समय पर लगे लगे थोड़ा थोड़ा करके बार बार खिलाना उचित है।

विशेषतः पाकस्थली और हार्ट के भीतर व्यवधान केवल एक मांसपेशी (diaphragm) का है। यदि ऐसा खाद्य खाया जाय जिससे पाकस्थली फूल जाय, तब यह फूली हुई पाकस्थली हार्ट के ऊपर दबाव डालती है। इसलिये हृद्रोगी का पथ्य अजीर्ण रोगी के पथ्य के

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

अनुरूप होना आवश्यक है (V. H. Mottram, M.A., and George Graham, M.A., M D., F R.C.P.—Hutchinson's Food and Principles of Dietetics, p. 576, London, 1956)।

इसके अतिरिक्त सदा ही खूब कम करके रोगी को खाद्य देना उचित है। इससे हार्ट का श्रम कम हो जाता है और रोगी अपेक्षाकृत बहुत अधिक काम कर सकता है (Charles K. Friedberg, M.D.—Diseases of the Heart, p. 169, Philadelphia, 1951)।

इस प्रकार अल्प खाद्य (subcaloric diet) रोगी के हार्ट की शक्ति बढ़ाता है एवं हार्ट बड़ा हो जाने पर उसको स्वाभाविक अवस्था में ले आता है (James S. McLester, M D.—Nutrition and Diet in Health and Disease, p. 661, London, 1944)।

इस रोग में स्थूलता को एक विपत्ति कहकर गिनना उचित है एवं रोगी का वजन धीरे धीरे कम कर लाना आवश्यक है। इसलिये उसके खाद्य का तापमूल्य यथासम्भव कम कर देना चाहिये। रोगी का शरीर जितना पतला होता है हार्ट का श्रम भी उतना घट जाता है।

इस रोग में रोगी को अधिक खाद्य न देकर, खाद्य जिसमें विभिन्न खाद्यमूल्यों से समृद्ध हो, इसकी व्यवस्था करनी चाहिये। हृद्‌यंत्र का स्वास्थ्य बनाने के लिये कैलशियम विशेष रूप से आवश्यक है। परीक्षा के तौर पर यह देखा गया है, रोगी को कैलशियम-प्रधान खाद्य कम देने से हार्ट की धड़कन अत्यधिक बढ़ जाती है एवं हृत्‌पिंड दुर्बल हो पड़ता है। इसलिये रोगी को यथेष्ट मात्रा में दूध देना कर्तव्य है। किंतु दूध यदि सहन न हो, विशेषतः वह वायु उत्पन्न करे, तब दूध के बदले दही और मट्ठा देना उचित है। चोलाई साग, अगस्त्य का फूल, विभिन्न हरे साग और तरल गुड़ भी इसीलिये ग्रहण किये जा सकते हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

विटामिन बी १ (थियामिन) भी रोगी के लिये नितान्त आवश्यक है। इस विटामिन का प्रधान आधार है इष्ट (brewer's yeast), गेहूँ का अंकुर (wheat germ), चावल के ऊपर का अंश (rice polishings), दाल का सूप, मटर की फली, चोकर समेत गेहूँ और समूचा जौ। किंतु ये सब खाद्य अत्यन्त सहजपाच्य बनाकर खाना चाहिये। धान का लावा भी इस विटामिन का एक प्रधान आधार है एवं हृद्रोगी के लिये अत्यन्त अच्छा पथ्य है। यह सदा ही पानी में डुबाकर पानी के भीतर सामान्य हिला-डुलाकर निकालके खाना उचित है।

रोगी को यथेष्ट मात्रा में ई-विटामिन भी ग्रहण करना नितान्त कर्तव्य है। हार्ट को स्वस्थ रखने के लिये यह विशेष रूप से जरूरी है। इसका प्रधान आधार ही है गेहूँ का अंकुर और गेहूँ के बीज का तेल (wheat germ oil)। इसके अतिरिक्त लेटूस साग, पालक साग, मटर की फली, अंकुर आया हुआ मूँग, तरल गुड़ और हाथ-चक्की का पिसा आटा तथा हाथ-छँटा चावल में यह पाया जाता है।

अन्यान्य विभिन्न विटामिन और खनिज लवण की भी उसको जरूरत है। इसके लिये उसको यथेष्ट मात्रा में फल, फलों का रस, तरकारी का सूप और उबाली हुई तरकारी लेना उचित है।

फल के भीतर रोगी नारंगी और विभिन्न खट्टे जाति के फल, जामुन, बारह घंटे भिगोये किशमिश का पानी ले सकता है। बिजोड़ा नीबू, टमाटर और अनन्नास उसके लिये उत्तम पथ्य हैं। किंतु सदा ही उनको कपड़े से छाना हुआ रस लेना उचित है।

रोगी यदि तरकारी खाकर हजम न कर सके, तब उसको तरकारी का जूस देना चाहिये। रोगी को प्रतिदिन थोड़ा थोड़ा मधु खिलाना आवश्यक है। मधु अत्यन्त पुष्टिकर है एवं हजम करने में पाकस्थली को एकदम परिश्रम नहीं करना पड़ता। यह जीभ के ऊपर रहते रहते रक्त के साथ मिल जाता है एवं शरीर के काम आता है। पहले कई एक बूँद

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

करके आदत डालकर इसके बाद सह्य होने पर दैनिक दो औंस तक मधु ठंडे पानी अथवा दूध के साथ पिया जा सकता है।

संक्षेप में, रोगी का खाद्य इस प्रकार का होना उचित है जो सहजपाच्य, अनुत्तेजक, विभिन्न खाद्यमूल्यों से समृद्ध और विशेष रूप से क्षारयुक्त हो। हमारे रक्त के भीतर जो सब विष परिभ्रमण करता है, वह समस्त ही एक अम्ल जातीय पदार्थ है। क्षारयुक्त खाद्य रक्त का अम्ल-विष नष्ट करता है एवं शरीर का क्षार-संचय (alkaline asn reserve) गढ़ देता है।

किंतु जो सब चीजें अत्यन्त देर से पचनेवाली हैं, जिनसे पेट खराब होता है और जिनसे पेट फूल जाता है एवं जो सब पदार्थ अत्यन्त अम्लयुक्त या उत्तेजक हैं उनसे विशेष रूप से परहेज करना चाहिये।

इसलिये गर्म पावरोटी, हलवाई की दूकान की सब चीजें, पिठा, फूलगोबी, पातगोभी, समूचा खीरा, सूखे सेम के बीज, सेम, प्याज, लहसुन, फूट, मूली, सब प्रकार के तले पदार्थ, अंडा, मांस, मांस का जुस, हल्दी के अतिरिक्त सब प्रकार के मसाले, गर्म मसाला तथा चाय, कॉफी, कोको, चाकलेट, बर्फ का शरबत, लेमनेड और शराब का इस रोग में परित्याग करना आवश्यक है।

इस रोग में चर्बी जातीय खाद्य अच्छी तरह हजम नहीं होते। इसलिये घी और मक्खन रोगी को एकदम ही खाना उचित नहीं और तेल आदि भी खूब कम खाना उचित है। हृतपिण्ड, दुर्बल हो जाने पर विशेषतः जलशोथ रहने पर नमक सम्पूर्ण रूप से वर्जन करना चाहिये।

हृद्रोग में पानी भी खूब सहज ही हजम नहीं होता। इसलिये इस रोग में अत्यधिक पानी पीने से पचने में बहुत बार बाधा होती है। कभी कभी पेट फूलकर हार्ट की तकलीफ बढ़ा देता है, किसी किसी समय रोगी का ब्लड प्रेसर बढ़ जाता है और शरीर के विभिन्न स्थानों में जलशोथ उत्पन्न होता है। विशेषतः हठात् अत्यधिक पानी पीने से रक्त की मात्रा बढ़ जाती है एवं उसका शरीर के भीतर संचालन करने में हार्ट

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

को अत्यन्त परिश्रम करना पड़ता है। इससे हार्ट बेचैन हो जाता है।

किंतु इसके लिये रोगी को एकदम ही पानी न देने से अथवा कम पानी देने से भी रोगी को अत्यन्त विपत्ति उपस्थित हो सकती है। शरीर के अत्यन्त कम पानी पीने पर ब्लड प्रेसर बहुत बार अत्यन्त विपद्जनक अवस्था में उतर आता है, मूत्र कम हो जाता है एवं पानी शरीर से जो विष धोकर निकाल ले जाता है, वह बहुत अंश में शरीर के भीतर रह जाता है और इसके फलस्वरूप हार्ट ही अन्त में अत्यन्त खराब हो जाता है। इसलिये रोगी को एक बार बहुत-सा पानी देकर बार बार थोड़ा थोड़ा करके शरीर की आवश्यकतानुसार पानी पीने को देना कर्तव्य है (Mande A. Perry, B.S.—Dietetics and Nutrition, p. 171)। रोगी के पानी पीते समय प्रतिबार थोड़ा करके नीबू का रस पानी के साथ अवश्य ही मिला देना उचित है। किंतु भोजन के समय अथवा भोजन के बाद एक घंटे के बीच में कभी भी अधिक पानी पीना उचित नहीं। अन्यन्य सब लोगों की तरह उसके लिये भी पानी पीने का सर्वश्रेष्ठ समय है भोजन के एक घंटा पहले और पेट जब खाली रहे तब। पानी के साथ सदा ही नीबू का रस लेना चाहिये।

रोगी को एक बार अधिक और पेट को अफराकर नहीं खा लेना चाहिये और थोड़ा थोड़ा करके बार बार पथ्य ग्रहण करना कर्तव्य है। Meals should be of equal size—प्रत्येक बार का पथ्य ही परिमाण में समान होना उचित है (Julius Friedenwald, M.D.—Diet in Health and Disease, p 548)। बार बार खाना है, इसलिये रोगी का प्रधान आहार ऐसा कुछ भी रहना उचित नहीं। इसके अतिरिक्त रात का भोजन थोड़ा कम होना आवश्यक है एवं वह शाम के पहले खत्म कर लेना कर्तव्य है।

सब खाद्य ही रोगी के लिये विशेष रूप से चबाकर ग्रहण करना उचित है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

हृतशूल
(Angina Pectoris)

[१]

हार्ट का जो दर्द है उसको हृत्शूल कहते हैं। बहुत अवस्था में इस रोग में हार्ट सम्पूर्ण स्वस्थ रहता है और बहुत क्षेत्र में थके हुए स्नायविक यंत्र से यह रोग होता है। इसलिये इस दर्द को कभी कभी हृत्पिण्ड का स्नायुशूल (neuralgia of the cardiac nerves) कहा जाता है। वस्तुत: जो अत्यधिक मानसिक परिश्रम करते हैं अथवा सदा एक उत्तेजना के भीतर रहते हैं अथवा जो सहज ही उत्तेजित होते हैं, उन्हें ही साधारणतः यह रोग होता है। कोई कोई अनुमान करते हैं, जो धमनी हार्ट की मांशपेशियों में रक्त भेजती है (coronary artery) उसकी रुग्ण अवस्था से यह रोग होता है एवं हार्ट का दर्द हार्ट की मांसपेशियों में यथेष्ट रक्त-संचालन के अभाव से उत्पन्न होता है। सैकड़े ९० से ९५ रोगी ही ४० वर्षों के बाद इस रोग से आक्रान्त हो जाते हैं एवं स्त्रियाँ इस रोग से जितना भुगतती हैं उनके तीन से छः गुने पुरुष भुगतते रहते हैं।

इस रोग का प्रधान लक्षण ही है दर्द, आसन्न मृत्यु का भय तथा श्वासकष्ट। यह दर्द साधारणतः हठात् आता है एवं कोई काम करने (during effort) के समय प्रकट होता है। पहले यह हार्ट में निबद्ध रहता है। इसके बाद छाती के भिन्न भिन्न ओर एवं प्रायः ही बायें हाथ की अंगुलियों तक विस्तृत होता है। दर्द के समय रोगी की साँस बन्द होने जैसा भाव होता है तथा रोगी इस समय अत्यन्त तीव्र यंत्रणा भुगतता है। तब रोगी का मुँह फीका, त्वचा ठंडी एवं नाड़ी धीमी हो जाती है और रोगी को प्रति पल मृत्यु की आशंका होती है। किंतु दर्द जैसे हठात् आता है, फिर वैसे ही हठात् जाता है। दर्द चले जाने पर रोगी बहुत आराम अनुभव करता है। दर्द साधारणतः दो-तीन

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

मिनटों से अधिक नहीं रहता, किंतु किसी किसी अवस्था में अधिक समय भी रहता है। साधारणतः सामान्य थोड़ा परिश्रम करने से ही इस दर्द का आविर्भाव होता हैं। किंतु अन्त में ऐसा हो जाता है कि जब तब दर्द उठता है और रोगी यदि शीघ्र शरीर ठीक न कर ले, तब हठात् एक दिन मौत के मुँह में जा गिरता है।

हृत्शूल को ज्यादातर धनी समाज का रोग कहा जा सकता है। जो यथेष्ट मात्रा में खा नहीं पाते और दीर्घ समय से जिनका शरीर पतला रहता है वे कदाचित् इस रोग से आक्रान्त होते हैं (Samuel A Levine, M.D., F.A.C.P—Clinical Heart Disease, p. 81, Philadelphia, 1954)। मजदूर श्रेणी के भीतर यह रोग प्रायः दिखाई नहीं पड़ता। जो बिल्कुल ही परिश्रम नहीं करते या शक्ति से अधिक परिश्रम करते हैं, श्रम करके विश्राम लिये बिना ही फिर श्रम में प्रवृत्त होते हैं, भोजन के बाद जो विश्राम नहीं करते, जो सदा उत्तेजना के भीतर रहते हैं, अत्यधिक भोजन करते हैं, शराब पीते हैं या अत्यधिक धूम्रपान करते हैं तथा अजीर्ण और वायु से कष्ट पाते हैं उनपर ही साधारणतः इस रोग का प्रकोप होता है। किंतु ये सभी उपलक्ष मात्र हैं। अन्यान्य रोगों की भाँति शरीर की दोषयुक्त अवस्था ही इसका मूल कारण है। शरीर-संचित विभिन्न विषों के द्वारा जब हार्ट के साथ सम्बन्धित स्नायु या धमनी आक्रान्त होती है, तभी यह रोग हो जाता है। इसलिये पुराने वात-रोग, गठिया, सिफलिस, आँत का ज्वर और इन्फ्लुएंजा से बहुत समय हृत्शूल उत्पन्न होता है (Frederick W. Price, M.D, F.R.C.P.—A Text-book of the Practice of Medicine, p. 1016, London, 1947)। विभिन्न औषधियों की विषक्रिया से भी बहुत क्षेत्र में यह रोग उत्पन्न हो जाता है। मधुमेह आदि में जो इनसुलिन व्यवहृत होता है वह भी यह रोग उत्पन्न कर सकता है (Charles K. Friedberg, M.D.—Diseases of the Heart, p. 359,

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

Philadelphia, 1951)। वस्तुतः रक्तदोष ही इस रोग का मूल कारण है एवं रक्तस्रोत को साफ करना ही इसकी चिकित्सा है।

[२]

अन्यान्य पुराने रोगों के समान इसकी चिकित्सा भी दो भागों में विभक्त की जा सकती है—रोग के समय रोग की चिकित्सा एवं रोग का आक्रमण जिसमें दुबारा न हो इसकी व्यवस्था।

इस रोग में दर्द जब न रहे तभी चिकित्सा का प्रधान समय है। इस समय शरीर को विकार-रहित कर और साथ साथ सबल और स्वस्थ बना लेने से धीरे धीरे रोग से आरोग्य प्राप्त किया जा सकता है।

इसलिये पहले ही पेट की लपेट, डूस, तीन से छः मिनटों के लिये फुट बाथ या एक घंटे लिये फुट पैक, तौलिया स्नान या घर्षण स्नान या साधारण स्नान, नीबू के रस के साथ जितना आवश्यक है पानी पीना तथा रोगी के स्वस्थ रहने पर क्रमशः बढ़ानेवाला व्यायाम और आसन आदि ग्रहण करना चाहिये।

इस रोग में पेट की लपेट के ऊपर विशेष जोर देना आवश्यक है। यह हर एक घंटे पर बदलकर दो-तीन घंटों के लिये प्रयोग करना उचित है। यह सही तरीके से देने पर अजीर्ण और वायु देखते ही देखते चले जाते हैं एवं साथ साथ हार्ट भी स्वस्थ होता है।

सब अवस्थाओं में ही दर्द के समय रोगी के दोनों पाँव गर्म कर लेकर एक घंटे के लिये पाँव की लपेट देना आवश्यक है। इससे हार्ट की तकलीफ द्रुत कम हो जाती है एवं सहसा दुबारा आक्रमण नहीं होता। रोगी के हाथ-पाँव कभी भी ठंडे न हो जाँय इसकी ओर सदा सतर्क नजर रखनी चाहिये। ठंडे हो जाने पर हल्का सेंक देकर गर्म कर लिये जा सकते हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

दर्द उभरते ही शवासन ग्रहण करना उचित है। शवासन (प्रयोग-विधि के लिये अन्तिम अध्याय देखिये) ग्रहण करते ही दर्द अपने आप मिट जाता है। दर्द उतर जाने के बाद भी कम से कम एक घण्टा परिपूर्ण विश्राम ग्रहण करना आवश्यक है। राह चलते चलते यदि दर्द आये तब तुरंत विश्राम लेना चाहिये। दर्द जितनी देर रहे उसके कम से कम तीन गुने समय तक विश्राम लेना आवश्यक है। इसके बाद उठकर इस प्रकार धीरे-धीरे चलना चाहिये जिससे दर्द लौट न आये। रोग का आक्रमण यदि अत्यन्त प्रबल हो अथवा आक्रमण बार बार आये अथवा सहज ही आये और साथ साथ हार्ट यदि अत्यन्त खराब रहे, तब आक्रमण के बाद कई एक सप्ताह तक शारीरिक और मानसिक विश्राम ग्रहण करना चाहिये। साधारणतः बिछावन पर लेटते ही दर्द कम हो जाता है। इस नियम की अवहेलना करने के कारण बहुत रोगी मौत के मुँह में चले गये हैं (Frederick W. Price, M.D.—A Text-book of the Practice Medicine, p. 1000)। प्रबल अवस्था में सुदीर्घ विश्राम के बाद भा बीच बीच में कई दिनों के लिये आंशिक विश्राम ग्रहण करना आवश्यक है।

इस रोग की कोई औषधि नहीं। अतः किसी औषधि के ऊपर निर्भर न करके रोगी की जीवन-यात्रा की प्रणाली बदल देने के ऊपर निर्भर करना ही उचित है (R. N. Chopra, M.D, M.R.C.P.—A Handbook of Tropical Therapeutics, p. 1250)। केवल ऐसा होने से ही रोगी आरोग्य प्राप्त कर सकता है। इसके लिये हृद्रोग की चिकित्सा द्रष्टव्य है। क्रमशः बढ़ानेवाला व्यायाम रोगी के लिये विशेष रूप से आवश्यक है।

इस रोग में भ्रमण अत्यन्त हितकर है। वस्तुतः यही प्रधान व्यायाम है, यद्यपि हाथ-पाँव मोड़ना आदि व्यायाम का साथ साथ अभ्यास करना उचित है। किंतु जब शरीर स्वस्थ रहे तभी व्यायाम आरम्भ करना चाहिये। लेकिन व्यायाम इस प्रकार का होना उचित है जिसमें शरीर

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

जान न सके और दर्द न आये। भ्रमण का समय भी खूब धीरे धीरे बढ़ाना चाहिये। अत्यधिक भ्रमण या ऊँचे-नीचे रास्ते पर भ्रमण सदा वर्जनीय है। तीन हजार फीट से ऊँचे स्थान का सदा वर्जन करना चाहिये (Howard F. Conn, M.D.—Current Therapy, p. 151, Philadelphia, 1954)। ठंडी हवा को ठेलते हुए अग्रसर होना कभी भी उचित नहीं। बहुत अवस्था में इसके फलस्वरूप दर्द उपस्थित होता है। इस रोग में ठंड अधिक सह्य नहीं होती। इसलिये रोगी जाड़े की अपेक्षा गर्मी में अपेक्षाकृत अच्छे रहते हैं। किंतु उनके लिये कभी भी गर्म पानी में स्नान करना उचित नहीं तथा गर्म चिकित्सा अधिक उचित नहीं। रोगी को जीवन में एक शान्त भाव की स्थापना करनी चाहिये। जिन्हें यह रोग है, उनके हठात् उत्तेजित होते ही यह रोग उपस्थित हो सकता है (Geoffrey Bourne, M.D.—Heart Disease, p. 75, London, 1954)। तर्क-वितर्क, शोक, क्रोध, खेल देखने की उत्तेजना आदि से सदा ही दर्द उपस्थित होने का भय रहता है। जिसमें हृदय की धड़कन अधिक बढ़ जाये ऐसा कुछ भी करना उचित नहीं। पाखाने में बैठकर कूँथने की आदत भी छोड़ देनी चाहिये।

[३]

इस रोग का पथ्य इस प्रकार होना उचित है जो पाचन यंत्रों की विशृङ्खलता उत्पन्न न करे, जिससे अजीर्ण न हो एवं वायु उत्पन्न न हो सके (इसके लिये हृद्रोग की चिकित्सा देखिये)। यह देखा गया है, जिन्हें हृत्शूल है उन्हें अजीर्ण या वायु होने पर रोग का प्रकोप बढ़ जाता है तथा आक्रमण अपेक्षाकृत जल्दी जल्दी होता है (Ibid, p. 82)।

सदा ध्यान रखना आवश्यक है विभिन्न विटामिन एवं खनिज लवण जिसमें शरीर में ग्रहीत हों। यदि रक्तहीनता रहे तब लौह-

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्रधान खाद्य विशेष रूप से ग्रहण करना आवश्यक है (इसके लिये रक्तहीनता की पथ्यविधि देखिये)। जिनके रक्त में लाल कणों का अंश ५० भाग से कम रहता है उनमें से सैकड़े २५ व्यक्ति हृत्शूल से पीड़ित रहते हैं (Dr. Craddock, M.B., Ch.B.—An Introduction to General Practice, p. 165, London, 1953)।

स्थूलता हार्ट का श्रम सदा ही बढ़ाती है। इसलिये रोगी का वजन अधिक होने पर शर्करा और चर्बी जातीय खाद्य यथासाध्य कम कर देना उचित है तथा द्रुत वजन घटा लेना आवश्यक है।

परिश्रम की भाँति पाचन-क्रिया के समय भी हार्ट का श्रम बढ़ जाता है। इसलिये बहुत समय रोगी विश्रामरत रहकर भी अत्यधिक भोजन के फलस्वरूप दर्द से आक्रान्त होता है (Charles K. Friedberg, M.D.—Diseases of the Heart, p. 358, Philadelphia, 1951)। इसके लिये रोगी को दिन में तीन बार नहीं खाकर थोड़ा थोड़ा करके पाँच बार खाना उचित है।

भोजन के बाद रोगी को दीर्घ समय विश्राम ग्रहण करना चाहिये। बहुत क्षेत्र में विश्राम नहीं करके परिश्रम करने के फलस्वरूप ही रोग का प्रकोप होता है। यदि रोगी के हाथ में बिल्कुल ही समय न रहे ऐसा होने से कम से कम एक घंटा विश्राम करके रोगी को रास्ते में निकलना उचित है। यदि रोगी थोड़ा भोजन करे अथवा भोजन के बाद दीर्घ विश्राम ले तब कभी भी प्रायः रोग का आक्रमण नहीं होता।

रोगी को बीच बीच में उपवास रखना उचित है। इस समय केवल पानी के साथ नीबू का रस लेकर रहना चाहिये। अथवा रोगी डाब का पानी या फल का रस खाकर रह सकता है।

धूम्रपान इस रोग के लिये अत्यन्त हानिकारक है। जिन्हें हृत्शूल है तम्बाकू सेवन करते ही बहुत समय उनका रोग उपस्थित होता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

रक्त का दबाव और हार्ट की धड़कन की वृद्धि करके तम्बाकू बहुत क्षेत्र में यह रोग उत्पन्न करता है (Ibid., p. 329)।

इस रोग में साधारणतः हठात् मृत्यु हो जाती है। किंतु रोगी यदि इन सब विधि-विधानों का अनुसरण करके शरीर को विकार-रहित और रक्तस्रोत को साफ कर ले सके, तब क्रमशः रोग का मूल कारण दूर हो जाता है एवं रोगी धीरे धीरे पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त करता है।

अन्यान्य विधि-निषेध सभी हृद्रोग के अनुरूप हैं।

हृत्कम्प
[Palpitation of the Heart]

अत्यन्त जोर जोर से छाती के धड़कने को हृत्कम्प कहा जाता है। यह कई एक सेकेंडों से आरम्भ होकर कई एक घंटे तक रह सकता है। ऐसी अवस्था में नाड़ी की गति कभी कभी अनियमित (irregular) होती है और किसी किसी समय हृदय की दो-एक धड़कन छूट जाती है। इस समय रोगी अत्यन्त भयभीत हो पड़ता है एवं प्रतिपल उसे विपत्ति की आशंका होती है। हृत्कम्प सदा के लिये कभी भी नहीं रहता और बीच बीच में आता है। जब हृत्कम्प नहीं रहता तब रोगी काफी स्वस्थ अनुभव करता है।

अत्यधिक भयभीत या क्रुद्ध होने से अथवा हठात् कोई कठिन परिश्रम का काम करने से बहुत लोगों की ही छाती तनिक जोर से धड़कने लगती है। किंतु उसको रोग नहीं कहते। जब प्रायः छाती धड़कती रहती है एवं दीर्घ समय तक यही अवस्था चलती है, तभी उसको रोग कहा जाता है।

जो अत्यधिक चाय, तम्बाकू या काफी पीते हैं अथवा मद्यपान करते हैं, जो अत्यन्त दुर्बल हैं फिर भी अत्यन्त इद्रियासक्त हैं अथवा जो रक्तहीनता या अजीर्ण रोग से भुगतते हैं, उन्हें ही साधारणतः यह रोग

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

होता है। कभी कभी स्नायविक दुर्बलता से यह रोग उत्पन्न होता है और बहुत अवस्था में स्नायविक दुर्बलता इसका एक लक्षण है। बहुत बार हार्ट के रोग में यह प्रकट होता है। किंतु हृत्कम्प होने से ही जो हृद्रोग रहेगा, यह सोचना असंगत है। सैकड़े ९९ क्षेत्रों में पाचन यंत्रों की विशृङ्खलता, विशेषतः पाकस्थली के रोग इसके लिये उत्तरदायी हैं। पेट फूल उठने पर वह हार्ट को दबाता है एवं हार्ट को ऊँचा उठा रखता है। इसीके कारण बहुत बार हृत्कम्प उपस्थित होता है। किंतु यह भी सत्य है कि हार्ट दुर्बल नहीं होने पर कभी सामान्य कारण से वह विचलित नहीं होता।

जब रोगी को हृत्कम्प उपस्थित होता है तब रोगी के हार्ट के ऊपर बड़ी करके पानी की पट्टी का प्रयोग करना ही इसकी प्रधान चिकित्सा है। यह पट्टी छाती की दूसरी हड्डी से छठी तक पूरे हार्ट के ऊपर और उसके बाहर भी दो इंच तक फैली होनी आवश्यक है। यह साधारणतः १० मिनटों से १५ मिनटों के लिये प्रयोग करनी चाहिये। पट्टी हटा लेकर यह स्थान सूखे फ्लानेल द्वारा रगड़कर लाल और गर्म कर देना आवश्यक है। आवश्यकतानुसार यह बहुत बार प्रयोग की जा सकती है।

इस पट्टी के प्रयोग से हार्ट सबल होता है और उसके हार्ट की क्रिया बन्द होने की यदि सम्भावना रहती है तो वह नष्ट होती है। प्रबल अवस्था में रोगी की गरदन पर भी इसी प्रकार से ठंडी पट्टी प्रयोग की जा सकती है।

किंतु अधिकांश क्षेत्र में पथ्य की देखभाल करने से ही रोग के आरोग्य के लिये जो कुछ जरूरी है वह कर दिया जाता है। अर्थात् पेट फूलना बन्द कर सके तभी हृत्कम्प साथ साथ आरोग्य प्राप्त करता है। इसलिये एक घण्टे पर बदल करके रोगी को बार बार पेट की लपेट देना आवश्यक है। रोगी को स्नायविक दुर्बलता रहने पर स्नायुओं को

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

सवल कर लेने चाहिये (अजीर्ण, पेट फूलना और मानसिक दुर्वलता की चिकित्सा देखिये)।

रोगी की पथ्य-विधि एवं अन्यान्य सब विधि-निषेध ही हृद्‌रोग के अनुरूप हैं।

उच्च रक्तचाप

[High blood pressure]

[१]

हम लोगों का हार्ट धमनी की राह प्रतिपल शरीर का रक्त पम्प करके शरीर के दूर दूर अंश में भेजता है। धमनी के भीतर रक्त जा पड़ने पर धमनी की दीवाल भी दबाव डालकर शरीर के भीतर रक्त संचालन में सहायता करती है। किंतु समय समय धमनी की दीवाल स्थूल होती है एवं इसका लचीलापन (elasticity) नष्ट हो जाता है। तब हार्ट को अपेक्षाकृत बहुत अधिक जोर से दबाव देकर रक्त भीतर भेजना पड़ता है। यह जो अतिरिक्त दबाव है उसीको हाइ ब्लड प्रेसर या रक्त का उच्च चाप कहते हैं। वर्तमान समय में उच्च रक्तचाप को हाइपर-टेन्सन (hypertension) कहा जाता है।

प्रारम्भिक अवस्था में ब्लड प्रेसर के लक्षण वैसे कुछ नहीं रहता और प्रायः ही रोग हठात् पकड़ में आ जाता है। रोग की प्रारम्भिक अवस्था में साधारणतः मस्तिष्क में कम्पन (throbbing), सिर चकराना, अनिद्रा, हृत्‌कम्पन, थकान, सरदर्द, स्मरणशक्ति का ह्रास और क्रोधी स्वभाव आदि लक्षण प्रकट होते हैं। इसके बाद हार्ट की वृद्धि (hypertrophy), श्वासकष्ट, हार्ट फेलियोर और नासिका एवं किडनी आदि विभिन्न अंगों से रक्तस्राव आदि लक्षण उपस्थित हो जाते हैं।

इन रोगियों में से प्रायः आधे हृद्‌रोग से प्राणत्याग करते हैं। इसके

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh
बाद अधिक रोगी ही सन्यास (apoplexy) रोग से मृत्यु को प्राप्त करते हैं। यदि कभी भी सिर की एक धमनी फट जाय, तब तुरंत सन्यास का आक्रमण होता है। इस अवस्था में बहुत रोगी प्राणत्याग करते हैं, और यदि बच जाते हैं, तो पक्षाघातग्रस्त हो जाते हैं। इस रोग में समय समय मूत्रग्रन्थियों में कठिन अवस्था की सृष्टि होती है और सैकड़े प्रायः दस व्यक्ति ही यूरेमिया से मौत के मुँह में जा पड़ते हैं।

अन्यान्य रोगों की भाँति शरीर में विभिन्न श्रेणियों के विष संचित होने के फलस्वरूप यह रोग उत्पन्न होता है। प्रधानतः कोष्ठबद्धता के कारण आँत से जो दूषित रस शरीर में ग्रहीत होता है, वही यह रोग उत्पन्न कर देता है। डा० केलाग (J. H. Kellogg) ने कहा है, ब्लड प्रेसर रोग शरीर की दूषित अवस्था से आरम्भ होता है, शरीर की दूषित अवस्था में चलता रहता है, एवं दूषित अवस्था में ही इसकी समाप्ति होती है (blood-pressure beging by intoxication, continues by intoxication and ends by intoxication) एवं अधिकांश अवस्था में शरीर का यह विष आँत से आता है (The New Dietetics, p. 839)। समय समय सूजी हुई टान्सिल, दाँत की जड़ का पीब, गठिया और सिफलिस आदि रोगों का विष यह अवस्था उत्पन्न करता है। संक्षेप में, शरीर का रक्त दूषित और विषाक्त हुए बिना कभी भी यह रोग नहीं होता। जब रक्त के इस विष से धमनी आक्रान्त होती है तभी यह रोग उत्पन्न हो जाता है।

किसी किसी समय विभिन्न औषधियों के प्रयोग से रक्त का चाप बलपूर्वक घटाया जाता है, किंतु उससे हित की अपेक्षा अहित ही अधिक होता है। जब धमनी की दीवाल कड़ी और मोटी हो जाती है, तब प्रकृति रक्त का दबाव बढ़ाकर ही शरीर के दूर दूर के अंशों में खाद्य-सार भेज देती है। बलपूर्वक रक्त का दबाव घटाने से शरीर को इस काम में ही बाधा पहुँचती है। इससे स्वास्थ्य अत्यन्त खराब हो जाता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

इसके अतिरिक्त बलपूर्वक ब्लड प्रेसर कम करने से मस्तिष्क और कोरोनरी आर्टरी के भीतर रक्त-संचालन कम हो जाता है एवं इसके फलस्वरूप अत्यन्त विपदजनक स्थिति का उद्भव होता है (Dr. Craddock, M.B., Ch.B.—An Introduction to General Practice, p. 170, London, 1953)। ऐसे क्षेत्र में बहुत बार रक्त में रक्त के जमे हुए छोटे छोटे टुकड़े उत्पन्न होते हैं एवं श्रमवसिस में रोगी का प्राणान्त होता है (Frederick W. Price, M.D, F.R.C.P.—A Text-book of the Practice of Medicine, p. 1629, London, 1947)। डा० हैरिस (Dr. I. Harris, Honorary Physician, Liverpool Heart Hospital) ने कहा है, औषधि द्वारा इस रोग की चिकित्सा में जो केवल हित नहीं होता, ऐसा ही नहीं, वरन् यथेष्ट अहित हो जाता है। The treatment in vogue is worse than useless—ब्लड प्रेसर की वर्तमान चिकित्सा पद्धति केवल व्यर्थ नहीं, उसकी अपेक्षा भी खराब है (Deit and High Blood Pressure, p. 48)। इसलिये साधारण ब्लड प्रेसर में औषधि की चिकित्सा (drug treatment) असन्तोषजनक (unsatisfactory) ऐसी प्रमाणित हुई है (William Evens, M.D., D.Sc., F.R.C.P.—Cardiology, p. 214, London, 1948)।

वस्तुतः औषधि की सहायता से ब्लड प्रेसर कम करने या बढ़ाने की चेष्टा जैसी शोचनीय व्यवस्था और हो नहीं सकती। Any relief is essentially treacherous, transient and in every sense of the word unsatisfactory—इस प्रकार के आराम पर कभी विश्वास नहीं किया जा सकता। यह क्षणस्थायी है और सम्पूर्ण रूप से असन्तोषजनक है (James C. Thomson—High and Low Blood Pressure, p. 153)।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

इसलिये ब्लड प्रेसर की चिकित्सा के सम्बन्ध में डा० नारिस (George William Norris, M.D.) ने कहा है, रोगी की चिकित्सा करो, रोग की नहीं (Blood Pressure, p. 250)। चिकित्सा का उद्देश्य है स्वास्थ्य को बनाना, जिसमें शरीर में रोग रहना ही असम्भव हो।

[२]

इसके लिये पहले ही पेट की लपेट और डूस आदि देकर कोष्ठ साफ कर लेना उचित है और बाद में भी सदा के लिये साफ रखना कर्तव्य है।

रोगी को प्रतिदिन एक बार तीन से छः मिनटों के लिये वाष्पस्नान प्रयोग करने से रोगी का अत्यन्त उपकार होता है। कारण सब प्रकार के गर्म बाथ से ही रोगी का ब्लड प्रेसर कम हो जाता है। किंतु ब्लड प्रेसर के रोगी को दीर्घ समय के लिये कभी भी स्टीम बाथ या दूसरा कोई स्नान प्रयोग नहीं करना चाहिये। इससे हठात् एक गुरुतर विपत्ति हो सकती है। वाष्पस्नान प्रयोग करने के समय सदा ही रोगी का सिर गीले गमछे द्वारा ढका रखना आवश्यक है। इसके बाद शरीर गर्म रहते रहते उसे स्नान करा देना चाहिये। रोगी इच्छा करने पर स्नान के पहले धूपस्नान (sun bath) भी ले सकता है। स्नान के बाद शरीर पोंछकर रगड़ देना उचित है। ब्लड प्रेसर घटाने के लिये एक प्रधान बात है, छोटी छोटी धमनियों में रक्त संचालन की वृद्धि करना। स्नान के बाद रोगी का शरीर इस प्रकार रगड़ देने से रक्त सारे शरीर में फैल जाता है एवं छोटी छोटी धमनियों में रक्तस्रोत बढ़ जाता है। इससे हार्ट का श्रम और रक्त का चाप अपने आप ही घट जाता है।

सबकी अपेक्षा अधिक लाभ होता है, अगर रोगी का शरीर साधारण रूप से थोड़ा गर्म करके कुछ दिन तक आधे घन्टे के लिये उसको घर्षण

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh
स्नान (cold friction) प्रयोग किया जाय। ऐसा होने से रोगी थोड़े दिनों में नवजीवन प्राप्त करता है।

मर्दन से भी रोगी को बहुत लाभ होता है। किंतु हार्ट खराब रहने पर सदा ही मर्दन हल्के हाथ से करना आवश्यक है और हाथ तथा पाँव का मर्दन ऊपर से नीचे की ओर करना उचित है।

रोगी को थोड़ा थोड़ा करके दिन भर में बहुत बार पानी पीना चाहिये। इससे शरीर में संचित विष शरीर से बहुत कुछ बाहर हो जाता है। किंतु एक साथ कभी भी बहुत अधिक पानी पीना उचित नहीं।

इस रोग में प्रतिदिन कम से कम नौ घण्टे सोना आवश्यक है एवं इसके अतिरिक्त यथेष्ट मात्रा में विश्राम लेना कर्त्तव्य है। प्रतिबार भोजन के बाद उसको कम से कम आधा घण्टा शारीरिक और मानसिक विश्राम ग्रहण करना उचित है। प्रति सप्ताह में भी कम से कम एक दिन तथा वर्ष में कम से कम एक महीना विश्राम लेना आवश्यक है। रोगी की अवस्था कभी भी खराब होने पर उसको अविलम्ब बिछावन में रहकर विश्राम लेना चाहिये। इससे ही ब्लड प्रेसर कम हो जाता है, सारे रोग-लक्षण गायब हो जाते हैं एवं रोगी के मन में विश्वास लौट आता है (Paul Wood, M.D., F.R.C.P.—Diseases of the Heart and Circulation, p. 787, London, 1956)।

इसके साथ भय, रोग की चिन्ता और उद्वेग वर्जन करना आवश्यक है। ब्लड प्रेसर में जो सब रोग-लक्षण दिखाई देते हैं उनमें से अधिकांश उद्वेग से उत्पन्न होते हैं (Ibid., p 785), किंतु इन लक्षणों को ब्लड प्रेसर के ऊपर आरोपित किया जाता है (Dr. Craddock, M.B., Ch.B.—An Introduction to General Practice, p. 169, London, 1953)। बहुत क्षेत्र में ही भय और परिश्रम आदि के कारण दैनन्दिन जीवन में २० से ३० प्वायन्ट तक प्रेसर उठता-गिरता है (Ibid., p. 170) अतः व्यस्तता, उत्तेजना, अत्यधिक मानसिक और शारीरिक परिश्रम,

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

लगातार परिश्रम, परिश्रमजन्य थकान और क्रोध सदा त्याग देना चाहिये। यदि रोगी अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे तब हठात् एक धमनी फट जाने के फलस्वरूप तुरन्त मौत के मुँह में चला जा सकता है। उसे दिन में दो बार शवासन (relaxation) ग्रहण करना उचित है। इससे विश्राम सुसम्पूर्ण होता है।

किंतु साधारण अवस्था में रोगी को कभी भी घर में चुप करके बैठे रहना उचित नहीं। हृद्‌रोगी की भाँति क्रमशः बढ़ानेवाला व्यायाम का अभ्यास करना उसके लिये नितान्त आवश्यकं है। परिश्रम के बाद प्रेसर साधारणतः ४० या ५० प्वायन्ट बढ़ जाता है। किंतु धीरे धीरे व्यायाम का अभ्यस्त होने पर व्यायाम ग्रहण करने से भी और प्रेसर बढ़ता नहीं। तब समझना पड़ता है शरीर भीतर से ठीक हो रहा है। यह सदा स्मरण रखना आवश्यक है अपर्याप्त व्यायाम से श्रमबसिस की सम्भावना बढ़ती है (British Encyclopaedia of Medical Practice, Vol. II, p. 676, London, 1950)। जब भी सम्भव हो रोगी को दैनन्दिन जीवन का काम-काज चलाये जाना उचित है। किंतु श्रम की मात्रा और समय घटा देना चाहिये। भ्रमण ही इस रोग में सर्वश्रेष्ठ व्यायाम है। दोनों शाम उसे खुले स्थान में भ्रमण करना उचित है। यथासम्भव दीर्घ समय तक खुले स्थान में रहना भी चाहिये।

[३)

ब्लड प्रेसर की चिकित्सा की प्रधान बात यही है कि, जितना कम खाद्य खाकर स्वास्थ्य की रक्षा की जाय वैसा ही करना उचित है। इस रोग में शरीर सुखा लेना बहुत अच्छा है एवं शरीर का वजन पर्याप्त वजन की अपेक्षा कुछ कम रखना कर्तव्य है। जो स्थूलकाय हैं उन्हें भात, रोटी, चीनी और मीठे पदार्थ बन्द करना उचित है (Geoffrey Bourne, M.D.—Heart Disease, p. 101, London, 1954) और फल, साग-सब्जी तथा दूध खाकर रहना

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh
कर्तव्य है। जब किसी व्यवस्था से लाभ नहीं होता तब इस प्रकार के पथ्य पर रहना उचित है (Frederick W. Price, M.D., F.R.C.P.—A Text-book of the Practice of Medicine, p. 1103, London, 1947)। इससे ही रक्त का प्रेसर कम हो जाता है।

ब्लड प्रेसर बढ़ जाने पर सब प्रकार के मसालों का परित्याग करना चाहिये (Clifford J. Barborka, M.D., F.A.C.P.—Treatment by Diet, p. 423, Philadelphia, 1948)। नमक यथासम्भव कम लेना उचित है। अत्यधिक नमक शरीर के भीतर पानी को रोककर ब्लड प्रेसर की वृद्धि कर देता है। यह बहुत बार परीक्षा करके देखा गया है, नमक बन्द करने से ब्लड प्रेसर कम हो जाता है और अत्यधिक नमक लेने से ब्लड प्रेसर बढ़ जाता है (Oliver E. Byrd, M.D.—Health Instruction Yearbook, p. 23, California, 1948)।

धमनी की दीवाल में कालेस्टेरल (Cholesterol) नामक एक जाति का द्रव्य संचित होता है। इसके फलस्वरूप धमनी की दीवाल कड़ी हो जाती है और अन्त में यह रोग उत्पन्न हो जाता है। कालेस्टेरल रहता है साधारणतः जन्तुओं के अण्डे, लीवर, किडनी तथा मस्तिष्क में। इसके अतिरिक्त प्राणिज चर्बी से यह अत्यधिक मात्रा में उत्पन्न होता है। मछली, मांस और अण्डे की चर्बी इसे विशेष रूप से उत्पन्न करती है। निरामिष तेल से भी यह उत्पन्न न हो सके ऐसा भी नहीं। इसलिये ब्लड प्रेसर रोग में चर्बी जातीय खाद्य यथासम्भव कम व्यवहार करना उचित है।

यह स्मरण रखना चाहिये कि पाचन के समय भी ब्लड प्रेसर बढ़ जाता है। इसलिये सदा ही कम करके भूख रखकर ही खाना उचित है।

चाय, काफी और तम्बाकू आदि कई एक द्रव्य स्वभावतः धमनी

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

की दीवाल को खराब कर देते हैं। इसलिये इन सब द्रव्यों से सदा परहेज करना चाहिये।

प्रतिदिन दोनों शाम रोगी को सलाद लेना उचित है। विभिन्न हरी साग-सब्जियों का कच्चा रस भी प्रतिदिन आधा ग्लास करके ग्रहण करना आवश्यक है। पपीता, गाजर, आलू, परवल तथा तरोई आदि तरकारियाँ रोगी खा सकता है। किंतु ये सब केवल उबालकर और बिना कड़वाहट लाये ही खाने से अच्छा होता है। दूध, दही तथा मट्ठा भी रोगी को यथेष्ट मात्रा में खाना चाहिये। Butter-milk is of inestimable value in most of these cases—इस रोग के अधिकांश क्षेत्र में ही मट्ठा से अत्यन्त उपकार होता है (Otto Juettner, M.D.—A Treatise on Naturopathic Practice, p. 22)। यदि रोगी के शरीर में यथेष्ट मांस और चर्बी रहे तब दूध के बदले उसे मट्ठा खाकर रहना उचित है। इस रोग में मछली, मांस और अंडे जितने कम खाये जायें उतना ही अच्छा है। प्रोटीन के लिये रोगी को सदा ही दूध और दही के ऊपर निर्भर करना चाहिये।

यह सदा स्मरण रखना आवश्यक है, रक्त का अम्लत्व जब बढ़ जाता है तभी यह रोग होता है। अतः रक्त का क्षारत्व जिसमें बना रहे इसकी व्यवस्था करना ही इस रोग की प्रधान चिकित्सा है। इसके लिये इस रोग में सम्पूर्ण खाद्य का सैकड़े ८० भाग ही होना उचित है क्षारधर्मी खाद्य एवं २० भाग केवल होना उचित है अम्लधर्मी। पर्याप्त परिमाण में क्षारधर्मी पदार्थों के आहार द्वारा यदि रक्त की क्षार-सम्पदा गढ़ ली जाय, तब कभी भी ब्लड प्रेसर हो नहीं सकता। ब्लड प्रेसर होने से भी फिर क्षारधर्मी खाद्य के ऊपर जोर देकर ही शरीर के भीतर रोग के आरोग्य के अनुकूल अवस्था की सृष्टि की जा सकती है।

साधारणतः फल, फलों का रस, कच्चा दूध, उबाली हुई तरकारी,

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

सलाद, विभिन्न हरी सब्जियों का रस और मधु क्षारधर्मी खाद्य में आ जाता है। प्रधानतः इन सब खाद्यों के ऊपर ही रोगी को निर्भर करना उचित है। नीबू, नारंगी, टमाटर, अनन्नास तथा अमरूद आदि सी-विटामिन-प्रधान फल रोगी के लिये अत्यन्त फलप्रद हैं। कारण धमनी का लचीलापन बनाये रखने के लिये विटामिन-सी नितान्त आवश्यक है। अन्यान्य फल भी रोगी को यथासम्भव ग्रहण करना उचित है।

चीनी और मैदा आदि सब प्रकार के परिष्कृत खाद्य का रोगी को परित्याग करना उचित है एवं बदले में किशमिश, मधु, खजूर और पतला साफ गुड़ व्यवहार करना चाहिये। नमक के बदले साग-सब्जी से उत्पन्न नमक (k-salt आदि) ग्रहण करना ही उचित है।

इस रोग में बीच बीच में उपवास अत्यन्त फलप्रद है। उपवास के बाद सदा ही ब्लड प्रेसर कम हो जाता है (George William Norris, M.D.—Blood Pressure, p. 255)। किंतु हठात् कभी भी दीर्घ उपवास आरम्भ करना उचित नहीं। धीरे धीरे उपवास में अभ्यस्त होकर अन्त में दीर्घ उपवास लेने से ब्लड प्रेसर निश्चित रूप से आरोग्य प्राप्त कर सकता है।

उपवास के समय सदा ही नीबू के रस के साथ काफी पानी पीना चाहिये।

निम्न रक्तचाप

Low blood pressure

जिस अवस्था में हार्ट यथेष्ट जोर देकर शरीर के भीतर रक्त भेजने में अक्षम होता है, उसको निम्न रक्तचाप कहा जाता है। वर्तमान समय में इसको हाइपो-टेन्सन (hypotension) कहते हैं।

यह अवस्था सदा ही जो हानिकारक होती है ऐसा नहीं। स्वस्थ व्यक्तियों के भीतर भी सैकड़े प्रायः तीन-चार व्यक्तियों को निम्न

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

रक्तचाप दिखाई देता है। इसे स्वाभाविक निम्न रक्तचाप (constitutional hypotension) कहते हैं। यह सम्पूर्ण रूप से एक विकार-रहित अवस्था है। इन सब व्यक्तियों के दीर्घ जीवन की प्राप्ति में कोई वाधा नहीं पड़ती एवं साधारण व्यक्ति की अपेक्षा ये अधिकतर दीर्घायु होते हैं (Michael G. Wohl, M.D., F.A.C.P.—Internal Medicine, p. 1077, Philadelphia, 1952)। अतः इन्हें किसी चिकित्सा की जरूरत नहीं होती (Dr. Craddock, M.B., Ch.B.—An Introduction to General Practice, p. 174, London, 1953)।

किंतु किसी किसी समय शरीर की विभिन्न रुग्ण अवस्था में प्रेसर उतर आता है। इसीको रोग (pathological form of hypotension) कहा जाता है।

इस रोग में विभिन्न लक्षण उपस्थित होते हैं। इनमें से परिश्रम जन्य थकान, सिर चकराना, सिरदर्द, मानसिक थकान, हाथ-पाँव से पसीना निकलना और उनका ठंडा रहना एवं हृत्कम्प आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

यह साधारणतः प्रकट होता है हार्ट फेलियोर, विभिन्न संक्रामक रोग, रक्तहीनता, अजीर्ण तथा क्षयरोग में। जिन्हें स्नायविक दुर्बलता है, उनमें से बहुतों को यह रोग रहता है। संक्षेप में शरीर की एक विकारयुक्त अवस्था के अतिरिक्त कभी भी यह रोग उपस्थित नहीं हो सकता।

इस रोग में औषधि का व्यवहार केवल जो निरर्थक है, ऐसा ही नहीं, वरन् हानिकर है। वर्तमान समय में यही बहुत डाक्टरों की राय है कि, drugs should not be administered to increase blood-pressure—रोगी के रक्त का चाप बढ़ाने के लिये कभी भी कोई औषधि व्यवहार करना उचित नहीं। अन्यान्य रोगों की भाँति इसकी प्रधान चिकित्सा हो शरीर को विषरहित करना और स्वस्थ बना लेना है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Arya Samaj Foundation Chandigarh

इसके लिये पेट को साफ रखना, पर्याप्त पानी पीकर शरीर को धो लेना तथा रोमकूप जिसमें साफ रहे इसकी व्यवस्था करना आवश्यक है। इसके साथ शरीर को गठन करने की व्यवस्था करनी चाहिये। इसके लिये हल्के आसन और व्यायाम तथा उपयुक्त पथ्य ग्रहण करना आवश्यक है।

रोगी का प्रधान पथ्य ही होना उचित है फल, साग-सब्जियों का कच्चा रस, उबाली हुई तरकारी, तरकारी का सूप, दूध, दही, मधु, तरल गुड़ तथा १२ घंटे भिगा हुआ किशमिश या मुनक्का। भात सदा ही माँड़ सहित तथा रोटी चोकर (bran) सहित लेना उचित है। किंतु इस रोग में शर्करा जातीय खाद्य खूब कम मात्रा में लेना आवश्यक है तथा अपेक्षाकृत अधिक प्रोटीन खाद्य ग्रहण करना कर्त्तव्य है। प्रोटीन के लिये प्रधानतः दूध और दही के ऊपर ही निर्भर करना उचित है।

निम्न प्रेसर रोग में साधारणतः अधिक खाने का सुभाव दिया जाता है। इस भ्रान्तिमूलक राय से सदा सतर्क रहना आवश्यक है। अधिक भोजन की अपेक्षा निश्चित मृत्यु की ओर दूसरी राह नहीं। किन्तु खाद्य सब गुणों से युक्त होना आवश्यक है। विशेषतः खाद्य के भीतर जिसमें सब विटामिन और खनिज लवण ग्रहीत हों इसकी व्यवस्था करनी चाहिये।

सदा ध्यान रखना आवश्यक है खाद्य जिसमें सहजपाच्य, अनुत्तेजक और खासकर क्षारधर्मी हो।

शरीर की सफाई करने और गठन करने के साथ साथ यदि इस प्रकार का पथ्य ग्रहण किया जाय, तब प्रेसर जितना होना उचित है, प्रकृति स्वयं ही वह कर लेती है।

शरीर की जिस रुग्ण अवस्था के कारण प्रेसर कम हो जाता है उसकी ओर भी सदा ध्यान रखना आवश्यक है। रक्तहीनता और स्नायविक दुर्बलता आदि के लिये इन सब रोगों की चिकित्सा द्रष्टव्य है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

षष्ठ अध्याय

वात व्याधि

सन्धिवात

[Arthritis]

[१]

वर्तमान समय में वातरोग नाम बहुत पुराना हो गया है। पहले जिसे वात व्याधि कहा जाता था, रोग के कारण और प्रकृति के अनुसार उसे अब पृथक पृथक नाम से पुकारने लगे हैं। इसलिये अब वात व्याधि (rheumatism) शब्द व्यवहार करना कोई आधुनिकता नहीं है। सीधा वात व्याधि के बदले अब तरुण वात रोग (acute rheumatism), सन्धिवात (rheumatoid arthritis), पेशीवात (muscular rheumatism) और अस्थिजरा (ostio-arthritis) आदि रोगों का नाम पृथक पृथक रूप में व्यवहृत होता है।

विभिन्न कारणों से ये रोग उत्पन्न होते हैं। बहुत अवस्था में अत्यधिक ठंड लग जाने के फलस्वरूप सन्धियों में सूजन उत्पन्न हो जाती है। बहुत बार पुरानी कोष्ठबद्धता से यह रोग उत्पन्न होता है। कारण आँत के अन्दर मल दीर्घ समय तक रहने से उसका विष शरीर में ग्रहीत हो जाता है (Theodore Franklin Bach, M.D., F.A.C.P.—Arthritis and Related Conditions, p. 11, Philadelphia, 1948)। कभी कभी विभिन्न रोगों के विष और विभिन्न जीवाणुओं के आक्रमण के फलस्वरूप सन्धियों में सूजन उत्पन्न होती है। इसी प्रकार पुराना टॉन्सिल की सूजन, पायरिया,

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Arya Samaj Foundation Chandigarh

सुजाक और क्षय आदि रोग में तथा वेसिलरी डिसेन्ट्री रोग के बाद कभी कभी सन्धियों में सूजन हो जाती है और आक्रमण के कारण के अनुसार उनके विभिन्न नाम (Dysenteric, Tuberculous और Gonococcal arthritis) दिये जाते हैं। इस प्रकार विभिन्न तरुण रोग दबा देने के कारण रोग-विष जब शरीर के भीतर रह जाता है, तब यह रोग उत्पन्न होता है (James C. Thomson Nature cure from the Insides, pp. 5—8, Edinburgh, 1954)। किन्तु चाहे जिस कारण से भी क्यों न हो और किसी श्रेणी के क्यों न हो, शरीर के भीतर विभिन्न श्रेणियों के दूषित और विषाक्त पदार्थों के संचय के अतिरिक्त कभी भी यह रोग हो नहीं सकता।

यह रोग-विष ही विभिन्न श्रेणियों का वातरोग उत्पन्न करता है। जब यह विष सारे शरीर में फैल जाता है और उसके फलस्वरूप ज्वर उत्पन्न होता है तब उसको तरुण वातरोग कहा जाता है। जब इस विष के द्वारा तन्तु आक्रान्त होते हैं, तब इसे कहा जाता है पेशीवात, जब यह अस्थियों पर आक्रमण करके उनके अन्दर ह्रास की स्थिति (degeneration) ले आते हैं तब उसे कहते हैं अस्थिजरा, और जब इनके द्वारा शरीर के जोड़ विशेष रूप से आक्रान्त होते हैं तब उसे कहा जाता है सन्धिवात। इसलिये सन्धिवात केवल सन्धियों का रोग नहीं, यह सम्पूर्ण शरीर का रोग है (Otto Glasser, Ph.D.—Medical Physics, p. 71, Chicago, 1951). केवल यह प्रकट होता है सन्धियों में।

सन्धिवात साधारणतः दीर्घदिनव्यापी ज्वर से आरम्भ होता है। ज्वर के साथ एक या एक से अधिक सन्धियों में दर्द और फूलन उत्पन्न होती है। कुछ दिन बाद रोग-लक्षण कम या अधिक रूप से घट जाते हैं, किंतु शरीर से बिदा नहीं लेते। प्रायः ही नई नई सन्धियों में दर्द और फूलन लेकर ज्वर आता है और अन्त में शरीर की अधिकांश सन्धियाँ ही आक्रान्त हो जाती हैं। कुछ दिन बाद आक्रान्त सन्धि के

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

चारों ओर का समस्त अंश कड़ा हो जाता है। पहले सन्धि के चारों तरफ के तन्तु फूल जाते हैं, उसके बाद भीतर की झिल्लियों में सूजन आ जाती है तथा उनके भीतर पानी भर जाता है। शेष में जोड़ टेढ़े-मेढ़े हो जाते हैं और क्रमशः सन्धि-संचालन असम्भव हो उठता है।

[२]

रोग का आक्रमण होने पर आरम्भ में ही कुछ भी विचार न करके रोगी को नीबू के रस के साथ गर्म पानी का एक डूस देना आवश्यक है तथा उसके बाद भी कुछ दिन तक प्रतिदिन डूस देकर, पेड़ू की ढकी हुई लपेट प्रयोग करके और यथेष्ट मात्रा में फल या फलों का रस खिलाकर कोष्ठ सदा के लिये साफ रखना चाहिये।

रोगी का पेट साफ कर लेते ही रोगी को आधे घंटे के लिये एक उष्ण पादस्नान प्रयोग करना उचित है। इसके बाद शरीर गर्म रहते रहते एक गीली चादर का पैक देना आवश्यक है। यह पैक देने के समय गीली चादर के बदले भीतर में गर्म ऊनी चादर व्यवहार करना कर्तव्य है और उसे गर्म पानी में डुबा लेना चाहिये। रोगी को जिसमें पैक के भीतर यथेष्ट मात्रा में पसीना निकल सके इसके लिये रोगी के शरीर के चारों ओर तथा कम्बल के भीतर बहुत-सी गर्म पानी की बोतलें सजा देना आवश्यक है। यदि रोगी का हार्ट दुर्बल रहे तब एक गीला गमछा अच्छी तरह निचोड़कर पैक के भीतर रोगी के हार्ट के ऊपर रखना चाहिये। वातज्वर में शारीरिक ताप घटा लाने के लिये तथा सन्धि का दर्द कम करने के लिये यह एक श्रेष्ठ उपाय है। इससे पसीने के साथ रोगी के शरीर से यथेष्ट विष बाहर निकल जाता है इसीलिये रोगी का ज्वर कम होता है। यदि रोगी यथेष्ट रूप से सबल हो तब उसे सप्ताह में दो दिन अथवा एक दिन बीच देकर एक दिन यह प्रयोग किया जा सकता है। किन्तु दुर्बल रोगी को गीली चादर के

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

पैक के बदले मध्य शरीर का पैक (trunk-pack) देना उचित है।

इस प्रकार से गीली चादर का पैक प्रयोग करके रोगी को बीच बीच में अन्यान्य तापस्नान भी प्रयोग करने चाहिये। रोगी को किसी दिन गीली चादर का पैक, किसी दिन सम्पूर्ण शरीर में वाष्पस्नान, या किसी दिन उष्ण पादस्नान (hot foot bath) प्रयोग करना उचित है।

किन्तु रोगी को कभी भी अत्यधिक या बहुत अधिक समय के लिये चिकित्सा करना उचित नहीं। साधारण अवस्था में रोगी को छः मिनटों के लिये सम्पूर्ण शरीर का वाष्पस्नान, बीस मिनटों के लिये उष्ण पादस्नान, एक घंटे के लिये गीली चादर की लपेट और पन्द्रह मिनटों के लिये आंशिक वाष्पस्नान प्रयोग करना उचित है। रोग-लक्षण लुप्त होने पर अन्त में ये सब घटाकर कई एक दिनों तक रोगी को प्रतिदिन केवल उष्ण पादस्नान प्रयोग किया जा सकता है। तापस्नान प्रयोग के समय शरीर गर्म होने पर रोगी के हार्ट के ऊपर सदा ही ठंडे पानी में भिगोई तौलिया रखना चाहिये तथा तापस्नान के बाद रोगी को अवश्य ही तौलिया स्नान प्रयोग करना कर्तव्य है। इसके अतिरिक्त रोगी का सिर दिन में तीन बार धुलाकर सारा शरीर गीले गमछे से पोंछ देना उचित है। वात के रोगी को ठंडा पानी सहन नहीं होता। इसलिये प्रारम्भिक अवस्था में थोड़ा गर्म पानी से स्नान करना आवश्यक है एवं बाद में सूखी मालिश प्रयोग करके शरीर गर्म कर देना उचित है। रोगी का सिर सब अवस्थाओं में ही ठंडे पानी से धो देना चाहिये।

संक्षेप में, वात रोग में गर्म चिकित्सा के ऊपर विशेष जोर देना आवश्यक है। ज्वर रहने पर कभी भी रोगी को ठंडे पानी से पूरा स्नान प्रयोग करना उचित नहीं।

इसके साथ रोगी को आक्रान्त सन्धि के ऊपर ध्यान रखना चाहिये। रोगी की आक्रान्त सन्धि के ऊपर दिन में एक बार पाँच मिनटों के सेंक

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

के बाद तीन मिनट ठंडा देकर गर्म-ठंडा तीन बार प्रयोग करके अन्त में और ठण्डा नहीं देकर सन्धि के नीचे से ऊपर की ओर इस प्रकार घर्षण करना चाहिये जिसमें सन्धि के ऊपर कुछ भी चोट नहीं लगे फिर भी सन्धि का जमा हुआ रक्त ऊपर की ओर उठ जाय। इस रोग में सदा ही ठंडा-गर्म प्रयोग करना चाहिये। साधारणतः उसीसे अधिक लाभ होता है (Howard F. Conn, M.D.—Current Therapy, p. 760. Philadelphia, 1954)। इसके अतिरिक्त प्रतिदिन रोगी के आक्रान्त अंग के ऊपर पन्द्रह से पच्चीस मिनटों के लिये वाष्पस्नान प्रयोग करना चाहिये। यदि रोगी की घुटने आदि सन्धि आक्रान्त हो, तब उसको कमर तक निम्न शरीर में वाष्पस्नान दिया जा सकता है। रोगी को एक कुर्सी में बैठाकर और उसकी कमर तक का शरीर कम्बल से ढककर कम्बल के नीचे भाप छोड़ देना उचित है। इस समय रोगी के गला तक ऊपर का शरीर एक सूती चादर से ढककर रखना कर्तव्य है तथा उसके सिर और हार्ट के ऊपर गीला गमछा रखना उचित है। इस प्रकार रोगी के अन्य किसी आक्रान्त अंग में भी आंशिक वाष्पस्नान (local steam bath) प्रयोग किया जा सकता है। आंशिक वाष्पस्नान के प्रयोग के समय आक्रान्त अंग प्रत्येक पाँच मिनट के बाद कम्बल के भीतर ही ठंडा कर लेना उचित है। किंतु अन्तिम बार और ठंडा नहीं करके सन्धि को हल्के हल्के नीचे से ऊपर की ओर रगड़ देना चाहिये। यदि सन्धि में सूजन न रहे तब सदा ही इस प्रकार करना आवश्यक है।

यदि सन्धि में सूजन हो, तब उसके ऊपर दिन में दो बार गर्म-ठंडा देकर प्रत्येक एक घण्टा पर बदल देकर दिन में तीन-चार बार सन्धि के चारों ओर ढकी हुई लपेट व्यवहार करना आवश्यक है।

पुराने वातरोग में सन्धि कड़ी और बड़ी हो जाने पर सन्धि के ऊपर दिन में दो बार गर्म-ठण्डा तथा उसके बाद रगड़कर सन्धि को चलाना, फैलाना और घुमाना कर्तव्य है। किंतु दर्द रहने पर यह सब

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

करना उचित नहीं और इस प्रकार भी नहीं करना चाहियें जिससे दर्द उत्पन्न हो सके। पुराने रोग में भी आक्रान्त सन्धि के चारों ओर बार बार ढकी हुई लपेट व्यवहार करना आवश्यक है।

रोग की प्रबल अवस्था में बिछावन में लेटकर विश्राम लेना ही रोग की पहली और प्रधान चिकित्सा है। ज्वर रहने तक बिछावन में रहकर परिपूर्ण विश्राम ग्रहण करना उचित है। इस अवस्था में कभी भी सन्धि संचालन नहीं करना चाहिये। संधियों को निरर्थक असमय ही मोड़ देने की चेष्टा करने पर विकलांगता उत्पन्न हो सकती है (Otto Glasser, Ph. D.—Medical Physics, p. 1238, Chicago, 1951)।

इस रोग में हार्ट अत्यन्त दुर्बल रहता है। अतः रोग की तरुण अवस्था में अथवा रोग की तरुण अवस्था बीत जाने के तुरंत बाद हठात् बिछावन पर उठकर बैठना या और कोई परिश्रम का काम करना उचित नहीं। उससे चिरस्थायी रूप से हार्ट का कोई रोग उत्पन्न हो सकता है। दर्द रहने पर कभी सीढ़ी चढ़ना उचित नहीं।

दर्दवाले अंग को आरामप्रद ढंग से रखकर विश्राम देना चाहिये। इस समय एक खपची (splint) बाँधकर रुग्ण अस्थि अपने स्थान पर रक्खी जा सकती है। रोगी का सूजा हुआ अंग कभी भी मुलायम तकिये के ऊपर रखना उचित नहीं। उससे विकलांगता उत्पन्न हो सकती है। आक्रान्त अंग को स्वाभाविक रखने पर भी इस प्रकार की हानि की सम्भावना रहती है। विश्राम के समय रोगी को दिन में दो बार श्वास-प्रश्वास का व्यायाम ग्रहण करना चाहिये (William Bierman, M.D., and Sidney Licht, M.D — Physical Medicine in General Practice, p. 550, New York 1952)। इस प्रकार से दो सप्ताह के लिये विश्राम लेने से ही साधारणतः सब रोग-लक्षण गायब हो जाते हैं।

किंतु ज्वर के अतिरिक्त और सब अवस्थाओं में परिपूर्ण निष्क्रियता

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

(absolute inactivity) का अवलम्बन करना उचित नहीं। ज्वर चले जाने के बाद अत्यन्त कठिन रोग में भी (even with the severest disease) जिस अंग में दर्द नहीं है उसका थोड़ा व्यायाम होना उचित है। इसके लिये स्वस्थ अंगों को बार बार धीरे धीरे मोड़ दिया जा सकता है। इससे दुर्बलता और विकलांगता दूर होती है (Howard F. Conn, M.D.—Current Therapy, p. 751, Philadelphia, 1954)। ज्वर कम हो जाने पर रोगी के सारे शरीर में पद्धति के अनुसार प्रतिदिन मर्दन भी कर देना आवश्यक है। किन्तु हार्ट खराब रहने पर हाथ-पाँव के मर्दन के समय सदा ही ऊपर से नीचे की ओर मर्दन करना उचित है। इस समय सन्धियों को बार बार टेढ़ा करके फिर सीधा करना चाहिये एवं सन्धियों को बार बार प्रसारित करना आवश्यक है।

तरुण अवस्था चल जाते ही हल्के व्यायाम आरम्भ करने चाहिये। किंतु जिन सब अंगों को हिलाने-डुलाने से दर्द हो, उन्हें अवश्य ही छोड़ देना उचित है। व्यायाम और मर्दन से रक्त-संचालन बढ़ जाता है, मांसपेशियों की सजीवता (tone) लौट आती है एवं शरीर के भीतर दहन क्रिया (oxidation) बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त व्यायाम और मर्दन से विकलांगता दूर हो जाती है। किंतु थक जाने के पहले ही सदा विश्राम करना उचित है। व्यायाम यथासम्भव खुली हवा में ग्रहण करना चाहिये। सुबह अथवा अपराह्न में दैनिक दो-चार मील भ्रमण करना भी विशेष रूप से आवश्यक है। इस रोग में विभिन्न आसन भी अत्यन्त फलप्रद हैं। रोग आरोग्य होने के बाद भी प्रत्येक दिन थोड़ा पसीना निकाल लेना रोगी के लिये नितान्त कर्तव्य है। इसके लिये प्रतिदिन स्नान के पहले धूपस्नान ग्रहण करके उसके बाद शरीर गर्म रहते रहते स्नान कर लेना आवश्यक है। आकाश में धूप नहीं रहने पर कुछ देर के लिये हाट फुट बाथ लेकर उसके बाद दोनों पाँव गर्म पानी में डुबाये रखकर स्नान करना उचित है। स्नान के अन्त में

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

शरीर पोंछकर दोनों पाँव गर्म पानी से निकालकर एवं उनके ऊपर एक घड़ा ठंडा पानी डालकर उसके बाद घर में चला जाना आवश्यक है। इस प्रकार कम से कम दो महीने तक करना चाहिये। इसके अतिरिक्त हर एक, दो या तीन महीने पर एक बार पूर्ण समय के लिये रोगी को वाष्पस्नान या गीली चादर का पैक ग्रहण करना उचित है। इसके बाद भी कभी भी किसी सन्धि में दर्द होते ही अविलम्ब कोष्ठ साफ करके दर्द के स्थान पर गर्म-ठंडा देने के बाद नीचे से ऊपर की ओर सन्धि को हल्के हाथ से रगड़ देना चाहिये।

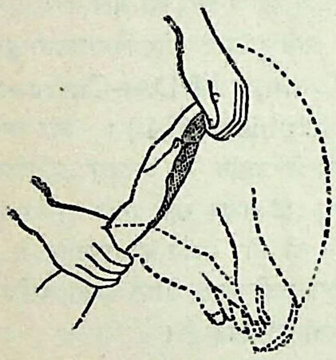
सन्धि भंग (flexion)

इस रोग की कोई दवा नहीं। औषधियों के देश अमेरिका के संयुक्त राष्ट्र में एक करोड़ एक लाख व्यक्ति सन्धिवात से भुगतते रहते हैं (E. I. Boyd, M.D.—Health Instruction Text-book, p. 92, New York, 1952)। अतः आरोग्य के लिये औषधि के पीछे दौड़ना सम्पूर्ण निरर्थक है। विषाक्त औषधियों द्वारा किसी किसी समय अस्थायी रूप से दर्द बन्द किया जा सकता है। किन्तु उससे शरीर की विकारयुक्त अवस्था और भी बढ़ जाती है और बाद में हृद्‌रोग आदि का आक्रमण होता है तथा अन्त में एक दिन मृत्यु सभी यंत्रणाओं का अन्त कर देती है।

इसलिये वर्तमान समय में वात नीरोग करने की अपेक्षा साधारण स्वास्थ्य की उन्नति की ओर ही ध्यान दिया जाता है (Margery Abraham, M.B., M.Sc., and Elsie M. Widdowson,

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

D.Sc., Ph.D.—Modern Dietary Treatment, p. 93, London, 1951)। वस्तुतः इस रोग की चिकित्सा में रोगी का साधारण स्वास्थ्य अच्छा करना ही प्रथम कर्तव्य है (Otto Glasser Ph.D.—Medical Physics, p. 71, Chicago, 1951)।

इसलिये रोग आरोग्य होने के बाद भी रोगी को कोष्ठ और मूत्रस्रोत जिसमें साफ रहे इसकी व्यवस्था करना उचित है एवं प्रतिदिन स्नान के पहले थोड़ा व्यायाम ग्रहण करना कर्तव्य है। स्नान के बाद भी सूखी मालिश ग्रहण करके शरीर को गर्म कर लेना उचित है।

रोगी को सदा खुली हवा में निवास करना आवश्यक है। जिसमें रोग का आक्रमण आ सके जैसे अत्यधिक ठंड लगना, नमीतरी कमरे में रहना, भींगे कपड़े पहने रहना, रात में देर तक जागना, बहुत अधिक सोना, दिन में सोना, आवश्यकता से अधिक परिश्रम और आवश्यकता से अधिक भोजन सब तरह से परित्याग करना चाहिये। रोगी के पथ्य के ऊपर विशेष रूप से ध्यान देना आवश्यक है। कारण विशुद्ध पथ्य से ही शरीर नये सिरे से गढ़ उठता है और शरीर का कूड़ा-कर्कट शरीर से बाहर निकल जाता है।

[२]

इस रोग में प्रारम्भिक अवधि से ही नीबू के रस के साथ काफी पानी पीना चाहिये। पानी रोगी के शरीर से विभिन्न विष और जीवाणु धोकर बाहर निकाल ले जाता है। ज्वर रहने पर पहले पहल गर्म पानी और बाद में समशीतोष्ण पानी पीना उचित है। रोग की अवस्था में रोगी जितने दीर्घ समय तक पानी के साथ उपवास रख सके, उतना जल्दी रोग नीरोग होता है। बहुत बार केवल उपवास से ही अधिकांश रोग-लक्षण गायब हो जाते हैं और सब क्षेत्रों में हो रोगी की अवस्था उन्नति प्राप्त करती है। प्रतिदिन पानी के साथ

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कम से कम चार नीबू का रस ग्रहण करना चाहिये। नारंगी आदि फलों का रस भी पानी के साथ मिलाकर या बिना पानी ग्रहण किया जाता है। ज्वर रहने तक रोगी को छेना का पानी, हरी सब्जियों का जूस आदि ज्वर के अन्यान्य साधारण पथ्य भी दिये जा सकते हैं। ज्वर चले जाने के बाद भी सात से दस दिनों तक रोगी को ये सब पथ्य ही ग्रहण करने चाहिये। इसके बाद खूब धीरे धीरे ठोस पथ्य (solid food) पर उतरना उचित है।

इस समय प्रधान पथ्य ही होना उचित है फल, फलों का रस, तरकारी का जूस, सलाद, हरी सब्जियों का रस, दूध और मधु। ये सब भी यथासम्भव कच्ची अवस्था में ही ग्रहण करना आवश्यक है। बहुत क्षेत्र में देखा गया है इस जाति के कच्चे खाद्य ग्रहण करने से दर्द, फूलन और कड़ापन (stiffness) थोड़े दिनों में कम हो जाता है (Bernard Fantus, M.D.—The 1939 Year-Book of General Therapeutics, pp. 223—5)। ये सब खाद्यों से पहले सप्ताह में वजन बहुत कम हो जाने पर भी बाद के सप्ताहों में एक ही खाद्य से वजन बढ़ जाता है (Ibid., p. Do.)। रोगी के खाद्य में सदा ही नारंगी, बिजोड़ा नीबू और खट्टा नीबू आदि खट्टे जाति के फल (citrus fruits) की व्यवस्था करनी चाहिये। रोगी यथेष्ट मात्रा में टमाटर, सेव और अंगूर भी ग्रहण कर सकता है। वातरोग में फलप्रद कहकर अंगूर का यथेष्ट सुयश है। किशमिश, खजूर, खूबानी और मधु भी रोगी को यथेष्ट रूप में ग्रहण करना उचित है। चीनी के बदले सदा ही ये सब व्यवहार करना आवश्यक है। रोगी को प्रतिदिन बहुत-सा सलाद और हरे साग का रस देना चाहिये। इस रोग में लहसुन खाना बहुत अच्छा है। वातरोग में लहसुन एक औषधि और पथ्य है। रोगी को प्रतिदिन एक कच्चा लहसुन भात या रोटी के साथ खाना उचित है।

इस रोग में एवं इस जाति के जिस किसी रोग में अस्थि आक्रान्त

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

होते ही खाद्य में यथेष्ट मात्रा में कैलशियम और फासफोरस की व्यवस्था करनी चाहिये। खाद्य में इनका अभाव होने से अस्थियाँ दुर्बल हो जाती हैं और भीतर ही भीतर इनकी अवस्था खराब (degenerated) हो जाती है। साधारणतः यथेष्ट दूध पीने से और प्रतिदिन कुछ देर के लिये सूर्य की किरण ग्रहण करने से शरीर में कभी इनका अभाव नहीं होता। किंतु इस रोग में यह स्मरण रखना आवश्यक है कि, खाद्य जब अधिकांश अम्लधर्मी हो, तब कैलशियम और फासफोरस शरीर से द्रुत निकल जाते हैं तथा अधिकांश क्षारधर्मी होने से शरीर में वे रहने की सुविधा पाते हैं (James S. McLester, M.D.—Nutrition and Diet, p. 349)। इसीलिये कहा जाता है कि, रक्त का क्षारत्व घट जाना ही वातरोग का प्रधान कारण है। यह बात सब श्रेणियों के वातरोग के लिये सत्य है। इसलिये सब श्रेणियों के वातरोग में रोगी का पथ्य इस प्रकार का होना आवश्यक है, जिसमें पूरे खाद्य का सैकड़े ८० भाग खाद्य ही क्षारधर्मी हो। रोग की प्रबल अवस्था में केवल क्षारधर्मी पथ्य के ऊपर ही निर्भर करना उचित है। इसके बाद रोग की प्रबलता कम हो जाने के साथ साथ भात और रोटी आदि अम्लधर्मी खाद्य की मात्रा कुछ कुछ करके बढ़ानी चाहिये।

इस रोग में शर्करा खाद्य का परिमाण कम होना उचित है (Michael G. Wohl, M.D.—Diatotherapy, p. 756, London)। चीनी एकदम छोड़ देना चाहिये। रोगी को प्रतिदिन थोड़ा प्रोटीन आवश्यक है। किंतु प्रोटीन के लिये प्रधानतः दूध के ऊपर ही निर्भर करना उचित है। रोगी काजू और अखरोट आदि बादाम (nuts) भी किशमिश के साथ मिलाकर खा सकता है।

रोगी के शरीर में जिसमें सब विटामिन और खनिज लवण ग्रहीत हों इसकी ओर विशेष रूप से ध्यान रखना आवश्यक है।

इसके लिये रोगी को यथेष्ट मात्रा में शाक-सब्जी, फल और दूध ग्रहण करना चाहिये और प्रतिदिन स्नान के पहले सूर्य की किरण ग्रहण

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

करना आवश्यक है। जीवाणु से आक्रान्त सन्धिवात में प्रतिदिन भोजन के बाद काड लीवर आयल लेना बहुत अच्छा है।

वजन अधिक रहने पर वजन घटाना चिकित्सा का एक प्रधान अङ्ग है (Clifford J. Barborka, M.D.—Treatment by Diet, p. 611, Philadelphia, 1948)।

रोगी के लिये चाय, कॉफी, कोको, तम्बाकू, शराब, मांस, बर्फ, दही, डाब का पानी, सब प्रकार के दुष्पाच्य पदार्थ, अत्यधिक नमक और मसाला, सब प्रकार के तले पदार्थ तथा औषधि वर्जन करनी चाहिये।

पेशीवात
[Muscular Rheumatism]

जब शरीर-संचित विभिन्न विषों के द्वारा शरीर की मांसपेशी आक्रान्त होती है, तब उसको पेशीवात कहते हैं। इसका दूसरा नाम है—Fibrositis। इस विष के द्वारा शरीर की सब मांशपेशियाँ ही आक्रान्त हो सकती हैं। जब इसके द्वारा कटिप्रदेश की मांसपेशी आक्रान्त होती है तब उसको कहते हैं कटिवात (lumbago), गर्दन की मांस-पेशी आक्रान्त होने से कहा जाता है गर्दन का वात (torticollis) और बगल की मांसपेशी आक्रान्त होने पर (pleurodynia) कहा जाता है। इसके द्वारा आँख, हार्ट और आँत की मांसपेशियाँ तक आक्रान्त होने के फलस्वरूप बहुत बार विभिन्न कठिन रोग-लक्षण उत्पन्न होते हैं।

कोई अंग कुचल जाने पर जैसा दर्द होता है, इससे पेशियों में वैसा दर्द होता है और साधारणतः हिलने से दर्द बढ़ता है। जलवायु परिवर्तन, ठंड लगना और सीलन-भरे स्थान में निवास बहुत बार रोग बढ़ा देते हैं। यद्यपि इस रोग से प्राणान्त नहीं होता, फिर यह रोग दीर्घ अवधि तक

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh
चलने पर स्वास्थ्य टूट जाता है और दूसरा कोई नया रोग उपस्थित हो सकता है। बहुत बार यह सन्धिवात आदि में बदल जाता है और जीवन को अकर्मण्य कर देता है।

शरीर में विभिन्न दूषित पदार्थों के संचय से जिस प्रकार सन्धिवात होता है उसी प्रकार पेशीवात भी इसी कारण से ही उत्पन्न होता है। इसलिये जो दीर्घ अवधि तक कोष्ठबद्धता से भुगतते हैं, जिन्हें पायरिया है, जिनका टान्सिल खराब है तथा जिन्हें सिफलिस आदि रोग है उन्हें ही साधारणतः यह रोग होता है। इसलिये विभिन्न रूप से पेट साफ रखना, पेशाब सहज कर लेना, रोमकूपों को खोल देना तथा विभिन्न प्रकार से शरीर साफ करना ही इसकी प्रधान चिकित्सा है। इस उद्देश्य की पूर्ति करके आक्रान्त अंग की सामान्य कुछ चिकित्सा करने से ही पेशीवात आरोग्य प्राप्त करता है। साधारणतः आक्रान्त पेशी के ऊपर ५ मिनट गर्म सेंक के बाद ३ मिनट ठंडा देकर तीन बार गर्म-ठंडा प्रयोग करना पड़ता है। किंतु अन्तिम बार ठंडा नहीं देकर ही यह स्थान पाँच मिनट तक रगड़कर नीचे से हार्ट की ओर रक्त उठा देना होता है। यदि इस स्थान में सूजन उत्पन्न हो तब दिन में तीन बार इस स्थान में गर्म-ठंडा देकर दीर्घ समय के लिये ढकी हुई लपेट व्यवहार करना आवश्यक है और वह प्रत्येक एक घंटे पर बदल देना कर्तव्य है। इस सहज और सरल व्यवस्था से ही दीर्घ दिनों का पेशीवात थोड़े समय में आरोग्य प्राप्त कर लेता है। रोग पुराना होने पर सन्धिवात की भाँति पथ्य और चिकित्सा ग्रहण करनी चाहिये।

अस्थिजरा

[Osteoarthritis]

शरीर की एक या एक से अधिक सन्धि के क्रमिक ह्रास (degeneration) को अस्थिजरा कहते हैं। इसमें सन्धि की उपास्थि और

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

बृहत्तर सन्धियों में जो अंश शरीर का भार वहन करते हैं उनका रोग कहा जा सकता है। इससे संधि के चारों ओर की उपास्थियाँ विनष्ट हो जाती हैं तथा अस्थियों के बगल से नयी अस्थि निकलती है। इस अवस्था में इसका संचालन करना असम्भव हो उठता है। यह रोग साधारणतः बिना किसी सूचना के उपस्थित होता है। प्रारम्भिक अवस्था में एक या एक से अधिक सन्धियाँ कड़ी हो जाती हैं और अंग-सञ्चालन के बाद सन्धि में दर्द होता है। सब समय इसमें दर्द रहता हो, ऐसा नहीं। किंतु खराब अवस्था में सन्धि का कड़ापन और दर्द साधारणतः बढ़ जाता है। रोगी की इस प्रकार की अवस्था बहुत दिनों तक चलती है। इसके बाद इस अंग की मांसपेशी सूख जाती है। इससे अंग और भी दुर्बल हो पड़ता है। बहुत समय इस रोग के साथ साइटिका उत्पन्न हो जाता है। किंतु सन्धिवात (rheumatoid arthritis) में जिस प्रकार सन्धि में सूजन रहती है, संधि में पानी भर जाता है और ज्वर के साथ प्रायः ही रोग का आक्रमण होता है, इसमें वह नहीं होता और सारे शरीर के रोग-लक्षण कम रहते हैं।

साधारणतः पुराने आघात, शरीर के चयापचय की गड़बड़ी (defects of metabolism) और विभिन्न स्नायविक रोग से यह रोग उत्पन्न होता है। किंतु कोई चोट पहुँचते ही सदा यह रोग होता हो, ऐसा नहीं। देह-संचित विष जब चोट से दुर्बल किसी अंग पर आक्रमण करता है तभी यह रोग हो जाता है। शरीर के भीतर चयापचय की गड़बड़ी तथा विभिन्न स्नायविक रोग भी केवल शरीर की अत्यधिक विकारयुक्त अवस्था में ही सम्भव होते हैं।

इसके लिये प्रारम्भ में ही पेट की लपेट, डूस, धूपस्नान, हल्का स्टीम बाथ, गीली चादर की लपेट, मर्दन और घर्षण स्नान आदि द्वारा शरीर को विषमुक्त तथा विभिन्न यंत्रों को उद्दीप्त कर लेना आवश्यक है। प्रतिदिन रोगी को कम से कम आधे घंटे के लिये मर्दन करना चाहिये। इस समय रोगी की सन्धियाँ अवश्य ही हल्के हल्के संचालन करना

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

आवश्यक है। सन्धि-संचालन (joint movement) से सन्धि की गतिशीलता बनी रहती है, मांसपेशियों का क्षय दूर होता है, विनष्ट मांसपेशियाँ फिर बनने लगती हैं और रुग्ण सन्धि के भीतर विभिन्न स्थानों का जुड़ना असम्भव हो जाता है। मर्दन के बाद रोगी के पेट पर गर्म-ठंडा देकर उसको नीबू के रस के साथ गुनगुना पानी में एक डूस देना चाहिये। इसके बाद उसको धूपस्नान या तीन से छः मिनटों के लिये स्टीम बाथ देकर आधे घंटे के लिये घर्षण स्नान प्रयोग करना उचित है। घर्षण स्नान के प्रयोग की सुविधा न रहने पर तौलिया स्नान प्रयोग किया जा सकता है, अथवा रोगी को स्नान करा दिया जाता है। सारी रात के लिये पेट की लपेट भी प्रयोग करना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त उसकी आक्रान्त संन्धि के ऊपर दिन में दो बार १५ से २१ मिनट तक गर्म-ठंडा देकर एक एक घंटे पर बदल देकर दिन में चार बार ढकी हुई लपेट प्रयोग करनी चाहिये। इसके बाद भी बीच बीच में आक्रान्त सन्धियों के ऊपर गर्म-ठंडा और ढकी हुई लपेट व्यवहार करनी चाहिये। रोगी का कोष्ठ आदि सदा साफ रखना आवश्यक है।

इन सब चिकित्सा के साथ रोगी को ठीक से बैठने, खड़े होने और चलने (proper postural exercises) का अभ्यास करना चाहिये तथा दीर्घ दिन तक यह व्यायाम चलाये जाना उचित है। रोगी की आक्रान्त संधि के ऊपर कभी भी शरीर का बोझ पड़ना उचित नहीं। ऐसा होने से उपास्थियों के मरम्मत में देर लगती है। इसलिये घुटने की संधि आदि के रोग में किसी चीज का सहारा लेकर चलना उचित है। रोगी को यथासम्भव दीर्घ विश्राम करना चाहिये। इस रोग में गर्म और शुष्क जलवायु बहुत अच्छी है।

इस रोग की कोई भी दवा नहीं। रोगी का स्वास्थ्य जिसमें फिर बनने लगे और रोग प्रतिरोध क्षमता जिसमें बढ़े, इसकी व्यवस्था करना आवश्यक है (Theodore Franklin Beck, M.D.,

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

F.R.C.P.—Arthritis and Related Conditions, p. 206, Philadelphia, 1948)। इसीसे केवल रोग आरोग्य प्राप्त कर सकता है।

रोगी के मन का बल सदा अटूट रखने की आवश्यकता है। इस रोग में कदाचित् कभी भी विकलांगता उपस्थित होती है। अतः रोग के लिये कभी भी उद्विग्न होना उचित नहीं। उद्वेग सदा ही आरोग्य की गति में बाधा देता है। जिस कारण के लिये शरीर की अस्थियों के भीतर क्रमिक ह्रास (degeneration) उत्पन्न होता है वह जब शरीर से निकल जाता है, प्रकृति स्वयं ही फिर अस्थियों की मरम्मत कर लेती है।

रोगी को प्रचुर विटामिन और खनिज-लवण-प्रधान खाद्य देना चाहिये। चर्बी और शर्करा जातीय खाद्य उसे यथासम्भव कम करके देना आवश्यक है। रोगी का खाद्य कभी भी १,६०० कैलोरी के ऊपर होना उचित नहीं और खाद्य के साथ कभी भी पानी पीना उचित नहीं (Frederick W. Price, M.D., F.R.C.P.—A Text-book of the Practice of Medicine, p. 1377, London, 1947)।

अन्यान्य विधि-निषेध सन्धिवात के अनुरूप हैं।

गठिया
[Gout]

जिन सब रोगों में लोग प्रायः अत्यधिक कष्ट पाते हैं उनमें गठिया प्रमुख है।

साधारणतः रात के अन्त में सुबह होने के समय इस रोग का आक्रमण होता है। बाद में अंगूठे के दर्द से रोगी की नींद टूट जाती

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

है। प्राय: ही दाहिने पाँव की उँगली में पहले दर्द होता है। कभी कभी एँड़ी, पैर की ठेहुनी अथवा पाँव के गद्दे में भी दर्द होता है। दर्द क्रमश: बढ़ने लगता है। ग्रन्थियाँ भी तेजी से फूली हुई, गर्म और लाल हो उठती हैं। ये सब स्थान उस समय छूने से भी दर्द होता है। रोगी के शरीर का ताप भी बढ़ जाया करता है। प्राय: ही जाड़ा देकर ज्वर आरम्भ होता है। किंतु ज्वर १०२° के ऊपर प्राय: जाता नहीं। इसके बाद दिन के समय दर्द का भाव प्राय: कम हो जाता है, किंतु साँझ के बाद फिर ज्वर और दर्द आदि रोग-लक्षण प्रबल भाव से लौट आते हैं। पाँच-छ: दिनों तक साधारणत: इसी प्रकार रहता है। प्रबल अवस्था में सफेद जीभ, तेज प्यास, लाल और गंदला पेशाब, कोष्ठबद्धता, सिरदर्द, स्नायविक उत्तेजना, चिड़चिड़ापन, अधैर्य और अस्थिरता आदि लक्षण प्रकट होते हैं। रोग घटने के समय इन सब लक्षणों के साथ पैर की फूलन और दर्द घट जाते हैं। किंतु यह रोग दबी हुई अवस्था में रहता है और बीच बीच में आत्मप्रकाश करता है। जिन सब उँगलियों में पहली बार दर्द होता है, पहले पहल उसी पर दुबारा आक्रमण होता है। किंतु क्रमश: ही हाथ और पाँव की नई नई संधियाँ आक्रान्त होती हैं और अन्त में प्राय: कोई भी छोटी ग्रन्थि बची नहीं रहती। इस अवस्था में ये सन्धियाँ प्राय: ही स्थायी रूप से फुली हुई और कड़ी हो जाती हैं तथा प्राय: अकर्मण्य हो जाती हैं। यह रोग दीर्घ दिन तक चलने पर साधारणत: हार्ट, धमनी, लीवर, मूत्रग्रन्थि आदि यंत्र खराब हो पड़ते हैं एवं बहुत समय इनसे मूत्र-पथरी रोग उत्पन्न हो जाता है।

रक्त में यूरिक एसिड की वृद्धि और बाद में उसीके विभिन्न सन्धियों में संचित होने के फल से यह रोग उत्पन्न होता है। हमारे शरीर में सदा ही यूरिक एसिड उत्पन्न होता रहता है। साधारणत: प्रोटीन जातीय पदार्थ से यह उत्पन्न होता है। शरीर की पेशी विनष्ट होने के फलस्वरूप भी सदा ही हमारे शरीर में थोड़ा यूरिक एसिड उत्पन्न हो जाता है। किंतु शरीर की विकारयुक्त अवस्था के कारण जब

Adv: Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

वह शरीर के भीतर यथोचित रूप से दग्ध (oxidised) नहीं होता तथा वह शरीर से बाहर नहीं निकल पाता तभी केवल यह रोग होता है। इसलिये शरीर को विकार-रहित करने के साथ साथ शरीर के भीतर दहन क्रिया की वृद्धि करना ही इसकी चिकित्सा है।

शरीर को विकार-रहित करने के लिये पहले ही पेड़ू साफ कर लेना आवश्यक है और नीबू के रस के साथ काफी पानी पीना चाहिये। इसके बाद देह-संचित यूरिक एसिड दग्ध करने का प्रधान उपाय ही है तापस्नान ग्रहण। इसके लिये रोगी को वाष्पस्नान और गीली चादर की पसीना लानेवाली लपेट बार बार प्रयोग करनी चाहिये। तापस्नान के बाद सारा शरीर गीली तौलिया द्वारा पोंछ देना उचित है। इसके बाद रोगी के आक्रान्त अङ्ग की ओर ध्यान देना आवश्यक है। सन्धिवात (arthritis) में जिस प्रकार सन्धि के ऊपर गर्म-ठंडा देकर कभी घर्षण या कभी ढकी हुई लपेट प्रयोग करनी पड़ती है, गठिया में भी ठीक इसी प्रकार से ही छोटी-छोटी संधियों के ऊपर गर्म-ठंडा आदि प्रयोग किया जाता है। इसीसे थोड़े ही समय में दर्द और फूलन आदि कम हो जाती है। इसके लिये सन्धिवात द्रष्टव्य है।

इन सब अवस्थाओं में गर्म पानी में तौलिया डुबाकर और उसे निचोड़कर उसके द्वारा सेंक देना चाहिये। गर्म तौलिया को अंग के ऊपर रखकर उसे गर्म कपड़े द्वारा अच्छी तरह ढक रखना आवश्यक है। ऐसा होने से इस स्थान में स्टीम बाथ देने जैसा काम होता है।

दर्द रहने तक आक्रान्त अंग को विश्राम देना उचित है और थोड़ा ऊँचे पर रखना कर्तव्य है। यदि ज्वर के साथ तेज दर्द उपस्थित हो तब बिछावन में रहकर विश्राम करना उचित है।

किंतु दर्द घट जाते ही निश्चिन्त होना उचित नहीं। कारण यह रोग बार बार लौट आता है। इसलिये दो बार के आक्रमण के भीतर जो समय पाया जाता है, वही चिकित्सा का सर्वश्रेष्ठ समय है

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

(W. S. C. Copeman, M.D., F.R.C.P., and R.M. Mason, M.D., M.R.C.P.—Rheumatism, p. 112, London, 1954)। इस समय बार बार वाष्पस्नान और गीली चादर की लपेट आदि ग्रहण करके शरीर को विकार-रहित कर लेना उचित है। शरीर जितना विकार-रहित होगा, रोग का प्रकोप भी उतना ही कम हो जायेगा।

रोग का प्रकोप कम होते ही व्यायाम और आसन आरम्भ करना आवश्यक है। हाथ-पाँव के दर्द की ओर भी सदा ध्यान रखना चाहिये। कभी भी दर्द लौट आते ही स्थानीय चिकित्सा कम से कम सात दिन के लिये अथवा दर्द कम हो जाने के बाद भी और दो-तीन दिन करना उचित है।

रोग की प्रबल अवस्था में कभी भी रोगी को ठंडे पानी से स्नान नहीं करना चाहिये। किंतु रोग-लक्षण गायब होने के साथ साथ ठंडे पानी का अभ्यस्त होना उचित है। ठंडे पानी से शरीर की रोग-प्रतिरोध क्षमता और रक्त की क्षार सम्पदा बढ़ती है।

ज्वर और दर्द रहने पर आक्रान्त अंग को परिपूर्ण रूप से विश्राम देना चाहिये। किंतु रोग आरोग्य होने के बाद क्रमशः बढ़ानेवाला व्यायाम ग्रहण करना नितान्त आवश्यक है। व्यायाम के फलस्वरूप शरीर की दहन क्रिया बढ़ जाती है और यूरिक एसिड आदि विष दग्ध होकर शरीर से बाहर निकल जाते हैं। खुली हवा में भ्रमण और निवास भी रोगी के लिये विशेष रूप से आवश्यक है।

इस रोग में रक्त के भीतर और शरीर की सन्धियों में जो यूरिक एसिड संचित होता है वह प्रधानतः खाद्य से उत्पन्न होता है (A. Barbara Callow, M.A., M.Sc.—Food and Health, p. 139, Oxford, 1946)। इसलिये जिन सब खाद्यों से यूरिक एसिड उत्पन्न होता है, उनका सम्पूर्ण रूप से वर्जन करना उचित है। एक जाति के प्रोटीन में पिउरिन (purin bodies) नामक एक

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्रकार का पदार्थ रहता है। उन सब के शरीर में दग्ध होने के फलस्वरूप यूरिक एसिड उत्पन्न होता है। प्राणियों का क्लोमयंत्र (pancreas), यकृत, मसूर की दाल, सूअर का मांस, गो-मांस, हंस का मांस, मुर्गी का मांस, प्राणियों का भेजा, भेंड़ का मांस, पालक साग, मटर की फली और सेम आदि में क्रमशः कम मात्रा में प्यूरिन है। अतः जिन्हें सन्धि वात है, उन्हें ये सब चीजें विशेष रूप से छोड़ देना उचित है। The diet should be a lacto-vegetarian type—रोगी का खाद्य अधिकांश दूधयुक्त और निरामिष होना उचित है (Margery Abrahams, M.A., M.Sc., and Elsie M. Widdowson, M.Sc., Ph.D.—Modern Dietary Treatment, p. 92, London, 1951) और उसका प्रधान पथ्य फल, फलों का रस, सलाद, विभिन्न साग-सब्जियाँ, मधु और दूध होना आवश्यक है।

रोग के तरुण आक्रमण के समय रोगी के पथ्य में सब खाद्य-उपादान हैं या नहीं यह देखने की जरूरत नहीं होती (Hobart A. Reimann, M.D.—Treatment in General Medicine, Vol. 2, p. 256, Philadelphia, 1948)। ज्वर रहने पर उस समय ज्वर का पथ्य देना उचित है और नीबू के रस के साथ पानी, फलों का रस तथा तरकारी के सूप के ऊपर रोगी को रखना कर्तव्य है।

रोगी का वजन अधिक रहने पर यथेष्ट फलमूल खाकर वजन घटा लेना उचित है और साधारण वजन की अपेक्षा कम वजन बनाये रखना आवश्यक है।

रोगी को सदा हल्का और सहजपाच्य खाद्य खाकर रहना उचित है और कम करके भोजन करना कर्तव्य है। कारण जो सदा दुष्पाच्य पदार्थ ग्रहण करते हैं और अत्यधिक भोजन करते हैं उन्हें ही साधारणतः यह रोग होता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

रोगी को कम करके प्रोटीन और चर्बी जातीय खाद्य ग्रहण करना उचित है और शर्करा खाद्य अधिक करके ग्रहण करना कर्तव्य है। उसके पूरे खाद्य का सैकड़े ६० भाग ही होना उचित है शर्करा खाद्य (Michael G. Wohl, M.D.—Diatotherapy, p. 740, London, 1946)। किंतु वह प्रधानतः मीठे फल और आलू आदि क्षारधर्मी खाद्य से ग्रहण करना उचित है। नीबू के रस के साथ रोगी को प्रचुर पानी पीना कर्तव्य है। A large intake of fluids is usually considered to be of great importance— इस रोग में प्रचुर पानी पीना अत्यन्त आवश्यक ऐसा ग्रहीत हुआ है (Theodore Franklin Beck, M.D., F.A.C.P.— Arthritis and Related Conditions, p. 242, Philadelphia, 1948)।

रोगी के लिये चाय, काफी, कोको और मांस का जूस आदि खाद्य का सब तरह से वर्जन करना चाहिये। कारण इन सब खाद्यों में अत्यधिक परिमाण में प्यूरिन रहता है (V.H. Mottram, M.A., M.D., and George Graham, M.A., M.D., F.R.C.P. —Hutchinson's Food and the Principles of Dietetics, p. 537, London, 1956)

जिस कटोरे में मांस रहेगा, इस रोगी के लिये उसी कटोरे में 'विष' लिख देना चाहिये (H. S. Carter—Nutrition and Clinical Dietetics, p, 528)।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

सप्तम अध्याय

स्नायु के रोग

साइटिका

[Sciatica]

[१]

शरीर के भीतर सबकी अपेक्षा दीर्घ स्नायु ही है साइटिक नर्व। यह रीढ़ के निम्न अंश से निकलकर घुटने के पीछे की ओर से पैर की ओर गया है। इसका जो दर्द है उसीका नाम साइटिका है। यह दर्द कमर से उत्पन्न होकर कभी कभी नीचे की ओर पैर के अंगूठे तक फैला रहता है। किंतु साधारणतः इसी स्नायु के अंशविशेष मात्र में दर्द होता है। यह सदा पीछे की ओर सीमित रहता है। साइटिका का दर्द अत्यन्त तीव्र होता है और इसकी दन्तशूल के दर्द से तुलना की जाती है।

यह रोग साधारणतः कई सप्ताह से लेकर कई महीने वर्तमान रहता है और कठिन अवस्था में कई वर्षों तक चलता है। ठंड लगना, सीलन-भरे स्थान में निवास, पेशीवात और कोष्ठबद्धता आदि कारण से यह रोग होता है। इन सब कारणों से जब रक्तस्रोत विषाक्त हो जाता है और इस विष के द्वारा साइटिक नर्व आक्रान्त होता है तथा उसमें सूजन उपस्थित होती है तब यह रोग होता है। इसलिये बहुत क्षेत्र में साइटिका को एक श्रेणी के स्नायु की सूजन (**neuritis**) कहा जाता है।

कभी कभी रीढ़ के निम्न अंश में चोट लगने के फलस्वरूप साइटिक नर्व के ऊपर दबाव पड़ने से यह रोग होता है। यह कहा जाता है कि दीर्घ समय तक खड़े रहना या रास्ता चलना, हठात् झुक जाना,

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

अधिक बोझ उठाना और हठात् रीढ़ का संचालन आदि कारण से यह अवस्था उत्पन्न हो जाती है।

किंतु तनिक खड़े रहने से ही या तनिक चोट लगने से ही यह रोग होता हो, ऐसा नहीं। बहुत लोग खड़े खड़े जीवन भर काम करते हैं। हठात् झुके नहीं या थोड़ा थोड़ा बोझ न उठायें, ऐसे आदमी नहीं हैं। किंतु इसीलिये साइटिका हो जाय, ऐसा नहीं। जिनका शरीर पहले से विष से भरपूर रहता है और इस विष के द्वारा जब रीढ़ और साइटिक नर्व दुर्वल हो पड़ते हैं, तभी इस प्रकार यह रोग उपस्थित होना सम्भव होता है। इसलिये रोग के मूल कारण को दूर न करके अस्त्र-चिकित्सा आदि द्वारा स्थायी रूप से इस रोग से मुक्त होना अत्यन्त कठिन बात है। वस्तुतः साइटिका साइटिक नर्व का रोग होने पर भी वह सम्पूर्ण शरीर का ही रोग है। यह प्रकट होता है केवल साइटिक नर्व में।

इसलिये स्थानीय चिकित्सा के साथ सारे शरीर की चिकित्सा करना ही इससे मुक्त होने का सर्वश्रेष्ठ उपाय है।

[२]

अन्यान्य रोगों की भाँति इस रोग में भी पहले ही पेट में गर्म-ठंडा, डूस और पेट की लपेट ग्रहण करके तथा यथेष्ट फल खाकर कोष्ठ साफ कर लेना कर्तव्य है तथा साफ रखना आवश्यक है। जिससे दिन में कम से कम दो बार कोष्ठ साफ हो इसकी व्यवस्था करना उचित है। यदि साइटिक नर्व में सूजन रहे तब सदा ही नीम के पानी का डूस लेना चाहिये। रोग की प्रबल अवस्था में दिन में दो बार डूस लिया जा सकता है। साइटिका रोग में बहुत समय केवल कोष्ठ साफ रखने से ही आश्चर्यजनक लाभ होता है।

इस रोग में वाष्पस्नान अत्यन्त फलप्रद है। प्रतिदिन स्नान के पहले सात मिनटों के लिये वाष्पस्नान ग्रहण करना आवश्यक है तथा प्रति सप्ताह दो दिन दस से पन्द्रह मिनटों के लिये लेना उचित है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

बहुत अवस्था में एक बार वाष्पस्नान ग्रहण करने से ही दर्द उतर जाता है।

रोगी को सप्ताह में कम से कम दो दिन गर्म पानी में हिप बाथ लेकर उसके बाद स्नान करना चाहिये। इस रोग में ठंडा के प्रयोग से दर्द बढ़ता है। इसलिये प्रारम्भिक अवस्था में स्नान का पानी समशीतोष्ण होना उचित है। इसके बाद दर्द कम हो जाने के साथ साथ ठंडे पानी से स्नान आरम्भ करना चाहिये। दर्द रहने पर कभी भी रोगी को ठंडे पानी में हिप बाथ लेना उचित नहीं।

रोग की तरुण अवस्था में दीर्घ तापयुक्त गर्म-ठंडा (revulsive compress) अत्यन्त फलप्रद है। रोगी के दर्द के स्थान में पन्द्रह से बीस मिनटों के लिये गर्म सेंक देकर उसके तुरन्त बाद ही खूब ठंडे पानी में भिगोई हुई एक तौलिया इस स्थान में ३० से ६० सेकेण्डों के लिये रखना उचित है तथा उसके बाद दर्द के स्थान के ऊपर एक से दो घंटे के लिये ढकी हुई लपेट प्रयोग करना कर्तव्य है। रोग की प्रबल अवस्था में यह दिन में दो बार प्रयोग की जा सकती है। इस रोग में जो लपेट देनी होती है, वह पैर की लपेट के समान जाँघ के चारों ओर व्यवहार करना उचित है तथा बार बार प्रयोग करना कर्तव्य है। बस्तिदेश (pelvic region) की लपेट भी इसमें अत्यन्त फलप्रद है। यह प्रयोग करने के पहले अवश्य ही रीढ़ के निम्न अंश पर गर्म-ठंडा लेना उचित है। रीढ़ में चोट लगने के फलस्वरूप जो साइटिका उत्पन्न होता है उसमें यह अत्यन्त फलप्रद है। नितम्ब (hips) में दर्द रहने पर भी सदा ही इस लपेट के ऊपर जोर रखना आवश्यक है। यह लपेट प्रयोग करके उसके ऊपर एक गर्म थैली रखनी चाहिये।

पुराने रोग में दिन में एक बार कुछ समय के लिये मालिश ग्रहण करने से रोगी को बहुत लाभ होता है। किंतु तरुण अवस्था में मालिश से दर्द बढ़ता ही है।

रोग की प्रबल अवस्था में बिछावन में इस प्रकार विश्राम ग्रहण करना

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

चाहिये जिसमें रीढ़ में किसी प्रकार से चोट न लगे। जब कम से कम सात दिन कोई दर्द नहीं रहे तब वह उठकर बैठ सकता है और खूब धीरे धीरे चल-फिर सकता है। किंतु शीघ्र ऐसा कुछ करना उचित नहीं जिसमें दर्द लौट आ सके तथा कभी दर्द आरम्भ होते ही बिछावन ग्रहण करना चाहिये।

साइटिका रोग में स्थानीय चिकित्सा के साथ साथ रोगी के स्वास्थ्य को अच्छा कर लेना नितान्त आवश्यक है। एक प्रसिद्ध डाक्टर ने कहा है यदि रोगी का साधारण स्वास्थ्य उन्नति प्राप्त न करे तब यह रोग प्राय: ही लौट आता है।

[३]

इसके लिये पथ्य के प्रति ध्यान देना विशेष रूप से आवश्यक है। रोगी का पथ्य सहजपाच्य, अनुत्तेजक और क्षारधर्मी होना उचित है। रोगी के शरीर में क्षार-सञ्चय गठन कर लेने की ओर विशेष रूप से ध्यान देना आवश्यक है। कारण बहुत अवस्था में क्षार-सञ्चय घट जाने के फलस्वरूप यह रोग उत्पन्न हो जाता है।

इस रोग का प्रधान पथ्य ही होना उचित है फल, सलाद, उबाली हुई तरकारी, तरकारी का सूप, विशुद्ध दूध, माड़ समेत कम छाँटे हुए चावल का भात, चोकर समेत आटा और चीनी के बदले तरल गुड़ या मधु।

चिकित्सा के पहले कई एक दिन उपवास ग्रहण कर सके तो रोगी को यथेष्ट लाभ होता है। सब पुराने रोग में ही अल्पाधिक रूप में उपवास ग्रहण करना चाहिये। इससे भीतर से शरीर साफ हो जाता है। अन्यान्य पथ्य-विधि मानसिक दुर्बलता के अनुरूप है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Arya Samaj Foundation Chandigarh

मिर्गी रोग

[Epilepsy]

[१]

मस्तिष्क के किसी किसी यंत्र के हठात् बिगड़ जाने के फलस्वरूप स्नायु के ऊपर मस्तिष्क का प्रभुत्व बहुत कुछ अंश में नष्ट हो जाता है। इससे भ्रान्ति, ऐंठन, मानसिक विशृंखलता और मूर्छा आदि प्रकट होती है। शरीर की इस विकारयुक्त अवस्था का नाम है मिर्गी रोग।

खैंचन (convulsion) युक्त मूर्छा ही इस रोग का प्रधान लक्षण है। आक्रमण के पहले रोगी प्रायः समझ जाता है कि रोग आ रहा है। तब जल्दी जल्दी वह लेट जाता है या किसी निरापद स्थान में जाता है। किंतु बहुत बार रोगी पहले कुछ समझ नहीं पाता और खड़े रहने पर गिर जाता है। रोगी की संज्ञा तब सम्पूर्ण रूप से लुप्त हो जाती है और मांसपेशियाँ कड़ी हो जाती हैं। पहले रोगी के मुँह का रंग फीका पड़ जाता है, उसके बाद लाल और भयावना हो उठता है। ऐसी अवस्था प्रायः आधे मिनट तक रहने के बाद रोगी के अंग-प्रत्यंग में प्रबल रूप से ऐंठन प्रकट होती है। रोगी पागलों की भाँति आंखें घुमाता है तथा दाँत पर दाँत रगड़ता रहता है। ऐसी अवस्था में बहुतों की जीभ कट जाती है। रोगी की सांस आने जाने में आवाज होती है और मुँह से फेन निकलने लगता है। समय समय पर रोगी के अनजाने ही मल-मूत्र का त्याग हो जाता है। यह अवस्था कई एक सेकेण्डों से कई एक मिनटों तक रहती है। इसके बाद रोगी धीरे धीरे शान्त होता है तथा उसकी संज्ञा लौट आती है। तब रोगी सो जाता है।

इस प्रकार का प्रकोप किसी को कई वर्षों के बाद एक बार या किसी को दिन में बहुत बार हो जाता है।

विभिन्न कारणों से यह रोग उत्पन्न होता है। अत्यधिक तम्बाकू का सेवन, मद्यपान, इन्द्रिय-सेवा, सुदीर्घ उत्कण्ठा, अत्यधिक मानसिक

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

श्रम और मस्तिष्क पर आघात, मस्तिष्क का ट्यूमर और मस्तिष्क के यांत्रिक रोग (organic disease) आदि को इसका कारण कहा जाता है। किंतु बहुत अवस्था में साधारण स्वास्थ्यहीनता, सिफलिस, किडनी के रोग तथा विभिन्न विषाक्त औषधि ग्रहण के फलस्वरूप यह रोग होता है।

मिर्गी रोग के आरोग्य के लिये ब्रोमाइड आदि विभिन्न थकान उत्पन्न करनेवाली औषधियाँ लगातार प्रयोग की जाती हैं। इससे रोग आरोग्य होता है ऐसा नहीं, बल्कि इन सब औषधियों के व्यवहार के फलस्वरूप मस्तिष्क का स्नायविक केन्द्र क्रमशः चेतनाशून्य और पक्षाघात-ग्रस्त हो जाता है तथा स्नायु-यंत्र ही धीरे धीरे रोगग्रस्त हो पड़ते हैं। इस रोग की अन्तिम अवस्था में साधारणतः स्मरणशक्ति का लोप, मानसिक अवनति, पक्षाघात तथा जड़ता आदि लक्षण प्रगट होते हैं। इन सब लक्षणों को रोग की साधारणतः परिणति कहा जाता है। किंतु वस्तुतः ये सब लक्षण औषधियों की विषक्रिया के फलस्वरूप ही उत्पन्न होते हैं (Milton Powell—The Safe Way to Sound Nerves, pp. 28-9)।

अतः इन सब रोगों में औषधि के पीछे दौड़ना एकदम व्यर्थ है। यदि शरीर सफाई करनेवाले यंत्रों को सदा कार्यक्षम रक्खा जाय तथा स्वास्थ्यकर खाद्य ग्रहण करके रक्तस्रोत को साफ रखने की व्यवस्था की जाय, तब अधिकांश अवस्था में जो रोग का मूल कारण है उसीका संशोधन हो जाता है और जिन सब अवस्थाओं में मस्तिष्क के किसी रोग से यह होता है, उसमें भी रोग का प्राबल्य और आक्रमण की संख्या घट जाती है (Harry Benjamin—Everybody's Guide to Nature-cure, p. 184, London, 1952)।

[२]

इसलिये मूर्छा की चिकित्सा के साथ ही भीतरी शरीर की धुलाई

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

इसकी प्रधान चिकित्सा है।

यदि ऐसा लगे कि रोग का आक्रमण हो सकता है तब तनिक भी देर न करके रोगी के सिर पर खूब ठंडे पानी की पट्टी देकर सुदीर्घ समय के लिये समशीतोष्ण पैक प्रयोग करना चाहिये। इसके बाद रोगी को बिछावन में परिपूर्ण विश्राम देकर बार बार प्रचुर पानी पिलाना आवश्यक है। यदि आक्रमण के पहले हाथ या पैर में यंत्रणा जैसी (aura) हो, तब हाथ या पैर तुरन्त ठंडे पानी में डुबाने से बहुत बार आक्रमण रुक जाता है। रोगी का कोष्ठ सदा के लिये इस प्रकार साफ रखना आवश्यक है जिसमें कभी भी डूस देने की आवश्यकता न हो। किंतु आवश्यकता होने पर अवश्य ही कुछ भी देर किये बिना डूस देना उचित है।

आक्रमण के समय रोगी को अधलेटी अवस्था में रखना चाहिये। इस समय ध्यान रखना पड़ता है, रोगी जिसमें किसी प्रकार गुरुतर आघात न पाये। इस अवस्था में उसके दाँतों के बीच में रूई का पैड, बड़ा कार्क या एक टुकड़ा पतला रबर देने से जीभ क्षतविक्षत नहीं हो सकती।

रोगी के शरीर के कपड़े भी ढीले कर देने चाहिये। रोगी को यदि उल्टी हो, तब उसे एक करवट करके उल्टी हुई वस्तुएँ बाहर निकाल देना आवश्यक है। यदि मूर्छा के समय रोगी का सिर ठण्डा रहे तब उसे तुरंत एक चौकी पर लिटाकर चौकी के पायताने की ओर धीरे-धीरे यथासम्भव ऊँचा उठाना आवश्यक है और रोगी का गला तथा गर्दन मर्दन करना कर्तव्य है। इस समय रोगी जिसमें जमीन पर न गिर पड़े इसकी ओर ध्यान देने की विशेष रूप से जरूरत है।

और रोगी का सिर यदि गर्म रहे तब मुँह और गर्दन धुलाकर तथा सिर के चारों ओर गीली तौलिया लपेटकर तख्त के सिरहाने को यथासम्भव ऊँचा करके रखना पड़ता है। रोगी के पैर में भी पैक देने

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

से चल सकता है। इस समय रोगी की रीढ़ को दोनों ओर मर्दन करने से अच्छा होता है।

आक्रमण चले जाने के बाद गीले गमछे द्वारा उसका सारा शरीर अच्छी तरह से पोंछकर उसे सोने देना आवश्यक है।

आक्रमण के बाद पुनः आक्रमण आने के बीच में जो समय मिले, आरोग्य के लिये चिकित्सा करने का वही सर्वश्रेष्ठ समय है। इस समय शरीर गठन कर लेने और शरीर को विषमुक्त करने के लिये सब प्रकार की चेष्टा करनी चाहिये। यह देखा गया है, शरीर कीं सफाई करनेवाले यंत्रों का काम यदि भलीभाँति चले और रक्तस्रोत साफ रहे, तब केवल उसीसे बहुत अवस्था में रोगी आरोग्य प्राप्त करता है। एक डाक्टर (Dr. E. Doumer) ने केवल रोगियों का कोष्ठ साफ रखकर तथा उन्हें केवल दूध और कच्ची सागसब्जी (salad) पर रखकर २१ रोगियों में १९ रोगियों को नीरोग किया है (J. Ellis Barker—Chronic Constipation, p. 163)।

रोगी का कोष्ठ साफ रखने के लिये उसे नियमित रूप से हिप बाथ, पेट को लपेट तथा पेड़ू में मिट्टी की लपेट आदि प्रयोग करनी चाहिये।

गीली चादर का पैक रोगी के लिये अत्यन्त फलप्रद है। प्रति सप्ताह यह रोगी को कम से कम दो बार प्रयोग करना उचित है। पहले पहल यह मात्र २० मिनटों के लिये प्रयोग करना कर्तव्य है और उसके बाद धीरे धीरे पैक का समय बढ़ाना आवश्यक है। इसके सहन होने के साथ साथ लपेट की संख्या बढ़ाकर अन्त में एक दिन बीच देकर एक दिन प्रयोग किया जा सकता है तथा एक घंटे के लिये पैक के भीतर रक्खा जाता है। किंतु स्नायविक रोगियों का पैक सदा ही समशीतोष्ण होना उचित है। यह ध्यान रखना आवश्यक है कि, पैक के भीतर जिसमें एक समशीतोष्ण अवस्था बनी रहे। इसलिये समशीतोष्ण पैक (the neutral pack) में मात्र दो, एवं कुछ देर बाद केवल एक कम्बल व्यवहार करना चाहिये। रोगी का सिर सदा ही ठण्डा रखना आवश्यक

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

है तथा सिर का गमछा आवश्यकतानुसार बार बार बदल देना उचित है।

रोगी की पूरी रीढ़ के ऊपर प्रतिदिन दो से बारह मिनटों के लिये गर्म-ठंडा देना उचित है। पहले ठण्डा और उसके बाद गर्म देना कर्तव्य है तथा एक साथ तीन-चार बार करना उचित है। पहले पहल गर्म केवल दस सेकेण्ड के लिये देना चाहिये। इसके बाद सहन होने के साथ साथ क्रमशः समय बढ़ाकर प्रतिवार दो मिनट तक गर्म दिया जा सकता है। रोगी की रीढ़ में गर्म-ठंडा देने के पहले उसका सिर सदा ही धो लेना उचित है तथा ठंडा-गर्म देने के बाद स्नान करा लेना कर्तव्य है।

रोगी को प्रतिदिन नियमित रूप से स्नान कराना आवश्यक है। दिन में एक बार उसे अवश्य ही हिप बाथ ग्रहण करना उचित है। सोने के पहले उसका सिर खूब अच्छी तरह धोकर सारा शरीर गीले गमछे द्वारा पोंछ देना चाहिये।

रोगी को प्रतिदिन एक बार आधे घंटे के लिये घर्षण स्नान प्रयोग करने से रोगी को नवजीवन प्राप्त होता है। शरीर गर्म न रहने पर उसे कुछ समय के लिये धूप में रखकर उसके बाद शरीर गर्म रहते रहते घर्षण स्नान प्रयोग किया जा सकता है। शरीर गर्म रहने पर धूपस्नान देने की आवश्यकता नहीं होती। धूपस्नान ग्रहण करने के पहले सिर धो लेना उचित है और सिर को छाया में रखना कर्तव्य है।

रोगी को यथासम्भव खुले और ठंडे स्थान में निवास करना उचित है तथा रात्रि को बरामदे में सोना कर्तव्य है।

यदि रोगी के शरीर में कहीं भी कोई विष का उत्स रहे तब उसे द्रुत संशोधन कर लेना उचित है। कारण जिन्हें यह रोग है, शरीर के भीतर एक अस्वास्थ्यकर अवस्था (unhealthy physical condition) उत्पन्न होने से ही रोग का प्रायः दुबारा आक्रमण होता है। इसलिये सूजी हुई टॉन्सिल, पायरिया और कोष्ठबद्धता आदि के ऊपर सदा ध्यान रखना आवश्यक है (A. F. Fredgold, M.D., F.R C.P., and F. R. Fredgold, M.A., M.D.—

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

Manual of Psychological Medicine, p. 110, London, 1955)।

रोगी के लिये क्रमशः बढ़ानेवाला व्यायाम विशेष रूप से आवश्यक है। क्रमशः बढ़ाकर अन्त में थक जाने के पहले तक रोगी को प्रतिदिन खुले स्थान में व्यायाम करना चाहिये। सक्षम होने पर रोगी क्रमशः समय बढ़ाकर प्रतिदिन चार से छः मील टहल सकता है। खुली हवा में सब प्रकार के खेल भी उसके लिये हितकर हैं। आसन ग्रहण करने के लिये भी उसे सदा उत्साह देना चाहिये। जिन सब आसनों से उसे रीढ़, पेट और मस्तिष्क के भीतर रक्त-संचालन बढ़े तथा जिनसे पेट और रीढ़ का व्यायाम हो उनपर सदा जोर देना चाहिये। इसके लिये उत्थान-पादासन, शलभासन, भुजंगासन, धनुरासन, हलासन, पश्चिमोत्तानासन, योगमुद्रा, उड्डीयान, सर्वाङ्गासन और शीर्षासन आदि का धीरे धीरे अभ्यास करना चाहिये। रोगी के सम्बन्ध में यह नीति ग्रहण करना उचित है कि उसे सुरक्षित रखने के लिये जितनी आवश्यकता है उससे अधिक कुछ करना उचित नहीं।

यदि रोगी कोई जीविका ग्रहण करे, तब वह जिसमें कभी पानी के पास या किसी कारखाने में न हो तथा उसकी जीविका ऐसी होनी उचित नहीं, जिससे उसका मानसिक श्रम (strain) अधिक रहे। उसे कभी भी साइकिल या मोटर चलाने अथवा घोड़े पर चढ़ने देना उचित नहीं।

जिसमें कभी भी उत्तेजित होना न पड़े, इसकी ओर रोगी को स्वयं भी सदा ध्यान रखना आवश्यक है। प्रतिदिन रोगी को आत्म-सुझाव (auto-suggestion) ग्रहण करना उचित है। रोगी के मन का बल जिसमें अटूट रहे इसकी ओर सदा ध्यान देना आवश्यक है। मन का पर्याप्त बल रहने पर आरोग्य शीघ्रता से प्राप्त होता है। यह रोग होने से ही जो जीवन व्यर्थ हो, ऐसा नहीं। जूलियस सीजर और नेपोलियन ने यही प्रमाणित किया है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Arya Samaj Foundation, Chandigarh

[३]

चिकित्सा आरम्भ करने के बाद प्रथम दो सप्ताह उसको केवल फल और फलों का रस खाकर रहना आवश्यक है। इसके बाद कई एक महीने केवल फलों का रस, फल, दूध, सलाद और हरी शाक-सब्जियाँ तथा उबाली हुई तरकारियाँ खाना चाहिये।

रोगी के खाद्य में जिसमें यथेष्ट रूप में विटामिन बी (Vitamin B-Complex) रहे इसकी व्यवस्था करना कर्तव्य है।

रोगी को प्रतिदिन नियमित समय पर हल्का पथ्य ग्रहण करना आवश्यक है। कभी भी उसे पेट भरकर खाना उचित नहीं और नियत समय के अतिरिक्त कभी भी दो बार भोजन के भीतर खाना नहीं चाहिये (F. M. R. Walshe, M.D., D.Sc.—Diseases of the Nervous System, p. 133, London, 1952)। पाकस्थली का खाद्य सम्पूर्ण रूप से हजम होते ही केवल रोगी को बिछावन पर जाना उचित है। इस रोग में पानी पीने के साथ सुदीर्घ दिनों का सुनियन्त्रित उपवास विशेष फलप्रद है।

किसी किसी रोगी को किसी विशेष आमिष जातीय खाद्य से रोग का आक्रमण आता है। किसी को अंडा खाने से, किसी को दूध पीने से और किसी को दाल खाने से रोग का आक्रमण होता है। इस जाति का खाद्य सदा ही उसके पथ्य से छाँट देना चाहिये। मांस और मांस का जूस कभी भी उसे देना उचित नहीं। चाय एवं कॉफी भी छाँट देना उचित है। किंतु absolute abstention of salt is the main thing—सम्पूर्ण रूप से नमक से परहेज करना ही मुख्य बात है। इस रोग का दमन करने का प्रधान उपाय ही हैं शरीर को विकार-रहित करने के साथ मछली-मांस वर्जित विशुद्ध पथ्य की व्यवस्था करना। इस प्रकार के पथ्य ग्रहण से रोग का आक्रमण क्रमशः कम हो आता है और अन्त में लुप्त हो जाता है (J. H. Kellogg, M.D.

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

—The New Dietetics, p. 854)। अन्यान्य पथ्य-विधि मानसिक दुर्बलता के अनुरूप है ।

लकवा

[Paralysis]

[१]

हमारे शरीर का प्रत्येक यंत्र और प्रत्येक अंग ही स्नायु द्वारा परिचालित होता है। जब किसी कारण से निर्दिष्ट अंग में स्नायविक प्रवाह नहीं पहुँच पाता, तभी वह अङ्ग अचल हो जाता है। इस प्रकार से शरीर के विभिन्न अंगों में लकवा उपस्थित हो जाता है। कभी सारे शरीर में ही लकवा मार जाता है (अंग्रेजी में इसे कहते हैं diplegia)। कभी शरीर का एक भाग (hemiplegia) या कभी कमर के नीचे का हिस्सा (paraplegia) या कभी मुँह-हाथ इत्यादि विशेष अंग (monoplegia) अचल हो जाता है। विभिन्न लोगों के शरीर में लकवा से आक्रान्त अंग की विभिन्न प्रकार की अवस्था होती है। आक्रान्त अंग की कभी कभी चेतना लुप्त हो जाती है, कभी कभी यह अंग धीरे धीरे सूख (wasting paralysis) जाता है, फिर किसी किसी का आक्रान्त अंग सदा काँपता (shaking paralysis) रहता है।

साधारणत: मस्तिष्क, रीढ़ और विशेष किसी स्नायु के रोग से ही विभिन्न प्रकार का लकवा उत्पन्न होता है। जब किसी रोग के द्वारा ये सब स्नायुकेन्द्र या स्नायु बिगड़ जाते हैं, तब उनके अधीनस्थ अंग में लकवा मार जाता है। इसलिये लकवा कोई रोग नहीं। मस्तिष्क आदि यंत्र की रोगग्रस्त अवस्था का ही एक लक्षण मात्र है। अत: जिस स्नायुकेन्द्र के रोग से यह उत्पन्न होता है साधारणत: लकवा में उसीकी चिकित्सा होती है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

किंतु प्राकृतिक चिकित्सा की नीति यही है, केवल रुग्ण अंग की चिकित्सा नहीं करके शरीर की चिकित्सा के ऊपर ही अधिक जोर देना उचित है। कारण all diseases are constitutional—सारे रोग ही सर्वदैहिक कारण से उत्पन्न होते हैं। जब सर्वदैहिक कारण, जिसे शरीर की विकारयुक्त अवस्था (toxæmia) कहा जाता है, दूर होती है, तब स्वयं ही प्रकृति शरीर को यथासम्भव मरम्मत कर ले सकती है।

यह स्मरण रखना चाहिये, लकवा अचल अंग का रोग नहीं, स्नायविक केन्द्र का रोग है। इसलिये अचल अंग की चिकित्सा करके कभी यह नीरोग किया नहीं जाता। अपरोक्ष रूप से शरीर और रक्तस्रोत को विशुद्ध करके शरीर के भीतर रोग के आरोग्य के अनुकूल अवस्था की सृष्टि करना तथा परोक्ष रूप से रीढ़ के स्नायुओं को सबल करना ही इसकी सही चिकित्सा है।

[२]

जिस किसी कारण से भी लकवा उत्पन्न हो, सब क्षेत्रों में ही कुछ साधारण नियम पालन करने चाहिये। पहले ही कोष्ठ विशेष रूप से साफ कर लेना उचित है और सदा साफ आवश्यक है। इसके लिये रोगी को प्रतिदिन डूस और पेट की लपेट देना उचित है। नीबू के साथ रोगी को यथेष्ट पानी पीना चाहिये। इससे भीतर से शरीर धुल जाता है। रोगी को प्रतिदिन जिसमें थोड़ा पसीना निकल सके इसकी भी व्यवस्था करना आवश्यक है। इसके लिये प्रतिदिन स्नान के पहले उसे एक घंटे के लिये पैर की लपेट देनी चाहिये। इससे शरीर अधिक गर्म नहीं होता, बल्कि शरीर के रोमकूप खुल जाते हैं। इसके अतिरिक्त मस्तिष्क और रीढ़ की रक्तबद्धता दूर करके इन यंत्रों को स्वस्थ कर देती है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

सब प्रकार के लकवा में ही रोगी की रीढ़ पर १२ से २१ मिनटों के लिये गर्म-ठंडा प्रयोग करना आवश्यक हैं। इससे स्नायु सबल होते हैं और रीढ़ के स्नायुकेन्द्र क्षतिग्रस्त होने पर उसकी मरम्मत हो जाती है। यह प्रयोग करने के बाद रोगी को आधे घंटे के लिये घर्षण स्नान प्रयोग करना आवश्यक है और पीठ से घर्षण स्नान आरम्भ करना कर्तव्य है। शरीर के स्नायुओं को उद्दीप्त कर लेने के लिये इस व्यवस्था के समान और कुछ भी नहीं है। किंतु यदि घर्षण स्नान प्रयोग करना सम्भव न हो, तब रोगी स्नान कर ले सकता है। अथवा अवस्थानुसार उनका सारा शरीर गीले गमछे से पोंछ दिया जा सकता है। सोने के पहले रोगी का सिर अच्छी तरह धोकर उसके सारे शरीर में अवश्य ही तौलिया स्नान प्रयोग करना चाहिये। यदि रोगी की चलने की शक्ति थोड़ी भी रहे तब दिन भर में कम से कम एक बार वह हिप बाथ ले सकता है। रोगी को सप्ताह में दो बार एक घंटे के लिये मध्य शरीर का पैक (trunk pack) प्रयोग करना चाहिये। इसका अभ्यस्त होने पर उसे बाद में गीली चादर का पैक प्रयोग करना उचित है।

रोगी का अवश अंग जिसमें सदा गर्म रहे तथा उसमें यथेष्ट मात्रा में रक्त-संचालन हो इसकी व्यवस्था करना आवश्यक है। इसके लिये दिन में कम से कम एक बार सारे शरीर के साथ उसका अवश अंग भली-भाँति मर्दन करना चाहिये और कभी ठंडा होते ही गर्म कपड़े द्वारा ढक देना उचित है।

रोगी के लिये क्रमशः बढ़ानेवाला व्यायाम विशेष रूप से आवश्यक

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

है। अन्यथा अवश अंग सूख जा सकता है। यथासम्भव दीर्घ समय उसे खुले स्थान में रहने की जरूरत है।

लेटे रहते रहते रोगी को जिसमें शय्याक्षत न हो इसकी ओर सदा ध्यान रखना चाहिये। यदि किसी स्थान में घाव होने की सम्भावना हो तब तुरन्त इस स्थान में प्रतिदिन दो बार गर्म-ठंडा और एक बार मिट्टी की लपेट एक घंटे के लिये प्रयोग करना आवश्यक है।

रोगी का पथ्य साधारणतः स्नायविक रोगी के पथ्य के अनुरूप होना उचित है। इसके लिये मानसिक दुर्बलता का पथ्य द्रष्टव्य है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

अष्टम अध्याय

मानसिक रोग

मानसिक दुर्बलता
[Feeble-mindedness]

[१]

मानसिक दुर्बलता ऐसा एक रोग है जो बाहर से देखकर कुछ समझा नहीं जाता, किंतु भीतर ही भीतर रोगी के कष्ट को सीमा नहीं रहती। रोगी हमेशा मानसिक और शारीरिक कमजोरी से पीड़ित रहता है। उसे ऐसा मालूम होता है कि उसके सारे शरीर और मन का बल चला गया है। उसके चेहरे से आनन्द की झलक गायब हो जाती है। बहुत शीघ्र ही उसे गुस्सा आ जाता है। अधिक क्रोधित होने पर उसका सारा शरीर थर थर कांपता है। उसका दूसरे आदमियों के साथ बहुत जल्द ही झगड़ा हो जाता है। किसी आदमी से थोड़ा भी झगड़ा होने से उसके लिये तीन-चार दिनों तक मन में अफसोस जारी रहता है। रोगी एक अव्यक्त पीड़ा से असीम यन्त्रणा अनुभव करता है। किसी किसी समय सिरकटे बकरे की भाँति वह छटपटाता है। इस अवस्था में स्त्रियाँ साधारणतः रोती हैं। रोगी के मन में बिना किसो कारण के डर बना रहता है और वह हमेशा किसी विपत्ति की आशंका करता है। थोड़ी-सी कोई बिमारी होने पर उसे लगता है, उसे कोई बड़ी बीमारी होगी। प्रत्येक तुच्छ घटना को एक बड़ा काण्ड सोचकर वह अधीर हो उठता है।

वह किसी विषय पर मनस्थिर नहीं कर सकता। एक बार मनस्थिर करने पर भी दूसरे ही क्षण उसका विचार बदल जाता है। वह अच्छे बुरे को समझने की विचार-शक्ति खो बैठता है, प्रायः वह गलत रास्ते पर

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

चलता है और क्रमशः उसकी हालत ऐसी होती है कि वह किसी काम के योग्य नहीं रह जाता।

इस अवस्था में क्रमशः विभिन्न शारीरिक रोग-लक्षण रोगी के शरीर में प्रकट होते हैं। क्रमशः वह कोष्ठबद्धता, अजीर्ण (nervous dyspepsia), पुराना पेचिस (colitis), सरदर्द, अनिद्रा, सिर में चक्कर आना, कर्णनाद, हृत्कम्पन, आत्मसंयम की अक्षमता, स्मरणशक्ति का ह्रास और मानसिक उत्तेजना आदि से आक्रान्त होता है। बहुत अवस्था में उनकी भूख कम हो जाती है और वजन घट जाता है।

स्नायविक रोग से पीड़ित अथवा दुर्बल माता-पिता की सन्तान को ही साधारणतः ये सब रोग होते हैं। किंतु माता-पिता के निकट से ही सन्तान सदा यह रोग पाती हैं, ऐसा नहीं। बचपन से ही जो विभिन्न रोग से भुगतते हैं, तथा उसके फलस्वरूप जिनका रक्तस्रोत अत्यन्त विषाक्त हो जाता है, साधारणतः वे ही इस रोग से भुगतते हैं। रक्त के भीतर जो विष परिभ्रमण करता है उसके द्वारा जब स्नायु आक्रान्त होते हैं तभी स्नायविक तथा साथ साथ मानसिक दुर्बलता प्रकट होती है। बहुत अवस्था में संक्रामक रोग के बाद इस रोग का आक्रमण होता है तथा कभी कभी दीर्घदिन तक शराब और कॉफी पीने की विषक्रिया से ये रोग उत्पन्न हो जाते हैं (Frederick W. Price, M.D., F.A.C.P.—A Text-book of the Practice of Medicine, p. 1856, London, 1947)। वस्तुतः जिसे मानसिक रोग कहा जाता है, स्नायु खराब नहीं होने से कभी यह नहीं होता। शरीर के साथ मन अविच्छिन्न रूप से संयुक्त है। जब स्नायु खराब होते हैं, तभी साथ साथ मन की शक्ति नष्ट हो जाती है अथवा मन के विभिन्न रोग होते हैं। इसलिये इस रोग को पहले स्नायविक दुर्बलता (neurasthenia) कहा जाता था।

बहुत क्षेत्र में शोक, आर्थिक क्षति, पारिवारिक अशान्ति, विपत्ति आदि कारण से इस रोग का आक्रमण होता है। किंतु ये मूल कारण नहीं,

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

उत्तेजक कारण मात्र हैं। जिसके स्नायु पहले से दुर्बल रहते हैं, इन सब कारणों से उन्हें ही साधारणतः यह रोग उपस्थित होता है।

अतः शरीर में जिन सब कूड़ा-कर्कट के संचय के फलस्वरूप दिन पर दिन स्नायविक यंत्र दुर्बल होते जाते हैं, उनको शरीर से बाहर निकाल देना तथा साथ साथ स्नायुयों को सबल करना ही इसकी यथार्थ चिकित्सा है।

[२]

इसके लिये पहले ही पेट और लीवर का मर्दन, पेट के ऊपर ठंडा-गर्म, डूस, हिप बाथ और पेट की लपेट लेकर तथा यथेष्ट फल खाकर कोष्ठ साफ और स्वस्थ कर लेना चाहिये। रोगी के पेट पर पहले ठंडा फिर गर्म देना उचित है तथा एक मिनट ठंडा प्रयोग के बाद एक मिनट के लिये गर्म प्रयोग करना आवश्यक है। यह एक साथ तीन बार प्रयोग करना चाहिये। बीच बीच में लीवर के ऊपर इसी प्रकार ठंडा-गर्म देना उचित है। लीवर प्रतिपल शरीर को जो विकार-रहित करता है इससे उसकी यही क्षमता बढ़ती है। पेट या लीवर पर ठंडा-गर्म देने के बाद ही समशीतोष्ण तीन पाइन्ट नीबू-पानी का डूस देना चाहिये।

प्रतिदिन नीबू के रस के साथ यथेष्ट पानी पीना भी विशेष रूप से आवश्यक है। इससे शरीर का यथेष्ट विष मूत्र के साथ निकल जाता है।

इसके बाद ऐसी व्यवस्था करना आवश्यक है जिससे रोमकूप खुल जायें। किंतु स्नायविक रोग में रोगी को गर्म चिकित्सा सह्य नहीं होती। इसलिये स्नान के पहले एक घंटे के लिये पैर की लपेट (प्रयोग-विधि के लिये अन्तिम अध्याय देखिये) ग्रहण करनी चाहिये। यह शरीर को अत्यधिक गर्म किये बिना सारे रोमकूप खोल देता है तथा मस्तिष्क और रीढ़ आदि स्थान की रक्तबद्धता दूर करता है।

प्रतिदिन रोगी को रीढ़ में ठंडा-गर्म का प्रयोग करना विशेष रूप से आवश्यक है। रीढ़ में ठंडा-गर्म देने से स्नायुयंत्र द्रुत सबलता प्राप्त

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

करते हैं तथा मन जल्दी नीरोग हो उठता है। ठंडा और गर्म दोनों ही प्रतिवार दस सेकेंड से दो मिनटों के लिये प्रयोग करना कर्तव्य है तथा एक साथ तीन-चार बार करना उचित है। रीढ़ में ठंडा-गर्म देने के पहले अवश्य ही सिर धो लेना चाहिये। इसके बाद आधे घंटे के लिये रोगी के सारे शरीर में घर्षण स्नान प्रयोग करना उचित है तथा यह पीठ से आरम्भ करना कर्तव्य है।

रोगी को बीच बीच में गीली चादर का पैक देना भी विशेष रूप से आवश्यक है। यह पहले पहल मात्र २० मिनटों के लिये देना उचित है। इसके बाद रोगी को पैक सह्य होने के साथ साथ दो-एक मिनट करके समय बढ़ाना कर्तव्य है तथा अन्त में ३० मिनटों के लिये प्रयोग करना उचित है। इससे स्नायु शान्त होते हैं, अतः स्नायविक उत्तेजना दूर हो जाती है तथा धीरे धीरे शरीर विकार-रहित हो जाता है। हमेशा पैक में समशीतोष्ण अवस्था जारी रखना जरूरी है।

दिन में दो बार रोगी को स्नान करना भी उचित है तथा सोने के पहले सिर धोकर सारा शरीर गीले गमछे द्वारा पोंछ लेना कर्तव्य है। स्नायुओं को शान्त करने के लिये स्नान के समान और कुछ नहीं है।

रोगी को प्रतिदिन आसन का अभ्यास करना चाहिये। मानसिक रोग में उत्थान-पादासन, भुजंगासन, शलभासन, धनुरासन, हलासन, पश्चिमोत्तानासन, सर्वाङ्गासन, मत्स्यासन, योगमुद्रा, अर्धमत्स्येन्द्रासन तथा शीर्षासन अवश्य ही ग्रहण करना उचित है। आसन लेने का समय धीरे धीरे बढ़ाना चाहिये। इन सब आसनों को छः महीने अभ्यास करने से ही धीरे धीरे स्नायु सबल हो उठते हैं तथा रोगी नवजीवन प्राप्त करता है। कभी भी मन में थकान आते ही शीर्षासन या सर्वाङ्गासन ग्रहण करना चाहिये। इससे थकान क्षणभर में गायब होती है। पहले पहल आसन करने से बहुत समय स्नायविक उत्तेजना बढ़ जाती है। किंतु क्रमशः उनसे अभ्यस्त हो लेने पर धीरे धीरे सब लक्षण लुप्त हो जाते हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

खुली और ठंडी हवा में टहलना भी रोगी के लिये नितांत आवश्यक है। मैदान में नंगे पाँव टहलना अत्यन्त हितकर है। केवल इसीके द्वारा

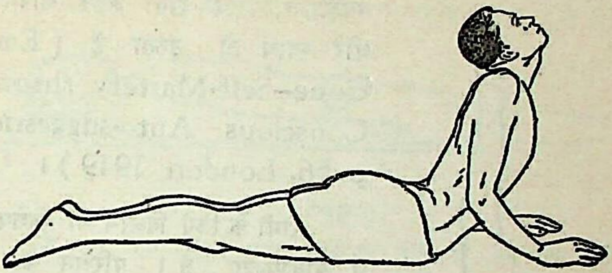

भुजंगासन

बहुत स्नायविक रोगियों ने यथेष्ट लाभ प्राप्त किया है (Otto Juettner, M.D., Ph.D.—A Treatise on Naturopathic Practice, p. 291)। रोगी जितना अधिक समय खुली हवा में रह सके उतना ही उसके लिये अच्छा है। सोने के समय भी कमरे की सब खिड़कियाँ खोलकर रोगी को सोना चाहिये। इसकी अपेक्षा भी अच्छा होता है यदि रोगी रात में घर के बरामदे में सोने की व्यवस्था कर सके। रोगी को प्रतिदिन तालाब या नदी में तैरना उचित है। तैरना व्यायाय के साथ खुली हवा को मिलाता है। अन्यान्य व्यायाम तथा आसन भी खुली हवा में अभ्यास करने से अच्छा होता है।

प्राणायाम रोगी के लिये अत्यन्त हितकर है। मन में जितनी चिन्ता और फिक्र क्यों न रहे, प्राणायाम लेने से धीरे-धीरे मन शान्त हो जाता है।

मानसिक दुर्बलता में योगासन और प्राणायाम से जितना लाभ होता है, स्वकल्प-भावना (auto-suggestion) से भी उतना ही लाभ होता है। इस रोग में प्रतिदिन पद्धति के अनुसार सोने के पहले और नींद खुलने के बाद स्वकल्प-भावना ग्रहण करना उचित है।

 Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

यह एक प्रकार की साधना है। ये सब रोगी केवल बुरे विचार ही करते हैं। जब स्वस्थ विचार की छाप अवचेतन मन के ऊपर पड़ती है, तब रोगी अपने आप धीरे धीरे स्वस्थ हो उठता है (Emile Coue—Self-Mastery through Conscious Auto-suggestion, p. 56, London, 1949)।

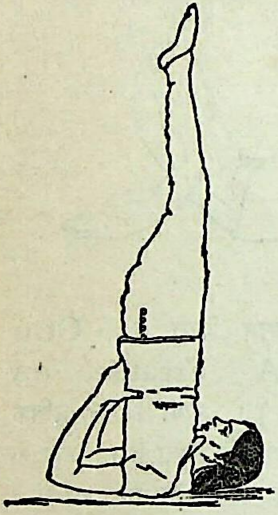

सर्वांगासन

रोगी के लिये विश्राम की विशेष रूप से आवश्यकता है। परिश्रम के बाद थकान आने के पहले सदा ही उसे विश्राम ग्रहण करना कर्तव्य है एवं रात्रि में कम से कम सात घंटा सोना जरूरी है। अनिद्रा से सदा मुक्त रहना आवश्यक है एवं सदा इसे भावी विपत्ति का एक संकेत (danger signal) जैसा मान लेना कर्तव्य है।

प्रतिदिन दो बार उसे शवासन ग्रहण करना चाहिये। यह प्रतिदिन सोने के तुरंत पहले और नींद खुलने के तुरंत बाद लिया जा सकता है। इसमें सफल होने पर मन की समस्त उत्तेजना दूर होती है तथा दुर्बल शरीर में भी मत्त हाथी का बल आता है। कभी भी क्रोध आदि का वेग आते ही सारे शरीर को ढीला कर लेना उचित है। कुछ दिन शवासन का अभ्यास करने से अन्त में खड़े खड़े भी शरीर को ढीला कर लिया जाता है। साथ साथ मन भी शान्त हो जाता है।

रोगी को सदा प्रसन्न रहना चाहिये। प्रसन्न-चित्त रहना ही इस रोग की एक चिकित्सा है। दिन में कम से कम दो बार जोर जोर से उसे हँसना उचित है। जी खोलकर हँस सकें तो मन की तमाम कमजोरी

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

और चिन्ता एक सेकेन्ड में विलीन हो जाती है। हँसी और आनन्द मानसिक स्वास्थ्य गठन में बहुत ही सहायक हैं। लेकिन आनन्द निर्दोष होने चाहिये। कुछ दिन तक ब्रह्मचर्य से रहना बहुत जरूरी है।

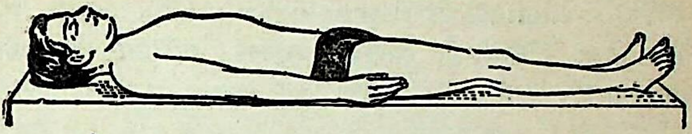

शवासन

ये सब रोग बहुत बार उन्हें ही होते हैं जो बचपन में अत्यन्त दुलार पाते हैं, कोई काम-काज में नहीं जाता तथा दुःख-कष्ट जीवन में क्या हैं वे कभी भी जान नहीं पाते। एक व्यक्ति ने कहा है, when things are easygoing, life degenerates जब जीवन में कोई संघर्ष नहीं रहता, तब उसमें एक अवसन्नता आती है। इसलिये इस रोग पर विजय प्राप्त करने का अचूक उपाय ही है दुःख-कष्ट से कतराकर नहीं चलकर दुःख-कष्ट को जीवन में आमंत्रित कर लाना।

केवल अपना क्षुद्र स्वार्थ और परिवार लेकर पड़े रहने से कभी भी चित्त की प्रसारता नहीं होती। जो आप को दूसरे के लिये जितने दुःख-कष्ट में डाल सकते हैं उनका चित्त उतनी ही प्रसारता और सबलता प्राप्त करता है। कर्म ही साधना है। ऊपर उठने का मार्ग ही कर्म है—गीता में जिसे निष्काम कर्म कहा है। दूसरों के लिये हँसते-हँसते स्वयं विपत्ति में डाल सकने से स्नायविक और मानसिक दुर्बलता डर-कर शरीर छोड़के भाग जाती है। कभी भी विपत्ति आने पर सोचना उचित है, एक संघर्ष का सु-अवसर मिला है। विपत्ति आते ही दोनों जाँघ पर ताल ठोककर उसका मुकाबला करना कर्तव्य है। एक विख्यात व्यक्ति ने कहा है, शक्ति क्या है? शक्ति है विपत्ति जीतने का फल। विपत्ति के साथ जूझकर उसपर विजय प्राप्त करते ही स्नायविक तथा मानसिक दुर्बलता लुप्त हो जाती है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

इस रोग में विभिन्न औषधियाँ व्यवहृत होती हैं। किंतु उनसे कोई लाभ होता है कि नहीं इस विषय में बहुत सन्देह है (A. F. Fredgold, M.D., F.R.C.P., and R.F. Fredgold, M.D.—Manual of Psychological Medicine, p. 76, London, 1953)। वस्तुत: प्राकृतिक चिकित्सा ही इसकी चिकित्सा है।

(३)

इस रोग में पथ्य के ऊपर ध्यान देना विशेष रूप से आवश्यक है। रोगी का पथ्य सदा ही सहजपाच्य, अनुत्तेजक और क्षारधर्मी होना चाहिये।

रोगी के पथ्य में जिसमें यथेष्ट रूप से बी-विटामिन (Vitamin-B-Complex) रहे इसकी व्यवस्था करनी चाहिये। केवल विटामिन बी १ (thiamin) का अभाव होने से ही थकान, आलस्य, क्रोधी स्वभाव तथा मानसिक दुर्वलता के विभिन्न लक्षण उत्पन्न होते हैं और निकोटिनिक एसिड के अभाव से मानसिक उत्तेजना और अस्थिरता प्रकट होती हैं (J. R. Rus, M.D.—Modern Practice of Psychological Medicine, p. 362, London, 1949)। इसके लिये रोगी को यथेष्ट मात्रा में दूध, दही, गेहूँ का अंकुर, तरल गुड़, दाल का सूप, डाब का पानी, पानी में भिगोई हुई मूँगफली, सोयाबीन और मूँगफली का दही आदि खाद्य ग्रहण करना उचित है। यह स्मरण रक्खा जा सकता है कि प्रति १०० ग्राम इस्ट (brewer's yeast) में ६,००० माइक्रोग्राम विटामिन-बी १ (थियामिन) रहता है। मूँगफली और सोयाबीन में रहता है ९००, मूँग की दाल, मटर की दाल, अरहर की दाल और अखरोट में ४५०, उड़द में ४२०, जन्तुओं के लीवर में ३६०, फूलगोबी में ३३०, लेटूस साग में २७०, अरबी में २४०, किशमिश में २२५, सहजन, बैंगन,

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

मेथी साग, पालक साग और बीट में २१० माइक्रोग्राम थियामिन वर्तमान रहता है (W. R. Aykroyd, Ex-Director, Nutritional Research Laboratories, Conoor—The Nutritive Value of Indian Foods, pp. 28—57, Delhi, 1956)। निकोटिनिक एसिड भी मूँगफली, आलू और विभिन्न साग में पाया जाता है। अन्यान्य बी-विटामिन भी इन सब खाद्यों के भीतर वर्तमान रहते हैं। लेकिन सम्पूर्ण बी-विटामिन (Vitamin B-Complex) जिसमें शरीर में ग्रहीत हो इसकी ओर ही सदा ध्यान देना चाहिये।

उसके लिये कैलशियम भी यथेष्ट रूप से आवश्यक है। कारण, स्नायविक यंत्र परिचालन में कैलशियम यथेष्ट प्रभाव फैलाता है। यदि यथेष्ट मात्रा में दूध या दही ग्रहण किया जाय तब शरीर में कभी भी कैलशियम का अभाव नहीं होता। स्वस्थ गाय से धारोष्ण दूध ग्रहण करने से रोगी को अत्यन्त लाभ होता है।

रोगी के खाद्य में अन्यान्य विटामिन तथा खनिज लवण भी जिसमें रहे तथा खाद्य जिसमें सर्वगुणसम्पन्न (well-balanced) हो इसकी ओर भी ध्यान रखना आवश्यक है। इसके लिये यथेष्ट ताजे और सूखे फल, सलाद, दूध, दही, मांड़ युक्त कम छाँटे हुए चावल का भात और चोकर समेत रोटी ग्रहण करना आवश्यक है।

रोगी को चाय, काफी, कोको, तम्बाकू, प्याज, लहसुन, सब प्रकार के भुने हुए पदार्थ, तले हुए भोजन, हल्दी के अतिरिक्त सब प्रकार के मसाले, चीनी और मैदा आदि परिष्कृत (refined) खाद्य का वर्जन करना उचित है।

सदा ध्यान रखना चाहिये जिसमें खाद्य सुपाच्य हों। इसके लिये दाल खाते समय दाल का सूप या अंकुर आया हुआ दाल, सोयाबीन खाते समय सोयाबीन का दही और मूँगफली खाते समय उसे पानी में भिगोकर या दही जमाकर खाना उचित है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Arya Samaj Foundation Chandigarh

सब प्रकार के मानसिक तथा स्नायविक रोग का पथ्य ही इस प्रकार को होना आवश्यक है।

उन्माद रोग
[Mania]

उन्माद रोग को मानसिक व्याधि (mental disease) कहा जाता है। किंतु किसी भी रोग को ही अविमिश्र मानसिक व्याधि कहना चल नहीं सकता। वस्तुतः यह मन, मस्तिष्क और स्नायु की व्याधि है। चिन्ता, अनुभव और इच्छा करने के काम में मन मस्तिष्क को यंत्र के समान व्यवहार करता है। जब मस्तिष्क के ये सूक्ष्म यंत्र बिगड़ जाते हैं, तब शृङ्खलाबद्ध रूप से मन की सोचने आदि की क्षमता ही नष्ट हो जाती है। इसी अवस्था को उन्माद रोग कहते हैं।

साधारण दुश्चिन्ता, अभाव, अत्यधिक मानसिक परिश्रम (strain), अत्यधिक इन्द्रिय सेवा तथा अत्यधिक मद्यपान आदि कारणों से यह रोग हो जाता है। कभी कभी आकस्मिक शोक, भय और व्यवसाय की हानि आदि कारण से भी मस्तिष्क विकृत हो जाता है। किंतु थोड़ी दुश्चिन्ता और दुर्भावना करने से ही, अथवा हठात् कोई शोक या भय पाने से ही माथा खराब हो जाय, ऐसा नहीं। शरीर के अन्यान्य रोग जिस कारण से उत्पन्न होते हैं, मानसिक रोग भी ठीक उसी कारण से होते हैं। देह-सञ्चित विष जब मस्तिष्क और उससे सम्बन्धित स्नायु केन्द्र पर आक्रमण करता है तभी मस्तिष्क-विकृति उपस्थित होती है (Encyclopædia Medica, Vol. VI, p. 655)। इसलिये टायफायड, न्यूमोनिया, सिफलिस और प्रसूति के ज्वर आदि के आक्रमण में बहुत बार उन्माद रोग दिखाई देता है। बहुत अवस्था में कोष्ठबद्धता ही इस रोग का प्रधान कारण है। पेट में रुके हुए दूषित मल से जो विष

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

शरीर में ग्रहीत होता है वह स्नायुओं के ऊपर प्रभाव फैलाकर बहुत अवस्था में यह रोग उत्पन्न कर देता है। उन्माद रोग में जो मन्दाग्नि अनिद्रा और अवसाद आदि लक्षण प्रकट होते हैं, वे सभी इस विषक्रिया की देन हैं (J. H. Kellogg, M D.—The New Dietetics, p. 852)।

इस रोग का आक्रमण कदाचित् कभी भी हठात् होता है। मानसिक विकार के साधारण लक्षण पहले धीरे धीरे प्रकट होते हैं। यहाँ तक कि स्नायविक रोगी और पागल में भेद करना बहुत समय कठिन हो जाता है। वास्तव में उन्माद मानसिक विकार की एक अवस्था मात्र है। अति साधारण मानसिक गड़बड़ी से उन्माद अवस्था तक विभिन्न लक्षण इस रोग में उत्पन्न होते रहते हैं। रोग के लक्षण के अनुसार इनके विभिन्न नाम (anxiety state, depression, melancholia, demantia और mania आदि) दिये जाते हैं। शरीर और मन की रोगग्रस्त अवस्था के ये विभिन्न रूप मात्र हैं। जो अनुकूल अवस्था शरीर के भीतर लोगों की आँखें बचाकर दीर्घ दिनों तक चलती है, उसीके ऊपर ये सब लक्षण धीरे धीरे उपस्थित होते हैं।

अतः शरीर की जो दूषित अवस्था दिन पर दिन मस्तिष्क और उससे सम्बन्धित स्नायुकेन्द्र की अवनति लाकर यह रोग उत्पन्न करती है उसे दूर करके मस्तिष्क, स्नायु और मन को शान्त और सबल करना ही इस रोग की प्रधान चिकित्सा है।

पागल रोगी साधारणतः अत्यन्त कठिन कोष्ठबद्धता रोग से भुगतते हैं और जब कोष्ठ साफ कर दिया जाता है तब वह अत्यन्त आराम अनुभव करता है। रोगी की इसी अवस्था के भीतर ही चिकित्सा का निर्देश निहित है। अर्थात् रोगी का पेट साफ रखने से ही आरोग्य के पथ पर बहुत दूर अग्रसर हो सकते हैं। रोगी का प्रतिदिन कम से कम तीन बार कोष्ठ साफ होना चाहिये। केवल इतना करने से ही

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Arya Samaj Foundation Chandigarh

रोगी आधा आरोग्य होता है। प्रबल अवस्था में रोगी को दिन में दो बार डूस देना उचित है।

इसके साथ रोगी को प्रतिदिन नीबू के रस के साथ प्रचुर पानी पिलाना चाहिये। साधारणतः रोगी को प्रति घंटे नियत समय पर एक ग्लास करके पानी दिया जा सकता है।

जो सब रोगी उत्तेजित अवस्था में रहते हैं उन्हें शान्त करने और आरोग्य करने में गीली चादर का समशीतोष्ण पैक (neutral wet-sheet pack) अत्यन्त फलप्रद है। यह इस प्रकार देना आवश्यक है जिससे शरीर गर्म न हो उठे अथवा ठंडा न पड़ जाय। इसलिये पैक के भीतर एक समशीतोष्ण अवस्था बनाये रखने की आवश्यकता है।

प्रतिदिन एक बार उसको हिप बाथ देना चाहिये। हिप बाथ देते समय रोगी की पूरी रीढ़ ठंडे पानी के सम्पर्क में लाना आवश्यक है और उसके सिर पर गीली तौलिया रखना उचित है।

प्रतिदिन उसे एक घंटे के लिये पैर की लपेट प्रयोग करनी चाहिये। इससे सिर से पैर में रक्त उतर आता है और मस्तिष्क का रक्ताधिक्य लुप्त हो जाता है। इसके बाद रोगी को आधे घंटे के लिये घर्षण स्नान (cold friction) प्रयोग करना चाहिये।

सिर गर्म रहने पर २० मिनटों के लिये सिर में आधा इञ्च मोटी मिट्टी की ठण्डी पट्टी प्रयोग करना उचित है। यह बार बार प्रयोग की जा सकती है। सब रोगियों का ही सिर ठण्डा एवं पैर गर्म रखना चाहिये।

उन्माद के रोगी प्रायः ही अनिद्रा से कष्ट पाते रहते हैं। किंतु नींद के लिये अत्यधिक औषधि प्रयोग करने से रक्तस्रोत विषाक्त हो उठता है और उसके फलस्वरूप रोग (toxic confusion) बढ़ जाता है (J. R. Rus, M.D.—Modern Practice in Psychological Medicine, p. 293, London, 1949)।

रोगी को यदि नींद न आये तब हर रात में उसको मोटी करके पेट की लपेट प्रयोग करनी चाहिये। किंतु यह इस प्रकार प्रयोग करना

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

आवश्यक है जिसमें हमेशा वह गीली रहे फिर भी प्रयोग करते ही गर्म हो उठे। पृथ्वी की सारी औषधियाँ मिलकर जैसी नींद नहीं उत्पन्न कर पाती हैं, यदि ठीक ठीक ढङ्ग से यह प्रयोग की जाय, तब इसके द्वारा वही काम होता है। गीली चादर का समशीतोष्ण पैक और घर्षण स्नान से भी अनिद्रा सहज ही दूर होती है।

रोगी जिसमें शान्त भाव से रह सके सदा इसकी व्यवस्था करनी चाहिये। कभी भी उसको प्रकोपित करना उचित नहीं तथा उसकी किसी बात का कभी प्रतिवाद नहीं करना चाहिये। सदा उसके प्रति सदय व्यवहार करना उचित है। सहानुभूति और उत्साह रोग आरोग्य करने में बहुत मदद करते हैं। प्रबल अवस्था में उसके साथ किसी को मुलाकात करने देना उचित नहीं तथा उसको अकेले सोने देना कर्तव्य है। दीर्घ समय उसका विश्राम करना उचित है।

रोगी की पाचन शक्ति बढ़ाने के लिये विशेष रूप से चेष्टा करनी चाहिये। प्रायः प्रत्येक उन्माद रोगी की ही दिखाई पड़ता है—पाकस्थली और आँत की अवस्था अत्यन्त खराब है। बहुत बार पाचन यंत्र की यह अवस्था ही उन्माद रोग का प्रधान कारण होती है। एक डाक्टर ने कहा है, बहुत से-रोगी, जो पागलखाने में दीर्घ अवधि तक थे, फिर भी कुछ भी लाभ नहीं हुआ, प्रधानतः पाचन शक्ति बढ़ाकर उनमें से प्रायः सब रोगी को उन्होंने आरोग्य किया है।

पेट की लपेट और हिप बाथ के प्रयोग से ही पाचन शक्ति यथेष्ट रूप से उन्नति प्राप्त करती है। किंतु साथ साथ भीतरी शरीर की धुलाई चाहिये। जब शरीर का भीतरी हिस्सा साफ हो जाता है तब स्वयं ही भूख का आविर्भाव होता है।

रोगी को यथासम्भव खुली हवा में ठंडे स्थान पर रखना चहिये। Treatment in open verandah is excellent when possible—जब खुले बरामदे में रोगी को रखकर चिकित्सा की जाती है तब आश्चर्यजनक असर होता है (Hugh G. Garland,

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Arya Samaj Foundation, Chandigarh

M.D., F.R.C.P. and William Phillips, M.D., F.R.C.P.—Medicine, p. 616, London, 1953)।

आरोग्य प्राप्ति के बाद रोगी को उत्साह देकर किसी काम-काज में लगा देना उचित है। काम करते करते ही काम करने की क्षमता आ जाती है (Leslie A. Osborn, M.D.—Psychiatry and Medicine, p. 376, London, 1952)।

रोग की प्रबल अवस्था में रोगी को केवल कच्चे खाद्य खिलाकर रखना चाहिये। इस अवस्था में उसका पथ्य ही होना उचित है फल, फलों का रस, सलाद, धारोष्ण दूध और कच्चे दूध का जमाया हुआ दही। उसके बाद भी कुछ समय उसके खाद्य का सैकड़े ८० भाग क्षारधर्मी खाद्य का बना हुआ होना आवश्यक है। अन्यान्य पथ्य-विधि मानसिक दुर्बलता के अनुरूप है। रोगी के थोड़ा स्वस्थ होने के बाद उसकी चिकित्सा होना उचित है मानसिक दुर्बलता के अनुरूप।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

नवम अध्याय

चर्मरोग

दाद

[Ringworm]

दाद एक श्रेणी का साधारण रोग है। यह शरीर के ऊपर अंगूठी के समान गोलाकर होकर दिखाई पड़ता है और इसी प्रकार बढ़ता है। इसीलिये अंग्रेजी में इसे रिंगवर्म (ringworm) कहते हैं। शरीर में ऐसा स्थान नहीं है जहाँ यह उत्पन्न नहीं हो सकता। बहुत क्षेत्र में बच्चों के मस्तिष्क की त्वचा में यह दिखाई देता है। युवावस्था में प्रायः ही यह पट्टे में प्रकट होता है। कभी कभी यह दाढ़ी में और किसी किसी समय नाखून में उत्पन्न हो जाता है।

यह एक श्रेणी का संक्रामक रोग है। बहुत अवस्था में रोगग्रस्त पशुपक्षियों के शरीर से जीवाणु आकर मनुष्य की त्वचा में घर बना लेते हैं। इस प्रकार एक शरीर से दूसरे शरीर में भी इसकी छूत लगती है। किंतु दूसरे संक्रामक रोगों की भाँति यह केवल उसी समय हो सकता है, जब त्वचा के तन्तु इतने दुर्बल हो पड़ें कि अनधिकार प्रवेश करनेवाले को घर से निकाल देने में सक्षम नहीं होते।

मलहम आदि विभिन्न औषधि द्वारा इस रोग को आरोग्य करने की चेष्टा की जाती है। किंतु चर्मरोग शरीर की दूषित अवस्था का ही एक लक्षण मात्र है। एक अनुभवी डाक्टर ने कहा है, मैंने बहुत दाद के रोगियों को देखा है, किंतु ऐसा एक भी रोगी नहीं देखा जिसका शरीर वस्तुतः स्वस्थ था (J. C. Burnett, M.D.—Diseases of the Skin, p. 238)। इसलिये केवल स्थानीय चिकित्सा

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Arya Samaj Foundation, Chandigarh

इस रोग में बिल्कुल बेकार है। जिसके शरीर में दीर्घ समय तक दाद वर्तमान रहता है और शरीर के विभिन्न स्थान में रहता है, यह समझना उचित है कि, उसके पेट और लीवर अत्यन्त खराब और सारा शरीर विभिन्न दूषित और विषाक्त पदार्थ का एक कूड़ा-घर हो उठा है।

इसीलिये एक डाक्टर ने कहा है, Treat the patient principally and the affected skin incidentally—प्रधानतः रोगी की चिकित्सा करो और प्रसंगवश त्वचा की।

वस्तुतः अन्यान्य रोगों की भाँति शरीर साफ करने के साथ साथ स्थानीय रोग के ऊपर ध्यान देना ही इसकी यथार्थ चिकित्सा है।

अतः कभी भी दाद होते ही साधाराण स्वास्थ्य अच्छा करने की ओर ध्यान देना उचित है। इसके साथ सामान्य रूप से दाद की चिकित्सा करने से ही दाद आरोग्य प्राप्त करता है।

दाद के ऊपर एक बार पाँच मिनट के लिये गर्म सेंक देकर उसके ऊपर गीले कपड़े की ढकी हुई लपेट (प्रयोग-विधि के लिये अन्तिम अध्याय देखिये) दिन में दो बार एक घण्टे के लिये प्रयोग करनी चाहिये। यदि यह स्थान गर्म रहे तथा उसमें अधिक खाज हो तब दिन में एक बार ३० से ६० मिनटों के लिये मिट्टी की ढकी हुई लपेट प्रयोग की जा सकती है। इसीसे दो-चार दिन में साधारण दाद आरोग्य प्राप्त करता है। दाद के ऊपर कभी भी खुजलाना उचित नहीं। बल्कि खाज उठते ही तुरन्त दाद के ऊपर एक मोटी गीले कपड़े की ढकी हुई लपेट ग्रहण करनी चाहिये।

कभी कभी ऐसा होता है कि, रोगी के शरीर के विभिन्न स्थान में दाद फैल जाता है और बहुत वर्षों तक इसी प्रकार चलता है। इस अवस्था में उल्लिखित चिकित्सा के साथ साथ कुछ दिन तक नीम के उबाले हुए पत्ते के पानी से डूस, बीच बीच में वाष्पस्नान, पेड़ू में मिट्टी की पुल्टिस और हिप बाथ ग्रहण करके, नीबू के रस के साथ यथेष्ट पानी

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

पीकर तथा फल, सलाद, दही, चोकर समेत आटे की रोटी और उबाली हुई तरकारी खाकर शरीर को साफ कर लेना चाहिये।

मांस, अंडे, सब प्रकार के भुने हुए और तले हुए पदार्थ तथा दुष्पाच्य पदार्थों का रोगी को परित्याग कर देना उचित है।

एकजिमा
(Eczema)

[१]

एकजिमा अत्यन्त खराब रोग है। लोगों को जितने चर्मरोग होते हैं, उनके प्रायः आधे ही इस जाति के हैं। यह विभिन्न शरीर में विभिन्न रूप से प्रकट होता है। फिर भी इसके दो भाग किये जा सकते हैं—रसस्रावी एकजिमा (weeping eczema) और सूखा एकजिमा (dry eczema)

पहले त्वचा के ऊपर एक स्थान लाल हो जाता है और उसमें सूजन आ जाता है तथा उसके बाद छोटे छोटे लाल फुन्सियाँ दिखाई देती हैं। बाद में ये फुन्सियाँ फैलकर एकत्र हो जाते हैं तथा उनसे प्रचुर दूषित क्लेद निकलने लगता है। इसके साथ प्रायः ही खाज रहती है तथा कभी कभी रोगी दर्द भी अनुभव करता है। ऐसी अवस्था साधारणतः कई सप्ताह रहती है। इसके बाद रोग छूट गया-सा मालूम पड़ता है। किंतु प्रायः ही यह लौट आता है तथा अन्त में आक्रान्त अंश की चमड़ी मोटी हो जाती है और कभी तो वह अंग फूल जाता है।

जब एकजिमा से रस नहीं निकलता तब उसे सूखा एकजिमा कहते हैं। इसमें भी प्रबल खाज रहती है तथा आक्रान्त स्थान से पतला पतला मरा हुआ चमड़ा निकल आता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

साधारणत: उत्तेजक साबुन का व्यवहार, कच्चे रंग में रंगा हुआ कपड़ा पहनना, विषाक्त रंग का त्वचा पर प्रयोग, गंदे मोजे का व्यवहार आदि जो त्वचा को उत्तेजित करते हैं उन्हीं के द्वारा एकजिमा उत्पन्न होता है। किंतु ये सब कभी भी रोग के मूल कारण नहीं हैं। जब तक त्वचा की रोग-प्रतिरोध क्षमता मौजूद रहती है, तब तक कभी भी एकजिमा नहीं हो सकता (Encyclopædia Medica, Vol. IV, p. 229)।

जब विभिन्न कारणों से रक्त दूषित होता है तथा उसके फलस्वरूप त्वचा की रोग-प्रतिरोध क्षमता घट जाती है, तभी केवल यह रोग होता है। इसलिये गठिया (gout), वातरोग, पायरिया, मूत्रयंत्र के रोग, खून का अत्यधिक अम्लत्व एवं अजीर्ण और कोष्ठबद्धता आदि के द्वारा जिनका रक्त दूषित हो उठता है, वे ही साधारणत: इस रोग से आक्रान्त होते हैं (Frederick W. Price—A Text-book of the Practice of Medicine, p. 1407)। अधिकांश अवस्था में रक्त का यह विष कोष्ठबद्धता से आता है। कोष्ठबद्धता के कारण रक्त के भीतर जो विष ग्रहीत होता है वही शरीर की रोग-प्रतिरोध क्षमता घटाकर विभिन्न चर्मरोग उत्पन्न कर देता है (J. H. Kellogg, M.D.—The New Dietetics, p. 906, Washington, 1923)। इसके अतिरिक्त त्रुटिपूर्ण खाद्य (wrong feeding), अस्वास्थ्यकर जीवन यापन तथा औषधि द्वारा विभिन्न रोग दबा देने के फलस्वरूप बहुत अवस्था में इस रोग के लिये उपयुक्त जमीन गठित होती है (Harry Benjamin—Everybody's Guide to Nature-cure, p. 126, London, 1952)। बहुत अवस्था में प्रकृति शरीर का विष जब त्वचा की राह बाहर कर देने की चेष्टा करती है, तब प्रकृति की उसी चेष्टा से विभिन्न चर्मरोग उत्पन्न होते हैं (Bernarr Macfadden—Skin Troubles, p. 20, New York, 1932)।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि यह जीवाणुओं से प्रत्यक्ष रूप में उत्पन्न होता है। किंतु शरीर के भीतर जीवाणुओं के विस्तार के अनुकूल अवस्था नहीं रहने पर कभी भी यह रोग नहीं होता। इसलिये यद्यपि यह छूत का रोग है फिर भी दीर्घ दिन के सम्पर्क के अतिरिक्त यह साधारणत: उत्पन्न नहीं होता (Oliver E. Ormsby, M.D.—Diseases of the Skin, p. 278, London, 1948)।

[२]

पृथ्वी की किसी औषधि से यह रोग मिटता नहीं। अगर किसी तरह से यह मिट जाय तब भी यह ऐसा सांघातिक है कि यह रोगी को कभी भी क्षमा नहीं करता। बलपूर्वक दबा देने से यह मस्तिष्क विकृत कर देता है, नहीं तो दमा उत्पन्न करता है, अथवा हार्ट खराब कर देता है, और यह न होने पर दूसरे कोई कठिन रोग उत्पन्न करता है। वस्तुत: दबा दिये गये एकजिमा से बहुत बार अजीर्ण वायुफुल्लता, श्वासकष्ट, हृत्कम्प, हृत्शूल, दमा, आँखों की सूजन, स्नायुशूल, मिर्गी और स्नायविक दुर्बलता आदि रोग उत्पन्न होते हैं (J. C. Burnett, M.D.—Diseases of the Skin, pp. 1—117)।

यह आरोग्य हो सकता है केवल दो प्रकार से। चिता की आग से यह दूर होता है। जब शरीर जल जाता है, तब यह भी निर्वाण प्राप्त करता है। और आरोग्य प्राप्त करता है यह प्राकृतिक चिकित्सा से। अत्यन्त कठिन से कठिन एवं अत्यन्त पुराना एकजिमा भी इससे आरोग्य प्राप्त करता है। किंतु इसके लिये साधना करनी चाहिये। अत्यन्त कठिन श्रेणी का एकजिमा होने पर तीन महीने चिकित्सा ग्रहण करना कर्तव्य है। इस समय एकदम कच्चा और नमक-वर्जित खाद्य खाना आवश्यक है। दीर्घ दिन उपवास लेने से भी रोग अपेक्षाकृत सहज ही आरोग्य प्राप्त करता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

सब प्रकार के चर्मरोगियों को ही कोष्ठ की सफाई के सम्बन्ध में विशेष रूप से ध्यान देना आवश्यक है। कारण, रोग की जो गति त्वचा की ओर रहती है, वह आँत को ओर लौटा लाना, अर्थात् आँत की राह वह विष बाहर निकाल देना ही इस रोग की प्रधान चिकित्सा है। इसलिये प्रतिदिन रोगी को नीम के उबाले हुए पत्ते के पानी से डूस लेना आवश्यक है। इसके साथ प्रतिदिन हिप बाथ तथा पेड़ू में आधे घंटे के लिये मिट्टी की ढकी हुई लपेट ग्रहण करनी चाहिये। इसके साथ नीबू के रस के साथ रोगी को प्रचुर पानी पीना उचित है।

सब प्रकार के चर्मरोगों में ही स्टीम बाथ अत्यन्त फलप्रद है। प्रति १५ दिन पर रोगी को सम्पूर्ण समय के लिये स्टीम बाथ देना चाहिये। इस समय एकजिमा के ऊपर नीले कपड़े की मोटी पट्टी रखना आवश्यक है।

धूपस्नान (sun bath) भी रोगी के लिये अत्यन्त हितकर है। प्रतिदिन कुछ देर के लिये धूप में रहकर उसके बाद शरीर गर्म रहते रहते स्नान कर लेना चाहिये।

इस रोग में लीवर प्रायः ही खराब रहता है। इसलिये बीच बीच में एक साथ चार-पाँच दिनों तक लीवर के ऊपर गर्म-ठंडा प्रयोग करना उचित है तथा पेट और पीठ के चारों ओर पेट की लपेट व्यवहार करना कर्तव्य है।

बहुत अवस्था में पाचन और परिग्रहणकी गड़बड़ी (imperfect digestion and assimilation) से विभिन्न प्रकार के चर्मरोग उत्पन्न होते हैं। इसलिये रोगी को प्रतिदिन खुली हवा में व्यायाम करना आवश्यक है एवं प्रतिदिन पेट की लपेट तथा हिप बाथ ग्रहण करना कर्तव्य है। इससे पाचन शक्ति विशेष रूप से उन्नति प्राप्त करती है।

संक्षेप में, साधारणतः स्वास्थ्य अच्छा करने के लिये तथा उसके फलस्वरूप शरीर की रोग-प्रतिरोध क्षमता बढ़ाने के लिये जो कुछ करना

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

सम्भव है वही करना उचित है (Oliver S. Ormsby, M.D.—Diseases of the Skin, p. 112, London, 1948)। यह सब सर्वदैहिक चिकित्सा (constitutional treatment) करने के साथ साथ स्थानीय चिकित्सा करने से ही केवल स्थायी लाभ प्राप्त हो सकता है।

प्रतिदिन एकजिमा के ऊपर पाँच मिनटों के लिये सेंक देकर दिन में एक बार या दो बार एक घंटे के लिये गीले कपड़े की ढकी हुई लपेट रखनी चाहिये। यह लपेट एकजिमा के ऊपर कभी भी एक घंटे से अधिक देर रखना उचित नहीं। कारण एक घंटे के भीतर वह इतना विष खींच लेती है कि उसके बाद और ग्रहण नहीं कर पाती। तब भी वह लपेट रखने पर ग्रहण करने के बदले वह शरीर को ही विष लौटा देती है। यदि रोग की प्रबल अवस्था रहे तब बार बार रोगी यह लपेट ग्रहण कर सकता है। किंतु लपेट का कपड़ा हर बार अच्छी तरह साफ करके उसके बाद फिर व्यवहार करना चाहिये।

इस रोग में सदा रोगी को उपदेश दिया जाता है कि वह कभी भी एकजिमा के ऊपर नहीं खुजलाये। वस्तुतः खुजलाने से ही एकजिमा खराब हो जाता है। किंतु इसमें इस प्रकार असह्य खाज होती है कि बिना खुजलाये रह नहीं सकते। इस अवस्था में एकजिमा के ऊपर भारी गीले कपड़े द्वारा ढकी हुई लपेट देते ही आग में पानी डालने जैसा खाज और जलन पल भर में खत्म हो जाती है। इस लपेट से शरीर के इतने विकार और विष निकल आता है कि यह लपेट बार बार प्रयोग करने के फलस्वरूप ही रोग आरोग्य प्राप्त करता है। यदि एकजिमा में अधिक जलन हो अथवा यह स्थान अत्यन्त गर्म हो उठे तब एकजिमा के ऊपर मिट्टी की ढकी हुई लपेट प्रयोग करनी चाहिये। उसीसे लाभ अधिक होता है। यह जब तक आरामदायक रहे तब तक रक्खी जा सकती है। किंतु एक घंटे से अधिक कभी भी रखना उचित नहीं। एकजिमा के ऊपर मिट्टी देने के लिये उसे एक घंटे के लिये एक नई मिट्टी की हाँड़ी

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

में उबालकर ठंडा कर लेना उचित है। एकजिमा के ऊपर यदि घाव हो तब अवश्य ही मिट्टी व्यवहार करना कर्तव्य है तथा दिन में एक बार या दो बार उसके ऊपर गर्म सेंक देना उचित है।

जब घाव के ऊपर कोई लपेट न रहे, तब इस स्थान में नारियल का तेल या ओलिव आयल में डुबाकर एक चिथड़ा प्रयोग किया जा सकता है। किंतु बार बार लपेट व्यवहार करने पर इसकी और जरूरत नहीं होती।

आक्रान्त स्थान की त्वचा जब मोटी हो जाती है तब भी लपेट देते देते ही त्वचा पतली हो उठती है। एकजिमा के ऊपर कभी भी गर्म-ठंडा प्रयोग करना उचित नहीं तथा इसके बदले सदा ही गर्म सेंक देना कर्तव्य है।

आक्रान्त स्थान में कभी भी साबुन लगाना उचित नहीं। साबुन लगाने से एकजिमा सदा बढ़ता है (John Fry, M.B., B.S., F.R.C.S.—Clinical Medicine in General Practice, p. 304, London, 1954)। आवश्यकतानुसार मिट्टी के द्वारा एकजिमा का स्थान धोया जा सकता है।

रोगी को कभी भी आवश्यकता से अधिक चिकित्सा करना उचित नहीं। Over-treatment does more harm than neglect—उपेक्षा से जितना अनिष्ट होता है उसकी अपेक्षा अधिक अनिष्ट होता है अत्यधिक चिकित्सा से (Dr. Craddock, M.B., Ch.B.—An Introduction to General Practice, p. 184, London, 1953)।

इस रोग में कभी भी कोई औषधि देना उचित नहीं, मलहम तो नहीं ही। एक डाक्टर ने कहा है, 'यह आश्चर्यजनक है कि विभिन्न विपत्तिजनक औषधियाँ (mercurials, sulphonamides और antibiotics) शरीर की किस प्रकार हानि करेंगी इसका कुछ भी विचार न करके ही इस रोग में व्यवहार करने के लिये कहा जाता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

इससे हो सकता है घाव नीरोग होता हो किंतु औषधि द्वारा घाव आरोग्य होने पर भी यह प्रमाणित नहीं होता कि रोग फिर लौट नहीं आयेगा' (L. J. A. Loewenthal, M.D., M.A.C.P.—The Eczemas, pp. 202—208, London, 1954)।

बहुत प्रकार के चर्मरोग भोजन की गड़बड़ी (errors in diet) के फलस्वरूप होते हैं (Mande A. Perry, B.S.—Dietetics and Nutrition, p. 265)। इसलिये पथ्य की ओर सदा ही ध्यान देना उचित है।

उपयुक्त खाद्य ग्रहण से और खुली हवा में व्यायाम ग्रहण के द्वारा स्वास्थ्य की उन्नति कर सकें तो रोग आरोग्य के पथ पर बहुत दूर अग्रसर हो जाता है (Hobart A. Reimann, M.D.—Treatment in General Medicine, Vol. 3, p. 527, Philadelphia, 1948)।

इसके साथ साधारण स्वास्थ्य-नीति भी यथासाध्य मानकर चलना चाहिये। कारण बहुत अवस्था में औषधि से जो लाभ नहीं होता, उससे कहीं अधिक लाभ होता है पथ्य की देखभाल और साधारण स्वास्थ्य-नीति के अनुसरण से (Henry W. Stilwagon, M.D., Ph.D.—A Treatise on Disorders of the Skin, p. 308)।

[३]

इस रोग में पथ्य विशेष रूप से पुष्टिकर, सहजपाच्य, अनुत्तेजक तथा क्षारधर्मी होना आवश्यक है। इसलिये रोगी का प्रधान पथ्य ही होना उचित है ताजे और सूखे फल, सलाद, दही और मट्ठा। दही भी स्वस्थ गाय से संग्रहीत कच्चे दूध द्वारा जमाना उचित है। रोग की प्रबल अवस्था में और सब खाद्य छोड़कर केवल ये सब पथ्य ही ग्रहण करना उचित है। इन सब खाद्यों के द्वारा ही सन्तुलित (well-balanced) खाद्य शरीर में ग्रहीत हो सकता है। दीर्घ उपवास भी रोगी

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

के लिये अत्यन्त फलप्रद है। यह देखा गया है, उपवास से, क्षारधर्मी खाद्य लेने से, तथा केवल कच्चे खाद्य ग्रहण करने से रोगी की अवस्था विशेष रूप से उन्नति प्राप्त करती है (L. J. A. Loewenthal, M.D., M A.C.P.—The Eczemas, p. 208, London, 1954)। इस जाति के खाद्य और उपवास से रक्तस्रोत साफ होता है, इसी कारण लाभ होता है।

शर्करा जाति के खाद्य रोगी को कम ग्रहण करना उचित है। अधिक मात्रा में भात तथा रोटी खाने से एकजिमा से रस का निकलना बढ़ जाता है (W. F. McClendon—Advances in the Science of Nutrition, p. 194)।

रोगी के लिये चाय, कॉफी, तम्बाकू, हल्दी के अतिरिक्त सब मसाले, अचार, सब प्रकार के तले या भुंजे हुए पदार्थ तथा दुष्पाच्य पदार्थ छोड़ देना उचित है। प्रबल अवस्था में नमक भी सम्पूर्ण रूप से वर्जन करना कर्तव्य है। चीनी से भी परहेज करना आवश्यक है और बदले में मधु ग्रहण करना उचित है।

रोगी के लिये निरामिष खाद्य ही उत्तम हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

दशम अध्याय

पुराना घाव
[Chronic Ulcer]

[१]

साधारणतः थोड़े हा दिनों में सब घाव सूख जाते हैं। किंतु दीर्घ अवधि में भी जब घाव सूखता नहीं तब उसे पुराना घाव कहा जाता है।

ये घाव विभिन्न श्रेणी के होते हैं। जब घाव लाल रंग का होता है, घाव के चारों ओर की त्वचा स्वस्थ रहती है, घाव से अधिक पीब नहीं निकलता, घाव में दुर्गन्ध नहीं रहती, तब उसे साधारण घाव (simple ulcer) कहते हैं। जब घाव क्रमशः बड़ा होता जाता है, जो देखने में लाल हो, जिसमें से सहज ही खून निकलने लगता है, जो चारों ओर से लाल और फूला हुआ हो और जिसमें से गाढ़ा पीब निकलता हो उसे प्रदाहयुक्त घाव (inflammed ulcer) कहा जाता है। इसी प्रकार घाव यदि छूते ही दर्द करने लगे तब उसे उत्तेजक घाव (irritable ulcer) कहा जाता है। जिस घाव का किनारा मोटा और कड़ा हो, जो देखने में निष्प्रभ हो, जिससे थोड़ी मात्रा में और पतला पीब निकलता हो, तथा जो प्रायः ही अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त हो, उसे निस्तेज घाव (callous ulcer) कहा जाता है। इसी प्रकार और भी बहुत श्रेणी के घाव हैं।

ये सब घाव सदा ही बहुत कष्ट दें, ऐसा नहीं। किंतु घाव के रोग में विपत्ति यही है, यदि घाव दीर्घ अवधि तक रहे और वह सन्धि के निकट हो, तब घाव आरोग्य होने के बाद भी अंग-संचालन में अत्यन्त असुविधा होती है। बहुत बार यदि ये सब घाव आसानी से आरोग्य नहीं

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

होते, तब वे कैन्सर में परिणत हो जा सकते हैं। या किसी किसी समय पुराने घाव में तरुण सूजन (acute inflammation) उत्पन्न होती है और वह रोगी की मौत बुला लाती है।

कोई चोट लगने के कारण अथवा किसी दूसरी तरह से शरीर में यदि कोई घाव उत्पन्न हो और यदि वह तुरंत नहीं सूखता, तभी वह पुराने घाव में परिणत हो जाने की सम्भावना रहती है। किंतु शरीर में कोई घाव उत्पन्न होते ही वह असाध्य पुराने घाव में परिणत हो जायगा ऐसा नहीं है। जब शरीर में अत्यधिक विषाक्त पदार्थों का संचय रहता है और प्रकृति घाव को यह विष निकालने के अन्यतम द्वार के हिसाब से व्यवहार करती है अथवा शरीर में अधिक मात्रा में विष के संचार के कारण जब जीवनी शक्ति अत्यन्त क्षीण हो जाती है तथा प्रकृति घाव आरोग्य करने की क्षमता खो बैठती है, तभी साधारण घाव पुराने घाव में बदल जाता है। इसलिये गठिया (gout), सिफलिस, मधुमेह, क्षय और कोष्ठबद्धता आदि रोग से जो भुगतते हैं, जिनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं है तथा जो बूढ़े हो गये हैं, वे ही साधारणतः इस रोग से भुगतते रहते हैं। अतः केवल घाव की चिकित्सा करना ही इसकी चिकित्सा नहीं। घाव के साथ साथ सारे शरीर को विषमुक्त और सबल कर लेना ही इसकी प्रधान चिकित्सा है।

[२]

इसके लिये प्रारम्भ में ही नियमित रूप से नीम के उबाले हुए पत्ते के पानी से डूस, हिप बाथ, गीली कमर की लपेट तथा पेड़ू में मिट्टी की पुल्टिस आदि लेकर कोष्ठ साफ कर लेना आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त रोगी के लिये नीबू के रस के साथ काफी पानी पीना भी कर्तव्य है।

धूपस्नान घाव के रोगी के लिये अत्यन्त फलप्रद है। दोपहर में स्नान के पहले प्रतिदिन कुछ देर के लिये धूपस्नान प्रयोग करके उसके

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

बाद उसे ठंडे पानी से नहाना चाहिये। धूप में रहने पर जब शरीर यथेष्ट मात्रा में गर्म हो जाय, तभी स्नान कर लेना उचित है। आकाश में धूप नहीं रहने पर स्नान के पहले उसे ३ से ६ मिनटों के लिये कुर्सी के भीतर हल्का वाष्पस्नान प्रयोग करना चाहिये। इस समय घाव के ऊपर पानी की पट्टी देना आवश्यक है। स्टीम बाथ लेकर ही शरीर गर्म रहते रहते स्नान कर लेना उचित है।

अपराह्न में प्रतिदिन एक बार हिप बाथ लेना भी विशेष रूप से आवश्यक है।

रोगी को यदि कोई दूषित रोग रहे, तब उसे दूर करना चाहिये। किंतु प्राकृतिक चिकित्सा में साधारणतः एक ही चिकित्सा से सब रोग मिट जाते हैं।

जब इन सब चिकित्सा द्वारा शरीर यथेष्ट मात्रा में विकार-रहित हो जाता है तब सामान्य स्थानीय चिकित्सा से ही रोगी आरोग्य प्राप्त करता है।

घाव आरोग्य करने का प्रधान उपाय ही है घाव के ऊपर दिन में एक बार ५ से १० मिनटों के लिये सेंक देकर बाद में ठंडे पानी की पट्टी बाँधकर उसे हर एक घंटे के बाद बार बार बदल देना। इसके अतिरिक्त बलुआही मिट्टी की आधी इञ्च मोटी पुल्टिस भी फ्लानेल से ढककर घाव के ऊपर दिन में दो बार देना आवश्यक है। इससे घाव बहुत जल्दी आरोग्य होता है। किंतु घाव के ऊपर मिट्टी की पट्टी प्रयोग करने में सदा ही मिट्टी एक घंटे के लिये खौलाकर तथा बाद में ठंडी करके प्रयोग करनी चाहिये। इसके अतिरिक्त हर एक घंटे पर यह घाव से हटा लेना उचित है। कारण मिट्टी की पट्टी इतना विष खींच लेती है कि एक घन्टे में घाव के विष से मिट्टी की पट्टी तर (saturated) हो जाती है। इसके बाद भी यह पट्टी रखने पर वह और विष तो ग्रहण नहीं कर सकती, उल्टे वह दुबारा शरीर में विष दे देती है। इसलिये घाव के ऊपर दीर्घ समय के लिये मिट्टी या कपड़े की पुल्टिस रखने से घाव

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

अच्छा होने में बहुत समय लेता है। उत्तेजक और सूजे हुए घाव की यही प्रधान चिकित्सा है।

यदि हाथ में या पाँव में निस्तेज घाव उत्पन्न हो तथा उसे पानी में डुबाने की सुविधा हो तब सुदीर्घ समय के लिये उसे हल्के गर्म पानी (९२° से ९७°) में डुबाए रखने से विशेष लाभ होता है, किंतु पानी जिसमें कभी भी बहुत गर्म या ठंडा न हो। अन्य स्थान में निस्तेज घाव उत्पन्न होने से दीर्घ समय तक घाव के ऊपर हल्के गर्म पानी की सेंक दी जा सकती है। इस प्रकार की चिकित्सा के बाद घाव की अवस्था जब उन्नत होती है तब उल्लिखित पद्धति से साधारण घाव की चिकित्सा करने से ही घाव आरोग्य प्राप्त करता है। इन सब दूषित घावों को साधारण घाव में रूपान्तरित करना ही चिकित्सा का प्रधान उद्देश्य है। जब इतना कर दिया जाता है, तब बाकी काम प्रकृति स्वयं कर लेती है। (Encyclopædia Medica, Vol. 13, p. 53)।

द्रुत आरोग्य प्राप्त करने के लिये रोगी को पूर्ण विश्राम ग्रहण करना आवश्यक है। घाव यदि हाथ या पाँव में हो तब हाथ या पाँव को एक तकिये के ऊपर हार्ट से ऊँचे स्थान पर रखना चाहिये।

पुराना घाव कभी भी सदा के लिये ढककर रखना उचित नहीं। उससे उसके भीतर पीब उत्पन्न होता है तथा घाव अच्छा होने में बहुत समय लेता है। पानी की पट्टी आदि घाव के ऊपर केवल तब तक रखना उचित है, जब तक वह आरामप्रद हो।

घाव सदा ही साफ रखना आवश्यक है। इसके लिये दिन में कम से कम एक बार घाव और घाव के चारों ओर कुछ दूर तक का स्थान साफ पानी से धो देना चाहिये। घाव के चारों ओर के रोओं को भी सावधानी के साथ जड़ से काट देना आवश्यक है। बाहर निकलते समय एक कपड़े में मधु लगाकर घाव के ऊपर प्रयोग किया जा सकता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

[३]

रोगी का पथ्य इस प्रकार का होना उचित है जो अनुत्तेजक, सहज-पाच्य, पुष्टिकर और क्षारधर्मी हो। इसके लिये उसे यथासम्भव ताजे और सूखे फल, फलों का रस, सलाद (salad), उबाली हुई तरकारी और हरी साग-सब्जियों का जूस देना चाहिये। रोग को प्रबल अवस्था में (acute stage) इस प्रकार का खाद्य खाकर रहना ही उचित है। इसके बाद एक शाम भात और एक शाम हाथ-चक्की में पिसे हुए आटे की रोटी उल्लिखित पथ्य के साथ खाई जा सकती है। इस रोग में प्रतिदिन थोड़ा लहसुन लेना चाहिये।

इस रोग में मछली, मांस, अंडे, चाय, काफी, गर्म मसाला, अधिक मसाला तथा सब प्रकार के उत्तेजक और दुष्पाच्य पदार्थों का सब तरह से परित्याग करना आवश्यक है।

रोगी का पथ्य विशेष रूप से क्षारधर्मी होना उचित है। ऐसा होने से रक्त के श्वेतकणों की कार्यक्षमता तथा शरीर की जीवनी शक्ति बढ़ती है। अतः घाव सहज ही आरोग्य प्राप्त कर लेता है।

इस रोग में दीर्घ उपवास विशेष फलप्रद है। वस्तुतः उपवास के द्वारा आरोग्य न हो सके ऐसा रोग ही नहीं है।

कैंसर
[Cancer]

[१]

यह एक प्रकार का यंत्रणादायक ट्यूमर है। यह कभी कभी चमड़े के ऊपर और कभी कभी भीतरी यंत्रों में प्रकाश पाता है। साधारणतः ओठ, जीभ, स्तन, पाकस्थली, आँत, बच्चादानी और पाखाने के छिद्र आदि में इसका प्रकाश होता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

जब यह बाहर के चमड़े के निकट होता है तब यह सख्त और ऊँचा हो जाता है। पीछे वह फट जाता है और घाव पैदा करता है। भीतरी कैंसर भी नाना भाव से देह के भीतर विस्तार पाता है। इस रोग का प्रधान लक्षण वेदना है। जब कैंसर में घाव उत्पन्न होता है, तब रोगी अत्यन्त दुर्बल हो जाता है।

विभिन्न कारणों से इस रोग की उत्पत्ति होती है। कभी कभी पुराना घाव ही इस रोग में परिणत हो जाता है। जो लोग अत्यधिक तम्बाकू खाते हैं, अनेक समय उनके होंठ में या फेंफड़े में यह रोग लग जाता है। अत्यधिक शराब पीनेवालों के गला अथवा पाकस्थली में कभी कभी यह रोग उत्पन्न हो जाता है। एकजिमा छुड़ाने के लिये अलकतरा के व्यवहार से कभी कभी कैंसर पैदा होता है।

किंतु ये सब रोग के उपलक्ष मात्र हैं। एक जानकार डाक्टर ने कहा है कि देह अत्यधिक पुराना, अव्यवहार्य, विजातीय और दूषित पदार्थ से पूर्ण न हो तो यह रोग ही नहीं होता (Melville C. Keith, M.D.—Cancer, p. 100)।

स्वभावतः अत्यन्त गर्म खाद्य को पाकस्थली के कैंसर का अन्यतम कारण बताया जाता है। But recent views of cancer of the stomach are that it never arises from healthy tissue, but from degeneration—किंतु पाकस्थली के कैंसर के सम्बन्ध में आधुनिक मत यही है कि स्वस्थ तंतुओं के भीतर कभी भी कैंसर जन्म नहीं लेता। देह की खराब अवस्था से ही वह उत्पन्न होता है (John Cope—Cancer : Civilisation, p. 131)।

जो दूषित पदार्थ देह को खराब करते हैं, अधिकांश समय वे आँत से आते हैं। इस विषय में एक विशेषज्ञ ने कहा है, "अपनी लम्बी जानकारी से मैं कह सकता हूं कि कोष्ठबद्धता के साथ इस रोग का विशेष

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

सम्पर्क है। कैंसर के हर एक रोगी को कोष्ठबद्धता की शिकायत रहती है। जब उन लोगों की कोष्ठबद्धता बहुत बढ़ जाती है, तब साथ ही साथ दर्द भी बढ़ता है। किंतु पेट साफ हो जाने पर दर्द भी कम हो जाता है। इसलिये यह साचना अन्याय नहीं है कि आँत में रुके हुए मल का दूषित रस ही इस रोग का कारण है (Dr. L. D. Bulkeley, Head of the New York Cancer Hospital—Medical Treatment of Cancer, p. 257)।

अन्य किसी भाँति भी देह के भीतर अत्यधिक दूषित, कूड़ा-कर्कट और विजातीय पदार्थों का संचय होने से भी यह रोग हो सकता है। इसलिये मध्य वयस के पहले यह रोग प्रायः देखा नहीं जाता और प्रधानतः ५० से ६० वर्षों के भीतर की अवस्था में, जिस समय देह में बहुत-से दूषित पदार्थों का संचय हो जाता है, तभी यह रोग अधिक होता है। इसी कारण से जो अधिक खाते हैं और बहुत ज्यादा मांस खाते हैं, उन्हें ही यह रोग होता है।

इसलिये यद्यपि इस रोग का प्रकाश किसी खास अंग में ही होता है, तो भी यह समूचे शरीर का ही रोग है और आक्रान्त अंग के उपचार के साथ ही साथ देह को दोषमुक्त और संजीवित कर देना ही इसकी प्रधान चिकित्सा है।

[२]

साधारणतः इस रोग में शस्त्र द्वारा शरीर से ट्यूमर को काटकर फेंक दिया जाता है, किंतु the surgical treatment is worse than futile in cancer—कैंसर में शस्त्र-चिकित्सा असफलता से भी अधिक खराब है (Robert Bell, M.D., F.R.F.P.S.—The Prevention and Treatment of Cancer, p. 14)। शस्त्र-चिकित्सा से कभी कोई कैंसर आरोग्य नहीं हुआ है और कभी होगा भी नहीं। वरन् इसके फलस्वरूप मृत्यु-संख्या बढ़ गयी है

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh
(Ibid., p. 20)। डाक्टर रावर्ट वेल ने और भी कहा है, "सत्रह वर्षों तक मैंने अपने कैंसर-रोगियों की शस्त्र-चिकित्सा ही की है, लेकिन उसके बाद मैंने शस्त्र-चिकित्सा छोड़ दी है। इसका कारण यह है कि मैंने सर्वदा देखा है कि शस्त्र-क्रिया के बाद रोग फिर लौट आता है और उसके फलस्वरूप रोगी के कष्टों की सीमा नहीं रहती (Ibid., p. 7)।

इसलिये केवल रोग की स्थानीय चिकित्सा ही यथेष्ट नहीं है। जिस कारण से देह में कैंसर होना सम्भव होता है, उसीको देह से दूर करना जरूरी है। इस उद्देश्य साधन के लिये पहले ही हिप बाथ, सीज बाथ, पेट की लपेट, डूस, स्टीम बाथ, भींगी चादर की लपेट, पानी पीना, उपवासी रहना और जितना अधिक देर तक हो सके खुले स्थान में रहना आदि उपायों से देह को दोषमुक्त करना आवश्यक है। गाँठ (tumour) ऊपर के हिस्से में होने से प्रतिदिन स्नान के पहले एक घंटे के लिये पैर की पट्टी लगाना उचित है और हिप बाथ लेने के समय दोनों पैरों को गर्म पानी में डुबाकर माथे पर भींगा गमछा रखना कर्तव्य है। प्रत्येक दिन दो बार हिप बाथ लेना जरूरी है। रोगी को महीने में दो बार पूरे समय के लिये स्टीम बाथ और हफ्ते में दो बार भींगी चादर का पैक देना कर्तव्य है। इस समय कैंसर के ऊपर मोटी और कुछ बड़ी पानी की पट्टी प्रयुक्त करना आवश्यक है। प्रतिदिन स्नान के पहले धूपस्नान आदि लेकर शरीर को गर्म कर लेना उचित है। अथवा उसे ६ मिनटों तक स्टीम बाथ लेना चाहिये।

इन सभी इलाजों का दूसरा प्रधान उद्देश्य यह है कि, पेट को साफ रखना, पेशाब खुला-सा कर देना, लोमकूपों को खोलना और स्नायु-समूहों को इस भाँति सबल और उद्दीपित करना कि वह रोग के विष को शरीर से झाड़कर बाहर निकाल दे।

इस समूची देह की चिकित्सा के साथ ही साथ स्थानीय चिकित्सा करने से ही रोग आरोग्य होता है। रोग की प्रथम अवस्था में गाँठ के ऊपर अगर दिन में दो दफे गर्म सेंक देकर अवशिष्ट समय के लिये मिट्टी

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

की ढकी हुई पुलटिस या मोटे भींगे चिथड़े की ढकी हुई लपेट ठंडे पानी में भिगाकर प्रयोग किया जाय और प्रत्येक एक से दो घंटे के अन्तर से उसे बदल दिया जाया करे तो विशेष फल होता है। सूजन यदि जरायु आदि भीतरी यंत्रों में हो तब भी दिन में दो दफे पन्द्रह मिनटों से आध घंटे तक के लिये चर्म के ऊपर सेंक देकर अवशिष्ट समय के लिये इसी तरह की ठंडी पुलटिस या पट्टी प्रयुक्त करना कर्तव्य है। सम्भव हो तो सर्वदा ही मिट्टी की पुलटिस का व्यवहार करना उचित है। समूची देह की चिकित्सा के साथ ही साथ एक मात्र मिट्टी की पुलटिस के व्यवहार से ही बहुत-से दुरारोग्य कैंसर के रोगी आरोग्य हुए हैं (Nature-cure Educational Association—The Health and Nature-cure Handbook, p. 58)।

कैंसर के प्रबल दर्द को बन्द करने में बर्फ के समान कारगर और कुछ भी नहीं है। अगर कहीं बर्फ न मिल सके तो ख़ूब ठंडे पानी की पट्टी अथवा ठंडी कादो मिट्टी चढ़ाकर गर्म होते ही उसे बदल दिया जा सकता है। अगर क्षत से ख़ून निकलता हो तो भी जब तक ख़ून निकलना बन्द न हो, तब तक ऐसी ही पट्टी प्रयुक्त करते रहना कर्तव्य है। अगर घाव से ख़ून निकलने लगे तो सेंक बन्द रखना उचित है।

[२]

रोगी का पथ्य विशेष भाव से सहजपाच्य, अनुत्तेजक, पुष्टिकर और क्षारधर्मी होना आवश्यक है। रोग प्रारम्भ होने के साथ ही भात और रोटी बन्द करके केवल फलों का रस, मट्ठा, पानी के साथ मधु, ताजा और सूखे फल तथा कच्ची तरकारियों का व्यंजन (salad) खाकर रहना उचित है। जब तक रोग से छुटकारा न मिले तब तक यही पथ्य चलाना चाहिये।

इस रोग में उपवास अत्यन्त फलप्रद होता है। किंतु दो-एक दिन के उपवास से काम नहीं चलता। इस कठिन रोग को आराम करने के

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

लिये बार बार नियमानुसार सुदीर्घ दिनों के लिये उपवास करना जरूरी है (Upton Sinclair—The Fasting Cure, p. 40)। यह स्मरण रखना चाहिये कि इस रोग में उपवास ही प्रधान चिकित्सा है। उपवास काल में नीबू के रस के साथ काफी पानी पीना चाहिये। अन्य समयों में भी प्रतिदिन नीबू के रस के साथ कम से कम तीन सेर पानी पीना आवश्यक है।

रोगी को सर्वदा भूख से कम खाना उचित है और नित्य ही नवीन खाद्य (फल तथा सलाद आदि) खाना चाहिये। विभिन्न वैज्ञानिकों ने पृथक् पृथक् भाव से गवेषणा करके देखा है कि जिन चूहों के शरीर में कृत्रिम उपायों से कैंसर उत्पन्न कर दिया गया था, उन्हें कम खाने को देने से अथवा बदलकर भोजन देने से कैंसर का बढ़ाव रुक जाता था (William Edward Fitch, M.D.—Diatotherapy, Vol. III, p. 570)। वास्तव में यह अपेक्षाकृत अवस्थापन्न सम्प्रदाय की व्याधि है। जो लोग अधिक खाते हैं और काफी परिश्रम नहीं करते, साधारणतः उन्हें ही यह रोग होता है।

रोगी को मांस, मछली, चाय, काफी, तम्बाकू, मद्य, विनेगार, सरसों, लालमिर्च, मसाले, गर्म मसाले एवं कचौड़ी और सिंघाड़ा वगैरह छोड़ देना कर्तव्य है। रोगी को इस तरह का पथ्य लेना उचित है, जो पचकर आँत में विष न उत्पन्न करे। कैंसर से छुटकारा पाने का वे ही सबसे श्रेष्ठ उपाय है (J. H. Kellogg, M.D.—The New Dietetics, p. 909, Washington, 1923)।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

एकादश अध्याय

जननेन्द्रिय के रोग

स्वप्नदोष

[Wet dreams]

[१]

जीवन में किसी न किसी समय इस रोग का प्रकाश न हो, ऐसे लोग विरल हैं। यह कुछ कुछ शरीर-धर्म के अन्तर्गत है। जब दस-बारह दिन बाद बाद स्खलन होता है, तभी इसको रोग कहा जाता है (Encyclopædia Medica, Vol. XII, pp. 131—5)। जब ऐसा होने के बाद किसी प्रकार की दुर्बलता अनुभव नहीं होती, तब उसे कोई रोग जैसा गिनना उचित नहीं। किंतु जब ऐसी अवस्था के बाद सिर चकराना, सिरदर्द, दुर्बलता अथवा किसी विषय पर एकाग्रता में असमर्थता प्रकट हो, तब तुरन्त उसकी चिकित्सा की व्यवस्था करनी चाहिये। अन्यथा इसके फलस्वरूप स्नायविक दुर्बलता, धातु-दौर्बल्य तथा नपुंसकता आदि रोग प्रकट हो सकते हैं।

शुरू शुरू में यह रोग प्रायः ही स्वप्न के साथ वर्तमान रहता है, इसीलिये इसे स्वप्नदोष कहते हैं। किंतु कुछ दिन के बाद जननेन्द्रिय इतनी दुर्बल हो जाती है और इतनी सहज उत्तेजित होती है कि नींद में बिना स्वप्न के ही यह रोग प्रकट होता है।

साधारणतः प्रथम यौवन के असंयम के फलस्वरूप ही यह रोग उत्पन्न होता है। विभिन्न प्रकार के अस्वाभाविक उपायों द्वारा जो जीवन और स्वास्थ्य की अमूल्य सम्पदा नष्ट कर डालते हैं, वे ही साधारणतः इस रोग से आक्रान्त हो जाते हैं। कुचिन्ता यह रोग उत्पन्न

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

करने में विशेष रूप से सहायता करती है। किंतु विवाहित जीवन में भी अत्यधिक असंयम के कारण यह रोग प्रकट होता है। बहुत लोग इन्द्रिय शक्ति बढ़ाने के लिये कस्तूरी और अश्वगन्धा आदि उत्तेजक औषधि व्यवहार करते रहते हैं। वे प्रायः सदा ही इस रोग से आक्रान्त होते हैं। विभिन्न रोगों के लिये नाना प्रकार की उत्तेजक औषधियों के व्यवहार से भी यह रोग उत्पन्न हो जाता है। बहुधा कोष्ठबद्धता और पेट में गर्मी से इस रोग का आक्रमण होता है। अर्थात् जनन-यंत्र की दुर्बलता, जनन-यंत्र परिचालक स्नायविक केन्द्र (erection and emission centre) की अस्वाभाविक उत्तेजित अवस्था तथा शरीर का अतिरिक्त ताप प्रायः सदा ही इस रोग के साथ वर्तमान रहते हैं। इसलिये विभिन्न यंत्रों को सबल कर लेना, स्नायविक केन्द्र का उत्तेजित भाव दूर करना तथा शरीर की आवश्यकता से अधिक भीतरी ताप शरीर से बाहर निकाल देना ही इस रोग की यथार्थ चिकित्सा है।

[२]

यह उद्देश्य विशेष रूप से पूर्ण होता है नियमित रूप से हिप बाथ लेने से। कुछ दिनों तक दिन में दो बार हिप बाथ लेने से विभिन्न यंत्र सबल होते हैं, स्नायविक केन्द्र का उत्तेजित भाव नष्ट होता है, तथा शरीर का भीतरी ताप शरीर से बाहर निकल जाता है। फलस्वरूप बिलकुल स्वाभाविक रूप से अपने आप ही यह रोग मिट जाता है। प्रतिदिन सुबह में तथा सोने के कुछ ही देर पहले पूरे दस मिनटों के लिये हिप बाथ लेना चाहिये। यदि केवल एक बार हिप बाथ लेना हो तब सोने के पहले लेना ही आवश्यक है। रोगी को कोष्ठबद्धता रहने पर कुछ दिन हिप बाथ लेने के बाद कोष्ठबद्धता स्वयं ही छूट जाती है। तो भी पेट गर्म रहने पर बीच बीच में पेड़ू पर गिली मिट्टी की ढकी हुई लपेट ग्रहण करनी चाहिये। ठंडे पानी से डूस लेने पर भी इस रोग में विशेष लाभ होता है। हिप बाथ लेने की सुविधा नहीं रहने पर

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्रतिदिन स्नान के पहले रोगी को पेड़ू और निम्न मेरुदंड के ऊपर दस-बारह लोटा पानी डालकर उसके बाद स्नान करना चाहिये।

किंतु इस रोग की प्रधान चिकित्सा ही है एक घंटे के लिये गीली चादर का लपेट देकर उसके बाद आधे घन्टे के लिये घर्षण स्नान देना। पेट साफ रखकर केवल इसी प्रकार लपेट देने से ही यह क्षयकारी रोग से छुटकारा पाया जा सकता है। इस लपेट (pack) में खूब मोटी चादर व्यवहार करनी चाहिये। यदि शरीर का भीतरी ताप बहुत अधिक हो तब बीच बीच में बीस से तीस मिनटों के लिये गीली चादर के पैक से विशेष लाभ होता है।

इन सब चिकित्सा के साथ रोगी के निम्न मेरुदंड (sacrum) के अन्तिम भाग पर स्नान या हिप बाथ के पहले, कई एक दिनों तक एक मिनट सेंक के बाद एक मिनट ठंडा देकर छः से आठ मिनटों के लिये गर्म-ठंडा प्रयोग करना चाहिये। इससे थोड़े ही दिनों में जनन-यंत्र परिचालक स्नायविक केन्द्र सबलता प्राप्त कर लेता है। अतः स्वप्नदोष होना ही बन्द हो जाता है। यही इस रोग की एक प्रधान चिकित्सा है।

इस रोग में आसन अत्यन्त फलप्रद है। विशेषतः उड्डीयान और नौली अत्यन्त हितकर हैं। यह कुछ दिन अभ्यास करने से वीर्यकोष (seminal sacks) में संचित अतिरिक्त वीर्य शरीर में पुनः शोषित होता है। अतः नींद की अवस्था में उथल नहीं पड़ सकता है (Swami Kuvalayananda—Yogamimansa, Vol. II, p. 271, Bombay, 1926)। कुछ दिनों तक उड्डीयान, नौली और सर्वांगासन अभ्यास करने से जनन-यंत्र बिलकुल नया हो जाता है।

रोगी के लिये प्रतिदिन फल के रस के साथ पर्याप्त मात्रा में पानी पीना कर्तव्य है तथा प्रतिदिन दो बार स्नान करना आवश्यक है।

मुसलमान लोग जिस प्रकार वजू करते हैं, उसी प्रकार दोनों पाँव और हाथ तथा गर्दन और कान के पीछे की ओर अच्छी तरह धोकर सोना चाहिये। इससे शरीर विशेष रूप से ठंडा रहता है। यह रोग

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh
रहने पर कभी भी चित होकर या पेट के बल सोना उचित नहीं तथा सदा ही बाएँ करवट सोना कर्तव्य है।

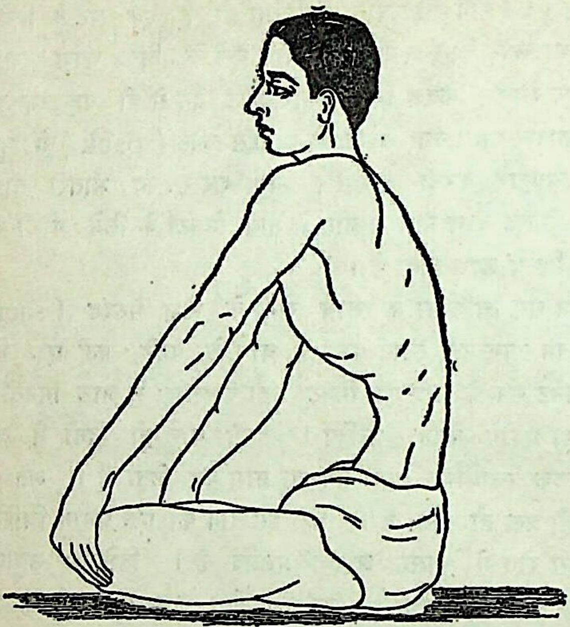

उड्डीयान

छात्रों को रात में किताब बन्द करने के बाद ही सो जाना उचित नहीं। पढ़ने-लिखने के बाद खुली हवा में कुछ मिनटों के लिये टहल-कर उसके बाद सोना आवश्यक है। क्रोध आदि के द्वारा किसी प्रकार की उत्तेजित अवस्था में सोना कभी भी उचित नहीं। यथेष्ट मात्रा में शान्त मन से ही सोने जाना चाहिये। जिसमें सदा ही गाढ़ी नींद हो इसकी ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। सोने के पहले पेशाब करके सोना उचित है तथा रोगी को यथासम्भव खुले स्थान में अथवा कमरे की खिड़कियाँ खुली रखकर सोना आवश्यक है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

पौ फटने के पहले नींद खुल जाने पर फौरन बिस्तरा छोड़कर टहलने निकल जाना उचित है। भोर में उठकर टहलना इस रोग के लिये अत्यन्त हितकर है। यदि भोर के पहले नींद टूट जाने पर भी तंद्राच्छन्न अवस्था में पड़ा रह जाय तो रोग के प्रकट होने की विशेष सम्भावना रहती है। यदि आधी रात में कभी भी नींद टूट जाये तथा शरीर गर्म हो उठे, तब तुरन्त बिछावन छोड़कर सारा शरीर गीली तौलिया से पोंछकर ठंडा करके फिर सो जाना उचित है।

सब प्रकार के बुरे अभ्यास, यहाँ तक कि बुरे विचार आदि जो मन को चंचल और उत्तेजित करते हैं उनसे भी परहेज करना चाहिये। संयत जीवन का अभ्यास ही इस रोग की सर्वप्रथम चिकित्सा है। ऐसा नहीं करने पर किसी भी चिकित्सा से रोग आरोग्य नहीं प्राप्त करता।

[३]

रोगी के पथ्य के ऊपर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिये। पथ्य हमेशा जल्दी पचनेवाला तथा अनुत्तेजक होना आवश्यक है। प्रचुर मात्रा में फल, फलों का रस, सलाद और दही तथा मट्ठा खाना रोगी का कर्तव्य है। रात का भोजन सदा ही सोने के तीन-चार घंटे पहले ग्रहण करना आवश्यक है। रोगी को मांस, प्याज, लहसुन, गर्म मसाला, अत्यधिक मसाला, चाय, काफी, तम्बाकू तथा सब प्रकार के उत्तेजक पदार्थ विशेष रूप से छोड़ देना चाहिये। यदि खाया हुआ पदार्थ अच्छी तरह हजम न हो तथा पेट गर्म हो उठे तब रोग के आक्रमण की विशेष सम्भावना रहती है।

धातु-दौर्बल्य

[Seminal Weakness]

[१]

जिस अवस्था में बिना उत्तेजना के या तनिक उत्तेजना से स्खलन

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

होता है अथवा उत्तेजना के समय द्रुत स्खलन होता है, उसे धातु-दौर्बल्य कहा जाता है। यह रोग बढ़ जाने पर अन्त में ऐसा होता है कि मलत्याग के समय कूँथने से, पेशाब के अन्त में, घोड़े पर चढ़ने से अथवा सामान्य तनिक उत्तेजना का कारण होने से ही यह रोग प्रकट होता है।

अस्वाभाविक उपाय से बहुत दिनों तक इन्द्रिय सेवा के कारण अथवा स्वाभाविक रूप से ज्यादातर इन्द्रियासक्त रहने के कारण यह रोग हो जाता है। अत्यधिक इन्द्रिय सेवा करने से शुक्र-निर्माणकारी कोष (semen secretory cells) दुर्बल हो जाते हैं। तब वे गाढ़े वीर्य को उत्पन्न नहीं कर सकते और वीर्य पतला हो जाता है। इस अवस्था में शीघ्र ही स्खलन हो जाता है। जो स्नायुकेन्द्र शुक्र की गति नियमित करता है (ejaculation centre), उसकी अत्यधिक उत्तेजित अवस्था में भी धारण-क्षमता (retentive power) नष्ट कर देती है। पुराना सुजाक, मूत्राशय में सूजन तथा पेट में कृमि रहने पर यह रोग बहुत बढ़ जाता है। बहुधा कोष्ठबद्धता तथा पेट की गर्मी इस अवस्था को बढ़ा देती हैं। किंतु अधिकांश अवस्था में शरीर की विकारयुक्त अवस्था ही इस रोग का मूल कारण है। जब अत्यधिक परिश्रम से थके हुए जनन-यंत्र देह-संचित विभिन्न विषाक्त पदार्थों द्वारा आक्रान्त होते हैं, तभी यह रोग स्थायी होता है। अतः शरीर को विकार-रहित करना, स्नायविक केन्द्र का उत्तेजित भाव नष्ट करना तथा शरीर को सबल बना लेना ही इसकी चिकित्सा है।

[२]

इसके लिये पहले ही कोष्ठ को साफ कर लेने की जरूरत है तथा सदा के लिये साफ रखना आवश्यक है। बहुधा दूषित मल का रस ही जनन-यंत्र की बहुत ही अधिक उत्तेजित और दुर्बल अवस्था ले आता है। इसलिये इस रोग में हिप बाथ अत्यन्त फलप्रद है। हिप बाथ केवल कोष्ठ

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

साफ करता हो, यही नहीं, उसके द्वारा स्नायविक केन्द्र की अस्वाभाविक उत्तेजित अवस्था दूर होती है तथा जनन-यंत्र सवलता प्राप्त करते हैं। हिप बाथ लेने के समय उरू-सन्धि आदि स्थान विशेष रूप से रगड़ना आवश्यक है। रोगी को दिन में दो वार दस मिनट करके यह बाथ ग्रहण करना चाहिये। वस्तुतः हिप बाथ ही इस रोग की प्रधान चिकित्सा है।

किंतु इस रोग में विशेष सावधानी से हिप बाथ का अभ्यस्त होना आवश्यक है। पहले पहल कुछ दिनों तक पानी की गर्मी समशीतोष्ण होने की आवश्यकता है। इसके बाद जब रोगी को इसका पूरा अभ्यास हो जाय तो पानी की गर्मी क्रमशः स्वाभाविक कर डालना चाहिये। बहुत बार ठंडे पानी में हिप बाथ न देकर समशीतोष्ण पानी में सुदीर्घ समय के लिये हिप बाथ लेने से ही लाभ अधिक होता है। रोगी इच्छा करने पर सोने के पहले आधे घंटे से एक घण्टे तक समशीतोष्ण पानी में (ठंठे या गर्म पानी में नहीं) हिप बाथ ले सकता है। हिप बाथ लेने के पहले सदा ही निम्न रीढ़ में कुछ देर के लिये गर्म-ठंडा ग्रहण करना चाहिये। पेड़ू पर मिट्टी की पुल्टिस तथा ठंडे पानी का डूस भी विशेष फलप्रद हैं।

इस रोग में सुदीर्घ समय के लिये स्टीम बाथ कभी भी ग्रहण करना उचित नहीं। इसके बदले बीच बीच में पूरे एक घण्टे के लिये गीली चादर का पैक लेकर उसके बाद घर्षण स्नान (cold friction) लेने से विशेष लाभ होता है।

नीबू के रस के साथ रोगी को प्रतिदिन बहुत पानी पीना भी कर्तव्य है तथा दिन में दो बार स्नान करना आवश्यक है। यदि रोगी को विशेष रूप से स्नायविक उत्तेजना (general nervous irritability) रहे तब सोने के पहले सुदीर्घ समय के लिये समशीतोष्ण पानी से स्नान करने पर विशेष लाभ होता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

स्नान के समय सदा ही रोगी को निम्न रीढ़ पर और पेट पर ऊँचे से ठंडे पानी की धार गिरानी चाहिये।

यदि रोगी को प्रायः ही स्खलन होता हो, तब सोते समय रोगी के सिर के नीचे की ओर (against the base of the skull) एक बर्फ की थैली (ice bag) रख देने से रोगी को विशेष लाभ होता है। यह सुदीर्घ समय के लिये रखना आवश्यक है। जब तक रोगी तकलीफ न महसूस करे, तब तक के लिये ही इसे रखना चाहिये।

इसके साथ रोगी का शरीर गठन कर लेना विशेष रूप से आवश्यक है। क्रमशः बढ़ानेवाला व्यायाम रोगी के लिये अत्यन्त आवश्यक है। पेड़ू के व्यायाम अत्यन्त प्रयोजनीय हैं। बिछावन पर लेटकर धीरे धीरे पाँव को उठाकर और गिराकर तथा धीरे धीरे सिर उठाकर हाथ की उँगलियों द्वारा पाँव की उँगलियाँ छूके तथा फिर लेटकर साधारणतः पेट का व्यायाम ग्रहण किया जाता है। इस रोग में ये व्यायाम गुदामार्ग सिकोड़कर ग्रहण करना चाहिये। जब गुदामार्ग सम्पूर्ण रूप से संकुचित रखकर दीर्घ समय ये व्यायाम ग्रहण किये जाते हैं तब धारण-क्षमता भी सम्पूर्ण इच्छाधीन हो जाती है। कारण गुदामार्ग को सिकोड़ने से मूत्रद्वार से इच्छानुकूल समय तक मूत्र या अन्यान्य सब स्राव का निकलना बन्द रक्खा जाता है (M. S. Gambers—Seminal Disorders, pp. 5—16)।

रोगी को जल्दीबाजी और व्यस्तता वर्जित रखना कर्तव्य है तथा कुछ देर तक शवासन का अभ्यास करना उचित है। अन्यान्य आसन भी इस रोग के लिये अत्यन्त हितकर हैं। जो सब आसन रीढ़ और पेट को सबल करते हैं, जैसे उत्थान-पादासन, शलभासन, भुजंगासन और हलासन आदि आसन अत्यन्त फलप्रद हैं। सर्वांगासन इस रोग की एक प्रधान चिकित्सा है। इन आसनों का प्रतिदिन दस मिनट तक अभ्यास करने से अक्षय यौवन प्राप्त होता है तथा खोया हुआ यौवन और विनष्ट जीवनी शक्ति लौट आती है (S. Sundaram—Yogic Physical

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

Culture, p. 35, Bangalore, 1921)।

ये आसन और व्यायाम सदा ही यथासम्भव खुली हवा में ग्रहण करने चाहिये। जिसमें गाढ़ी नींद प्राप्त हो इसकी ओर विशेष ध्यान देना आवश्यक है। इसके लिये खुले बरामदे में या कमरे की खिड़कियाँ खुली रखकर कमरे के भीतर सोने की जरूरत है। इसके साथ कुछ दिन के लिये जननेन्द्रिय को विश्राम देना नितान्त आवश्यक है। कुछ दिन विश्राम देने पर विभिन्न यंत्र स्वयं दुबारा नये सिरे से गठित हो उठते हैं। प्रकृति सदा ही शरीर का संस्कार करने के लिये व्यस्त रहती है। जब दुर्बल यंत्र को विश्राम दिया जाता है तभी केवल उसके भीतर वह संस्कार-कार्य करने में समर्थ होती है।

इन सब व्यवस्था से धीरे धीरे रोग आरोग्य हो जाता है तथा रोगी की धारण शक्ति (retentive power) क्रमशः बढ़ जाती है।

किंतु क्षमता अर्जित होने पर भी क्षमता का अतिरिक्त व्यवहार करना कभी भी उचित नहीं।

[३]

रोगी का पथ्य सदा ही अनुत्तेजक और सहजपाच्य होना आवश्यक है। यह रोग भी कुछ अंश में स्नायविक रोग के अन्तर्गत है। इसलिये स्नायविक रोग का जो पथ्य है इस रोग का भी वही पथ्य होना उचित है (मानसिक दुर्बलता देखिये)। इस रोग की अन्तिम अवस्था में प्रायः ही रोगी की शुक्र-बीज (spermatozoa) उत्पन्न करने की क्षमता नष्ट हो जाती है अर्थात् और सब क्षमता रहते हुए भी बाँझपन (sterility in man) आ जाता है। इसलिये विटामिन-ई-प्रधान खाद्य उसके लिये खाना आवश्यक है। कारण ई-विटामिन बाँझपन दूर करता है तथा इसके अभाव में बहुत बार बाँझपन उत्पन्न होता है। रोगी को इसीलिये यथेष्ट परिमाण में केला और लेटूस साग ग्रहण करना चाहिये। रोगी के लिये बी-विटामिन-प्रधान खाद्य भी ग्रहण करना

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

उचित है। कारण इनके अभाव में भी बाँझपन आदि रोग उत्पन्न होते हैं। इस जाति के रोग में कंचा धारोष्ण दूध, मक्खन, दही, मट्ठा, छेना, अंगूर, केला, मिश्रीकन्द, बथुआ साग, आलू, परवल, लौका और उड़द आदि दाल पथ्य तथा औषधि दोनों ही हैं। कारण इन सब पथ्यों से यथेष्ट मात्रा में शुक्र उत्पन्न होता है। विवाहित जीवन में जब व्यय अपरिहार्य है तब शुक्रवर्धक खाद्य ग्रहण करके शुक्राशय (seminal vesicles) का संचय पूर्ण रखना आवश्यक है। अन्यथा नपुंसकता (impotence) प्रकट हो सकती है। किंतु सदा ही ध्यान रखना उचित है पथ्य जिसमें अनुत्तेजक हो। कारण जिस पथ्य से उत्तेजना आती है, वही रोग बढ़ा देता है। रोगी का कोष्ठ जिसमें साफ रहे ऐसे खाद्य ग्रहण करना भी नितान्त आवश्यक है। इसके लिये रोगी को काफी फल और सलाद लेना चाहिये।

नपुसकता
[Impotence]

[१]

नपुंसकता कभी कभी परिपूर्ण रूप से प्रकट होती है या कभी आंशिक रूप से इसका प्रकाश होता है। विभिन्न कारणों से यह रोग उत्पन्न होता है। इनमें अत्यधिक इन्द्रिय-सेवा, विशेषतः अस्वाभाविक उपायों से शक्ति का क्षय (self-abuse), मधुमेह, स्थूलता तथा सुदीर्घ अवधि का अजीर्ण आदि विभिन्न रोग, अत्यधिक मात्रा में अफीम या तम्बाकू सेवन आदि प्रधान हैं। तम्बाकू पहले पहल सामान्य मात्रा में इन्द्रिय की क्षमता बढ़ाता है, किंतु परिणाम में बहुधा वह आंशिक अथवा परिपूर्ण रूप से क्षमता नष्ट कर देता है। बहुत अवस्था में बाल-विवाह ही इसका प्रधान कारण होता है (Dr. Craddock, M.B.—An Introduction to General Practice,

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

p. 474, London, 1953)। यह एक प्रकार का स्नायविक रोग है (sexual neurasthenia)। जो स्नायु जननेन्द्रिय का परिचालन करते हैं, उनकी दुर्बलता ही इसका कारण है। किंतु स्नायु भी शरीर के अंश मात्र हैं। जब शरीर में विभिन्न दूषित पदार्थों का संचय होता है तथा उनके द्वारा स्नायु आक्रान्त होते हैं, तभी यह रोग होता है। अत्यधिक इन्द्रिय-सेवा के फलस्वरूप जनन-यंत्र जब अत्यन्त दुर्बल हो पड़ते हैं तब शरीर के दूषित संचय द्वारा सहज ही वे आक्रान्त हो जाते हैं। अतः स्थानीय चिकित्सा के साथ शरीर को विकार-रहित करके गठित कर लेना ही इसकी यथार्थ चिकित्सा है।

[२]

इसके लिये पहले ही पेट की लपेट तथा हिप बाथ आदि लेकर कोष्ठ साफ कर लेना आवश्यक है। कुछ दिनों तक सारी रात के लिये पेट की लपेट व्यवहार करना नितान्त कर्तव्य है।

रोगी को बीच बीच में एक घंटे के लिये गीली चादर का पैक देकर घर्षण स्नान प्रयोग करना आवश्यक है। दुर्बल शरीर में सजीवता लौटा लाने में इस प्रयोग से बढ़कर और कोई दूसरा साधन नहीं है। रोगी के लिये काफी पानी पीना भी विशेष रूप से कर्तव्य है।

इस रोग में तेल मर्दन अत्यन्त हितकर है। यदि रोगी बहुत ही क्षीण हो तो सरसों के तेल के बदले काड लीवर आयल मर्दन कर सकते हैं। किंतु रोगी का शरीर स्थूल होने पर खाली हाथ से मर्दन करना ही उचित है।

प्रतिदिन रोगी को दो वार थोड़ी देर के लिये स्नान करना आवश्यक है। सदा ही अत्यन्त धीरे धीरे ठंडे पानी का अभ्यस्त होना चाहिये। स्नान के समय रोगी के निचले मेरुदंडपर ऊँचे से शीतल पानी की धार गिराने से विशेष लाभ होता है। स्नान के बाद सूखी मालिश (dry friction) ग्रहण करके सारा शरीर गर्म कर लेना चाहिये।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

स्नान के पहले सदा ही रोगी को थोड़ी देर के लिये फुट बाथ ग्रहण करके अथवा सूर्यताप से शरीर गर्म करके उसके बाद स्नान करना आवश्यक है।

रोगी को प्रतिदिन हिप बाथ ग्रहण करना चाहिये। पहले गुनगुना पानी (८०°) से हिप बाथ आरम्भ करना आवश्यक है तथा प्रतिदिन ५° डिग्री करके पानी की गर्मी घटाकर अन्त में ठंडे पानी (६०°) में बाथ लेना चाहिये। यह बाथ ३ से ८ मिनटों के लिये लेना उचित है।

रोगी को प्रतिदिन निम्नतम रीढ़ (sacrum) के ऊपर ठंडा-गर्म ग्रहण करना उचित है। दो मिनट सेंक के बाद दो मिनट के लिये ठण्डा देकर यह दिन में एक बार तथा एक साथ तीन-चार बार अर्थात् बारह से सोलह मिनटों के लिये ग्रहण करना चाहिये। इसके बाद रोगी को हिप बाथ अथवा साधारण स्नान ग्रहण करना उचित है। इसलिये हिप बाथ या स्नान के पहले ही गर्म-ठण्डा प्रयोग करना चाहिये।

रोगी को एक दिन का बीच देकर एक दिन एक घंटे के लिये टी-पैक (T-pack) ग्रहण करना भी आवश्यक है। खद्दर के तह किये हुए गीले कपड़े के द्वारा सम्पूर्ण जननेन्द्रिय अच्छी तरह ढककर उसे तीन-चार तह फ्लानेल के द्वारा दुबारा ढक देने से तथा ऊपर से कोपीन पहन लेने से ही यह पैक लेना होता है। यदि भीतर में गर्मी अधिक रहे तब गीला कपड़ा थोड़ा मोटा होना आवश्यक है (Henry Lindlahr, M.D.—Practice of Natural Therapeutics, p. 170)। किंतु पैक के भीतर एक हल्के ताप का संचार होना चाहिये, फिर भी वह जिसमें रोगी के लिये किसी अवस्था में कष्टकर न हो।

रोगी की निम्नतम रीढ़ में गर्म-ठण्डा तथा टी-पैक ही इस रोग के लिये अव्यर्थ चिकित्सा (specific) है।

बीच बीच में रोगी की पौरुष ग्रन्थि (prostrate gland) के ऊपर गर्म-ठण्डा लेना भी आवश्यक है। इससे यह ग्रन्थि भी विशेष रूप से उद्दीपन प्राप्त करती है। इस ग्रन्थि के ऊपर इन्द्रिय-क्षमता बहुत अधिक

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

निर्भर करती है। इस ग्रन्थि के रोग होने से बहुत बार इन्द्रिय की क्षमता लुप्त हो जाती है। यह जननेन्द्रिय के थोड़ा ऊपर मूत्राशय (urinary bladder) और मूत्रनली के संयोगस्थल में स्थित है। जननेन्द्रिय के नीचे से मलद्वार तक के स्थान के ऊपर गर्म-ठंडी पट्टी देकर ही इस यंत्र को उद्दीप्त कर लिया जा सकता है।

यदि रोगी सबल हो तब तीन बार ठंडा-गर्म हिप बाथ (alternate hip bath) लेने से ही काम चल जाता है। गर्म और ठंडा दोनों ही दो मिनटों लिये ग्रहण करना चाहिये। यह ठंडा में खत्म करना उचित है अथवा गर्म में खत्म करके तुरंत स्नान कर लेना कर्तव्य है।

किंतु चिकित्सा से लाभ होने पर भी कभी भी इसमें जल्दीबाजी करना उचित नहीं। पुराना रोग सदा ही धीरे धीरे आरोग्य प्राप्त करता है।

रोगी के लिये कुछ दिन निष्ठा के साथ ब्रह्मचर्य पालन करना कर्तव्य है। सब प्रकार की उत्तेजना के कारणों से भी कुछ दिन तक परहेज रखना आवश्यक है। इस समय में पति और पत्नी को अलग बिछावन पर सोना उचित है। यहाँ तक कि जिससे मन में बुरे विचार आ सके ऐसी किताब पढ़ना या ऐसा सिनेमा देखना भी उचित नहीं।

रोग का पता लग जाने के बाद इसके सम्बन्ध में सगे-सम्बन्धियों, विशेषतः पत्नी के सगे-सम्बन्धियों के साथ कभी बातचीत करना उचित नहीं। ऐसा होने पर रोगी की अवस्था अत्यन्त खराब हो जा सकती है। किंतु रोग प्रकट होते ही चिकित्सा में लग जाना आवश्यक है। ऐसा होने पर सहज ही रोग आरोग्य प्राप्त कर लेता है। अन्यान्य चिकित्सा से यह रोग आरोग्य करना जितनी कठिन बात है, प्राकृतिक चिकित्सा से उतनी नहीं है। बहुत अवस्था में थोड़े समय के लिये प्राकृतिक चिकित्सा से ही यह रोग आरोग्य प्राप्त करता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

रोगी का स्वास्थ्य विशेष रूप से गठित कर लेना चाहिये। इसके लिये नियमित रूप से क्रमशः बढ़ानेवाले व्यायाम का अभ्यास करना आवश्यक है। जो कुछ शरीर को अच्छा करता है और गठित करने में सहायता पहुँचाता है वही पुरुषत्व की वृद्धि करती है। रोगी के लिये पेड़ू का व्यायाम विशेष रूप से हितकर है। विभिन्न आसन भी कुछ दिनों तक रोगी को ग्रहण करना चाहिये। जिन सब आसनों से पेट और रीढ़ का व्यायाम होता है उनके ऊपर सदा जोर देना उचित है।

[३]

रोगी का पथ्य विशेष रूप से पुष्टिकर होना चाहिये। वाशिंगटन के एक परीक्षागार (Carnegie Institute) में विभिन्न परीक्षा के फलस्वरूप यह देखा गया है कि पुष्टिकर खाद्य के अभाव में यदि शरीर दुर्बल हो पड़े, तब साथ साथ प्रजनन-क्षमता भी घट जाती है (Kenneth M. Wadker, F.R.C.S—Male Disorders of Sex, p. 55)।

शरीर अत्यधिक स्थूल हो जाने पर सब तरह से शरीर का वजन घटा लाना चाहिये। शरीर का वजन घट जाते ही रोग आरोग्य प्राप्त करता है (इसके लिये स्थूलता की चिकित्सा देखिये)।

रोगी के शराब, अफीम या तम्बाकू का अभ्यस्त रहने पर सर्वप्रथम इन सब चीजों को जीवन से विदा कर देना चाहिये। ये सब आदतें वर्जन करते ही साधारण अवस्था में इन्द्रिय की दुर्बलता दूर हो जाती है (The British Encyclopædia of Medical Practice, Vol. 7, p. 76, London, 1951)।

रोगी का पथ्य और अन्यान्य चिकित्सा-विधि सभी धातुदौर्बल्य के अनुरूप हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

हाइड्रोसील

[Hydrocele]

इसे अण्डकोष का शोथ कहा जाता है। अधिकांश अवस्था में अण्डकोष के भीतर ही पानी जमा हो जाता है। किसी किसी अवस्था में जिन रज्जुओं (spermatic cord) के साथ अण्डकोष लटकते रहते हैं, उनके भीतर भी पानी संचित होता है। इस अवस्था में बहुधा इसे हार्निया कहकर भ्रम किया जाता है। किंतु हार्निया के समान लेटने पर यह घट नहीं जाता अथवा खाँसने पर बढ़ता नहीं।

शरीर की अत्यन्त विकारयुक्त अवस्था से ही साधारणतः यह रोग हो जाता है। इसके लिये पेट की लपेट आदि द्वारा पेट को ठीक करके हफ्ते में दो-तीन दिन पूरे समय के लिये गीली चादर की लपेट, प्रतिदिन पूरे शरीर में मर्दन तथा नियमित रूप से धूपस्नान ग्रहण करना चाहिये। रोगी को इस प्रकार पैक देना उचित है जिसमें पैक के भीतर रोगी को भलीभाँति पसीना निकल सके।

रोगी के अण्डकोष के ऊपर बीच बीच में १५ से २० मिनटों के लिये हल्का स्टीम बाथ प्रयोग करना आवश्यक है। एक खौलते पानी की हाँड़ी इसके लिये व्यवहार की जा सकती है। किंतु हाँड़ी का मुँह धीरे धीरे खोलना चाहिये। अन्यथा शरीर जल जा सकता है। वाष्प का ताप जब कम हो जाय तब कोष को हाँड़ी के भीतर घुसा देना कर्तव्य है। किंतु ताप आरामप्रद होना चाहिये। नियत समय तक वाष्प लेने के बाद शरीर का पसीना पोंछकर पूरे दस मिनटों के लिये हिप बाथ ग्रहण करना कर्तव्य है। इस समय दोनों पाँव गर्म पानी में डुबाये रखना आवश्यक है। इस प्रकार से स्टीम और हिप बाथ लेकर इसके बाद स्नान करना चाहिये।

रोगी को हफ्ते में दो दिन एक से डेढ़ घंटे के लिये सम्पूर्ण जनन-यंत्र के ऊपर ढकी हुई लपेट रखना आवश्यक है। भीतर में एक छोटी

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh
तौलिया तथा ऊपर में कई एक तह भारी फ्लानेल (flannel) व्यवहार करना चाहिये।

रोगी का पथ्य विशेष रूप से पुष्टिकर, सहजपाच्य, अनुत्तेजक तथा क्षारधर्मी होने की आवश्यकता है। प्रतिदिन उसे यथेष्ट परिमाण में ताजे और सूखे फल तथा हरे पत्तेवाले साग लेना चाहिये। चाय, काफी, अधिक मसाला, नमक, मांस, सोडा वाटर, बर्फ तथा हलवाई की दूकान के बने जितने भी खाद्य हैं उनसे पूर्णरूपेण परहेज करना आवश्यक है।

शरीर में यथेष्ट चर्बी रहने पर सुदीर्घ समय के लिये उपवास विशेष फलप्रद है।

पौरुष ग्रन्थि की वृद्धि
[Enlargement of the prostrate]

पौरुष ग्रन्थि (prostrate gland) एक क्षुद्र यंत्र है। मूत्राशय (bladder) के नीचे की ओर मूत्रनली (urethra) के प्रारम्भिक स्थान को घेरकर यह स्थित रहता है। इसका वजन ६ ग्राम मात्र है। किंतु उम्र बढ़ने के साथ साथ यह ग्रन्थि प्रायः ही बड़ी हो उठती है। इससे मूत्रनली के ऊपर दबाव पड़ता है और इसके फलस्वरूप विभिन्न रोग-लक्षण उपस्थित होते हैं। इस अवस्था में बार बार पेशाब लगता है। साधारणतः रात के समय ही पेशाब का जोर बढ़ जाता है। पेशाब करने में भी रोगी को विभिन्न असुविधा उत्पन्न होती है। इस रोग में मूत्रस्राव क्षीण हो जाता है और मूत्राशय में संचित सब मूत्र एक साथ निकल नहीं पाता तब प्रायः ही बूँद बूँद करके पेशाब निकलता है तथा पेशाब करने के समय भी विशेष जोर लगाने की जरूरत पड़ती है। इसके अतिरिक्त मूत्राशय में संचित मूत्र सड़कर मूत्राशय में सूजन उत्पन्न करता है। इस समय बार बार कैथिटर व्यवहार करने की जरूरत पड़ती है। इसके फलस्वरूप बहुत बार सम्पूर्ण मूत्रयंत्र ही सूज जाता है। इस अवस्था में दोनों किडनियाँ ही प्रायः खराब हो पड़ती

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

हैं तथा दीर्घदिन तक अच्छी चिकित्सा नहीं होने पर किडनी की अक्षमता के फलस्वरूप अथवा यूरेमिया से रोगी की मृत्यु हो जाती है।

पौरुष ग्रन्थि की वृद्धि (prostratic hypertrophy) एक साधारण रोग है। पचास वर्ष पार करते ही बहुधा यह प्रकट होता है। यह जाना गया है कि उम्र ५० वर्ष होते ही सैकड़े प्रायः ३० क्षेत्रों में पौरुष ग्रन्थि बढ़ जाती है (Randolph Lee Clark, M.D., M.Sc.—The Book of Health, p. 462, New York, 1943) तथा ६० वर्ष उम्र होते ही सैकड़े ८ क्षेत्रों में वह मूत्र-स्रोत में बाधा उत्पन्न करती है (E. T. Bell, M.D.—A Text-book of Pathology, p. 812, Philadelphia, 1956)।

किंतु सब अवस्था में ही रोग घातक होता है, ऐसा नहीं। जिसका शरीर जितना खराब है उसके शरीर में रोग उतने कठिन आकार में प्रकट होता है।

यह कहा जाता है कि इस रोग के कारण का पता नहीं लगता। किंतु शरीर की विकारयुक्त अवस्था के कारण जैसे अन्यान्य रोग उत्पन्न होते हैं, इसमें सन्देह नहीं कि यह रोग भी उसी कारण से उत्पन्न होता है। अतः अन्यान्य रोगों की भाँति शरीर को विकार-रहित करना ही इसकी यथार्थ चिकित्सा है।

इसके लिये कुछ दिनों तक प्रतिदिन पेट में गर्म-ठंडा लेकर डूस, फुट बाथ या हल्के स्टीम बाथ या गर्म-ठंडा हिप बाथ लेकर स्नान, पेट की लपेट, हफ्ते में एक या दो दिन गीली चादर का पैक, नीबू के रस के साथ काफी पानी पीना, यथेष्ट मात्रा में फल, सलाद, उबाली हुई तरकारी, तरकारी का सूप, कच्ची साग-सब्जियों का रस तथा चीनी के बदले मधु या गुड़ ग्रहण करना कर्तव्य है और बीच बीच में उपवास रखना आवश्यक है।

इन सब अवस्था के द्वारा जब शरीर विकार-रहित हो जाता है तब सामान्य स्थानीय चिकित्सा करते ही रोग मिट जाता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

इस रोग की प्रधान स्थानीय चिकित्सा ही है गर्म-ठंडा हिप बाथ। यह सम्भव न होने पर पेरीनियम (perineum) के ऊपर रोज एक बार गर्म-ठंडा ग्रहण करना उचित है। जिस स्थान में जननेन्द्रिय की समाप्ति होती है उस स्थान से मलद्वार तक के स्थान को पेरीनियम कहते हैं। इस स्थान में गर्म-ठंडा देकर ही प्रोस्ट्रेट ग्लैन्ड के ऊपर प्रभाव फैलाया जाता है। इस स्थान के ऊपर प्रतिबार ५ मिनटों के लिये सेंक देकर बाद में ५ मिनटों के लिये ठंडा कर लेना उचित है तथा एक साथ यह तीन बार करना कर्तव्य है। इसके अतिरिक्त जननेन्द्रिय के ऊपर हफ्ते में दो-तीन दिन तक एक से डेढ़ घंटे के लिये ढकी हुई लपेट रखना आवश्यक है। वह पेड़ू की सीमा से गुदामार्ग तक फैली होनी चाहिये। दो-तीन तह खद्दर का गीला टुकड़ा या खूब छोटी तौलिया द्वारा यह स्थान पहले ढककर तीन तह तक मफलर या और किसी भारी फ्लानेल द्वारा उसे ढकना चाहिये। संक्षेप में, भीतर में एक ताप का संचार होना चाहिये। इसके साथ साथ बीच बीच में बस्तिदेश की ढकी हुई लपेट (pelvic pack) लेना उचित है।

दर्द नहीं रहने पर बीच बीच में ठंडे पानी में हिप बाथ लेना कर्तव्य है। इस समय अवश्य ही दोनों पाँव गर्म पानी में डुबाये रखना चाहिये। किंतु दर्द रहने पर सदा ही गर्म-ठंडा हिप बाथ लेना आवश्यक है। दर्द रहने पर कभी भी ठंडे पानी में हिप बाथ लेना उचित नहीं।

जब पेशाब में कष्ट होता है, तब दोनों पाँव टब के बाहर रखकर केवल गर्म पानी में बैठने से ही यथेष्ट लाभ होता है। इससे मूत्रनली शिथिल हो जाती है तथा सहज ही पेशाब होता है। किंतु यह कभी भी एक घन्टे से अधिक समय के लिये लेना उचित नहीं (Howard F. Conn, M.D.—Current Therapy, p. 402, Philadelphia, 1954)।

प्रोस्ट्रेट ग्लैन्ड में कभी भी तकलीफ मालूम पड़ते ही एक घन्टे के लिये

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

पाँव को लपेट देना उचित है तथा दोनों पाँव गर्म रहे इसकी व्यवस्था करना कर्तव्य है।

इस प्रकार की चिकित्सा कुछ दिन चलाने से ही पौरुष ग्रन्थि स्वाभाविक हो आती है तथा इसके फलस्वरूप मूत्रस्राव सरल हो जाता है। किंतु रोग अच्छा होते ही स्वास्थ्य के प्रति सदा ध्यान रखना उचित है। सब काम में अति सदा वर्जनीय है। रोगी को सदा मध्यम मार्ग पर चलना उचित है। रोगी के लिये यथासम्भव ब्रह्मचर्य पालन करना कर्तव्य है (J. H. Kellogg, M.D.—Rational Hydrotherapy, Battle Creek, 1928)। रोगी को कभी भी जोर करके पेशाब रोके रहना उचित नहीं। कारण स्वेच्छा से पेशाब रोक रखने पर उसीसे बहुत बार पेशाब बन्द हो जाता है (The British Encyclopædia of Medical Practice, Vol. 10, p. 263, London, 1952)।

प्रारम्भिक अवस्था में रोगी को यथेष्ट पानी पीना चाहिये। इसके अतिरिक्त मांस, मसाला तथा सब प्रकार के उत्तेजक पदार्थों से परहेज करना आवश्यक है। रोग का पता लग जाने पर ब्रह्मचर्य साधन के साथ केवल ये सब विधि-निषेध अनुसरण करने से ही यथेष्ट लाभ हो सकता है (Cuthbert Allan Sprawson, M.D., F.R.C.P., and Robert Dudley Alexander, M.A., M.B., M.R.C.P.—Moore's Manual of Family Medicine, p. 361, Delhi, 1936)।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

द्वादश अध्याय

पथरी रोग

पित्त-पथरी
[Gall-stone]

[१]

हमारे लीवर से पित्त निकलकर जिस पात्र में जमा होता है उसे पित्तकोष (gall bladder) कहते हैं। यह शरीर के दाहिने भाग में फेफड़े के नीचे रहता है। इससे पित्त निकलकर भोजन के साथ मिलता रहता है। किंतु कभी कभी विभिन्न कारणों से पित्तस्रोत धीमा पड़ जाता है और किसी किसी समय पित्तकोष या वृहत्तर पित्तनली (bile duct) में छोटे छोटे कण के रूप में जमा हो जाते हैं। फिर ये पित्त में से विभिन्न उपादान (cholesterol, bile pigment और calcium salt इत्यादि) संग्रह करके क्रमशः बड़े हो उठते हैं और पित्त-पथरी का रूप धारण कर लेते हैं। इस रोग में कभी कभी एक एवं किसी किसी समय अधिक संख्या में पत्थर रहते हैं। ये पत्थर आलपिन के सिरे से लेकर एक अंडे जितने बड़े होते हैं।

प्रकृति इन पत्थरों को सदैव देह से निकाल फेंकने की कोशिश करती है और प्रायः पित्त के साथ बाहर कर देती है। जब पित्तनली से पत्थर बाहर निकलता है, उसी समय रोगी लीवर के पास दर्द अनुभव करता है। यह दर्द दाहिने पंजरे के नीचे की ओर होता है और कभी कभी दाहिने कंधे तक चला जाता है। पत्थर होने से मामूली दर्द होता है। लेकिन अगर पत्थर बड़ा हुआ, तब रोगी असह्य पीड़ा अनुभव करता है और इस पीड़ा के साथ प्रायः कम्पन, ज्वर, जी मिचलाना, उल्टी, ठंडा पसीना आदि लक्षण प्रकट होते हैं और साधारणतः ये दो-एक सप्ताह बने रहते हैं।

यह रोग आदिम असभ्य जातियों में नहीं पाया जाता। कोष्ठबद्धता

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

और बवासीर के समान यह भी सभ्यता का रोग है। जो लोग अधिक भोजन करते हैं, बहुत अधिक मसाला और गरिष्ठ भोजन करते हैं, बहुत कम पानी पीते हैं, कोष्ठबद्धता के शिकार होते हैं एवं कम परिश्रम करते हैं, साधारणतः उन्हें ही यह रोग होता है। एक डाक्टर ने २,२६६ पित्त-पथरी के रोगियों की परीक्षा करके देखा, उनमें से सैंकड़े ८० व्यक्ति कठिन कोष्ठबद्धता के शिकार थे (J. Ellis Barker—Chronic Constipation, p. 198)।

इससे सिद्ध होता है कि कोष्ठबद्धता ही पित्त-पथरी का एक प्रधान कारण है। इसके अतिरिक्त जो बहुत दिनों तक पेट के रोग से पीड़ित रहते हैं, साधारणतः उन्हें ही यह रोग होता है। वस्तुतः यह कभी एक दिन में उत्पन्न नहीं होता। यह स्वाभाविक नहीं कि पित्तकोष में पित्त के दाने बनने लगें। साधारण स्वास्थ्य-विज्ञान की अवहेलना एवं कोष्ठबद्धता आदि कारणों से शरीर में बहुत दिनों तक जब एक विकार-युक्त स्थिति वर्तमान रहती है, केवल तभी यह रोग उत्पन्न होता है। इसीसे एक डाक्टर ने कहा है, पथरी चाहे किसी भी स्थान में हो, वस्तुतः वह मूल रोग नहीं, but only a result of diseased condition—केवल शरीर की विकारग्रस्त स्थिति की देन है (Otto Juettner, M.D., Ph.D.—A Treatise on Naturopathic Practice, p. 49)। इसलिये स्थानीय चिकित्सा के साथ पूरे शरीर को विकारहीन बनाना ही इसकी यथार्थ चिकित्सा है।

[२]

इसलिये डूस और पेट की लपेट आदि द्वारा पहले ही कोष्ठ साफ कर लेना उचित है और कोष्ठ जिसमें साफ रहे इसकी व्यवस्था करनी चाहिये। इस रोग में प्रतिदिन ठंडे पानी का डूस लेना आवश्यक है। कारण ठंडे पानी के (८५° से ७६° F.) डूस से पित्तकोष संकुचित होता है और इसके फलस्वरूप वह खाली हो जाता है। यह स्मरण रखना चाहिये कि जब पित्तकोष पूरे तौर पर अथवा पर्याप्त रूप से

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

खाली नहीं होने पाता, तभी केवल उससे पथरी उत्पन्न हो सकती हैं। इसलिये बीच बीच में पित्तकोष खाली करने की व्यवस्था करना ही इस रोग की एक प्रधान चिकित्सा है।

प्रतिदिन डूस लेने के पहले पेट के ऊपर अवश्य ही गर्म-ठण्डा लेना उचित है। इस प्रकार से गर्म-ठण्डा लेना चाहिये जिसमें लीवर के नीचे की ओर पित्तकोष के ऊपर गर्म थैली और गीली तौलिया पहुँचे। इस अवस्था में पेट की लपेट पेट और लीवर घुमाकर प्रयोग करना आवश्यक है। इससे इस स्थान के समस्त यंत्र ही सबलता प्राप्त करते हैं, पित्तस्राव में वृद्धि होती है एवं छोटी छोटी पित्त-पथरी का जमा रहना असम्भव होता है। इसके अतिरिक्त इस रोग में पित्तकोष के भीतर जो श्लेष्मायुक्त अवस्था (catarrahal condition) रहती है और जो उसके भीतर पथरी बनने की अनुकूल अवस्था का गठन करती है वह सम्पूर्ण रूप से दूर हो जाती है। फिर यदि पित्तकोष के भीतर पत्थर रहता है तो फिर शरीर का कोई अनिष्ट नहीं कर पाता। जिनका पित्तकोष अस्वस्थ रहता है उनमें से सैकड़े ७५ व्यक्तियों के ही पित्तकोष में पत्थर देखा जाता है (E. T. Bell. M.D.—Text-book of Pathology, p. 661, Philadelphia, 1956)। इसलिये इस रोग में लीवर के ऊपर गर्म-ठण्डा और पेट की लपेट पर विशेष जोर देना चाहिये।

इसके अतिरिक्त प्रतिदिन कुछ देर के लिये धूपस्नान या तीन से छः मिनटों के लिये वाष्पस्नान या आठ-दस मिनटों के लिये फुट बाथ लेकर स्नान कर लेना उचित है। स्नान के बाद सदा ही सूखी मालिश लेकर शरीर गर्म कर लेना चाहिये। बीच बीच में पूरे समय के लिये वाष्पस्नान या गीली चादर का पैक लेना आवश्यक है। बहुत बार केवल उसीसे रोग नीरोग हो जाता है।

रोगी को प्रतिदिन कुछ समय के लिये व्यायाम करना चाहिये। कारण, व्यायाम के अभाव में पित्तस्रोत धीमा पड़ जाता है और बहुत अवस्था में उससे पित्त-पथरी उत्पन्न होती है। लीवर की मालिश से भी

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

अत्यन्त लाभ होता है। इससे पित्तकोष में पित्त नीचे उतर आता है।

बहुत बार स्थूलकाय लोगों को यह रोग होता है। इसलिये शरीर का वजन अधिक रहने पर सदा ही कम कर लेना उचित है।

इस रोग में दर्द ही प्रधान रोग-लक्षण है। पित्त-पथरी के दर्द में रोगी बहुत कष्ट पाता है। इसलिये दर्द दिखाई पड़ते ही दर्द घटाने की कोई व्यवस्था करना उचित है। साधारणतः दर्द शुरू होने पर रोगी को मरफिया दिया जाता है। उससे कुछ समय के लिये दर्द कम होता है, सन्देह नहीं। किंतु उससे शरीर में विष की मात्रा वृद्धि हो पाती है, अतः रोगी की अवस्था परिणाम में अधिकतर खराब होती है। किंतु दर्द शुरू होते ही रोगी को एक गर्म पानी का डूस देकर अविलम्ब पित्तकोष और लीवर के ऊपर तापवहुल गर्म-ठण्डा (revulsive compress) प्रयोग करने से दर्द तेजी से उतर जाता है। किंतु इस अवस्था में थोड़ी देर के लिये सेंक से कोई लाभ नहीं होता। इसलिये २० से ३० मिनटों के लिये तापवहुल गर्म-ठण्डा (प्रयोग-विधि के लिये अन्तिम अध्याय द्रष्टव्य है) प्रयोग करना चाहिये और अन्तिम बार दस मिनटों के लिये वर्फ या खूब ठंडे पानी की पट्टी का प्रयोग करना आवश्यक है। दर्द रहने तक ही इसी प्रकार प्रत्येक दो-तीन घंटे पर पित्तकोष और लीवर के ऊपर गर्म-ठण्डा का प्रयोग करना उचित है। इसी प्रकार सुदीर्घ समय के

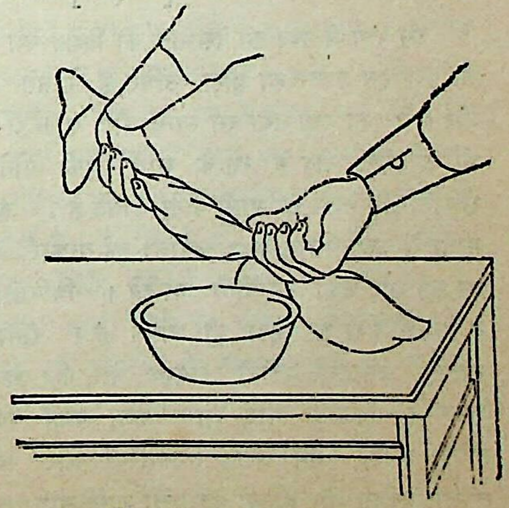

सेंक (fomentation)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

लिये सेंक देने से सेंक की गर्मी से पित्तनली शिथिल (relaxed) हो पड़ती है और तब उसके भीतर से होकर पत्थर सहज ही निकलने में सक्षम होता है।

इसके अतिरिक्त बार बार उसका पेट-पीठ घुमाकर पेट की लपेट देना उचित है। भीतर का भींगा कपड़ा अच्छी तरह निचोड़ा हुआ होना आवश्यक है और भारी करके फ्लानेल द्वारा ढक देना चाहिये। यह दो घंटे तक रखी जा सकती है और प्रयोजन होने पर हर बार गर्म-ठण्डा के प्रयोग के आधे घंटे बाद व्यवहार की जाती है। इस समय हाथ-पाँव विशेष रूप से गर्म रखना आवश्यक है।

रोगी को ज्वर होने पर उसका सिर खूब अच्छी तरह धोकर दिन में तीन बार गीली तौलिया द्वारा उसका शरीर पोंछ देना चाहिये। इस अवस्था में पूर्ण विश्राम लेना आवश्यक है।

[३]

इस रोग में पथ्य की देखभाल की विशेष रूप से जरूरत है। रोगी का पथ्य इस प्रकार का होना उचित है जिससे शरीर विकार-रहित हो और शरीर का रक्त तथा रस स्वस्थ और साफ हो सके। इसलिये रोगी को प्रतिदिन नीबू के रस के साथ काफी पानी पीना चाहिये। उसे रोजाना तीन-चार सेर पानी पीना उचित है। इसके अतिरिक्त उसे यथेष्ट मात्रा में फल, सलाद, मट्ठा, उबाली हुई तरकारी और हरी साग-भाजियों का सूप और कच्चा रस पीना चाहिये। चिकित्सा के प्रारम्भ में केवल ये सब चीजें खाकर रहना ही उचित है। रोगी इच्छानुसार नारंगी, मौसमी, टमाटर, पपीता, अमरूद, बेल, खूब पका केला, खजूर, खीरा, अनन्नास, बिजोड़ा नीबू आदि फल, कच्चा पपीता, गाजर, परवल, तरोई, भिंडी, सेम आदि तरकारियाँ और चोलाई, लेटूस, मेथी, बथुआ, पुदीना और धनिया का पत्ता आदि साग खा सकता है। रोग सम्पूर्ण नीरोग नहीं होने तक पूरे खाद्य का कम से कम ५० भाग इन

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

सब खाद्यों से लेना चाहिये। रोगी को चोकर समेत आटा और माँड़ सहित भात लेना उचित है। दूध के बदले रोगी को पर्याप्त मात्रा में मट्ठा देना आवश्यक है।

शरीर के भीतर जो पित्त-पथरी बनती है उनमें से अधिकांश के भीतर ही कोलेस्टेरल (cholesterol) नाम का एक पदार्थ रहता है। अंडा, क्रीम, प्राणियों का मूत्रयंत्र, लीवर, मस्तिष्क एवं प्राणिज चर्बी इसका प्रधान आधार है। इसलिये ये सब खाद्य सदा वर्जन करना चाहिये। इसके अतिरिक्त पकाकर कभी कोई तेल जातीय पदार्थ (cooked fat) व्यवहार करना उचित नहीं। रोगी को सब प्रकार के तले पदार्थ, भुनी हुई चीजें, हल्दी के अतिरिक्त सब प्रकार के मसाले, खीर और गाढ़ा दूध तथा पुलाव आदि देर से पचनेवाले पदार्थ, चाय, तम्बाकू, कॉफी, चीनी और मैदा आदि सब प्रकार के परिशोधित खाद्य से परहेज करना उचित है। रोगी चीनी के बदले मधु या तरल गुड़ ले सकता है।

सब प्रकार के पुराने रोगों में ही बीच-बीच में उपवास अत्यन्त फलप्रद है। इस रोग में एक बार बहुत नहीं खाकर बार बार थोड़ा थोड़ा करके खाद्य ग्रहण करना उचित है। पित्तकोष को संकुचित करने का यही सर्वप्रधान उपाय है। कारण पाकस्थली में खाद्य जब आ पहुँचता है और बाद में पाकस्थली से आँत में जब खाद्य जाने लगता है तब पित्तनली विशेष रूप से संकुचित होती है (J. H. Kellogg, M.D.—The New Dietetics, p. 745, Washington, 1923)।

इस रोग में प्रायः ही नश्तर करने का सुझाव दिया जाता है। किन्तु नश्तर करने से ही जो विभिन्न रोग-लक्षण गायब हो जाते हों, ऐसा नहीं। किसी किसी क्षेत्र में नश्तर करने के फलस्वरूप रोगी अपना पित्तकोष खो बैठता है, किंतु रोग-लक्षण जाते नहीं (Howard F. Conn, M.D.—Current Therapy, p. 231, Philadelphia, 1954)। इसके अतिरिक्त यह देखा गया है, २५ वर्ष के

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

ऊपर सैकड़े २५ स्त्रियों एवं ७ पुरुषों के शरीर में ही पित्त-पथरी वर्तमान रहती है (Frederick W. Price, M.D., F.R.C.P.—A Text-book of the Practice of Medicine, p. 756, London, 1947)। ये सभी जो खूब कष्ट पाते हों ऐसा नहीं। यहाँ तक कि बहुत जान ही नहीं पाते कि उन्हें पित्त-पथरी है।

किंतु यदि शरीर को विशुद्ध और पित्तकोष को स्वस्थ कर लिया जाय, तब पित्तकोष में कभी भी पथरी गठित हो नहीं सकती। होने पर भी यदि केवल पित्तकोष की श्लेष्मायुक्त अवस्था दूर कर दी जाय, तब पित्तकोष में पथरी रह जाने पर कोई भी नुकसान नहीं होता और प्राकृतिक जीवन-यात्रा और प्राकृतिक चिकित्सा चालू रखने से क्रमशः छोटी होकर एक समय वह शरीर से बाहर निकल जा सकती है।

मूत्रयंत्र की पथरी
[Renal Calculi]

[१]

जब शरीर में खाद्य रस की उत्तम प्रकार से दहन क्रिया नहीं होती, तब खाद्य के विभिन्न रासायनिक पदार्थ रक्त के भीतर प्रवेश करके रक्त के अम्लत्व में अत्यधिक वृद्धि करते हैं। किंतु प्रकृति ये सब दूषित पदार्थ (urates uric acid, oxaletes, phosphates) सदा ही मूत्र के साथ बाहर निकाल करके शरीर की रक्षा करती रहती है। किंतु जब ये सब पदार्थ शरीर के भीतर अत्यधिक मात्रा में संचित हो जाते हैं अथवा इन सब पदार्थों को तरल अवस्था में रखने में जब शरीर अक्षम हो पड़ता है, तब ये बहुधा मूत्रयंत्र में संचित होते हैं और पत्थर की तरह कड़े हो जाते हैं। इसे ही मूत्रयंत्र की पथरी कहते हैं।

इस रोग में मूत्र के साथ सूक्ष्म चूर्ण निकलता है। रोगी किडनी में

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

तेज दर्द अनुभव करता है। यह दर्द इसके वाद मूत्राशय तथा अन्त में जङ्घा तक फैल जाता है। जब यह पत्थर मूत्रनली (urator) होकर बाहर निकल आना चाहता है तभी साधारणतः यह दर्द होने लगता है। इस दर्द को मूत्रयंत्र का शूल (renal colic) कहते हैं। इस समय मूत्रत्याग की प्रबल इच्छा होती है, किंतु प्रायः ही वह मूत्रत्याग में समर्थ नहीं होता। इस अवस्था में रोगी के मूत्रयंत्र से रक्तस्राव होता है तथा कभी कभी स्नायविक उत्तेजना से रोगी को उल्टी से कष्ट होता है। साधारणतः दो से तीन मिनटों तक यह दर्द रहता है, इसके बाद हठात् कम हो जाता है। रोगी तब पूरा आराम अनुभव करता है।

जो अत्यधिक मात्रा में मांसाहार करते हैं, जो केवल भात और दाल खाकर रहते हैं तथा जिसमें रासायनिक लवण है—जैसे शाक-सब्जी और तरकारियाँ—यथेष्ट मात्रा में आहार नहीं करते, जो लोग अजीर्ण, गठिया, स्नायुशूल और विभिन्न स्नायविक रोग से भुगतते हैं उन्हें ही साधारणतः यह रोग हो जाता है। अर्थात् शरीर विजातीय तथा दूषित पदार्थों का एक कूड़ा-घर होने से ही केवल यह रोग होता है तथा इसके अतिरिक्त कभी भी यह रोग हो नहीं सकता।

[२]

इस रोग की चिकित्सा में प्रधान लक्ष्य यह होना चाहिये कि जिस अवस्था में किडनी के भीतर पत्थर की सृष्टि हो सके वह अवस्था दूर हो जाय तथा जमे हुए पत्थरों को क्रमशः घटाने की चेष्टा होती रहे। प्रकृति सदा ही शरीर की बाधा दूर करने के लिये व्यस्त रहती है। यदि रक्त को विकार-रहित, शरीर में नये स्वस्थ रक्त की उत्पत्ति तथा शरीर की दहन क्रिया की वृद्धि की जाय तभी प्रकृति उपयुक्त सहायता प्राप्त करती है।

इसके लिये प्रारम्भ में ही पेट की लपेट, हिप बाथ, डूस, गीली चादर की लपेट, तीन से छः मिनटों के लिये स्टीम बाथ, दोनों शाम

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

स्नान, स्नान के पहले मर्दन तथा नीबू के रस के साथ प्रचुर पानी पीना आदि के द्वारा शरीर को विकार-रहित करके गठित कर लेना आवश्यक है। जब दर्द नहीं रहे तभी ये चिकित्सा ग्रहण करनी चाहिये। लीवर जिसमें काम करने के योग्य रहे इसकी ओर सदा ध्यान देना आवश्यक है।

दर्द उठने पर विश्राम ही प्रथम चिकित्सा है। इस समय गर्म पानी पीने या गर्म पानी से डूस देने पर विशेष लाभ होता है। दर्द काफी देर तक बने रहने पर प्रत्येक दो घंटे पर गर्म पानी का डूस देना चाहिये। दर्द के समय रोगी को सबसे अधिक लाभ होता है गर्म-ठंडा हिप बाथ (revulsive hip bath) लेने से। साधारणतः यह एक साथ दो-तीन बार के लिये लेने से ही दर्द उतर जाता है। इसके अतिरिक्त रोगी की किडनी और दर्द की जगह के ऊपर दिन में दो बार १८ मिनटों के लिये दीर्घ तापयुक्त गर्म-ठंडा (revulsive compress) देकर बचे हुए समय के लिये पेट की लपेट प्रयोग करनी चाहिये। दर्द न रहने पर भी कुछ देर तक सेंक और लपेट प्रयोग करना आवश्यक है।

यदि रोगी को उल्टी होती हो, तब उसे छोटे छोटे बर्फ के टुकड़े खाने को दिये जा सकते हैं। पाकस्थली के ऊपर ठंडी गीली मिट्टी, बर्फ के पानी या ठंडे पानी में भिगाये कपड़े की लपेट अथवा बर्फ की थैली का प्रयोग करने पर भी बहुत बार उल्टी मिट जाती है।

यदि रोगी को पेशाब न उतरता हो, तब रोगी को कुछ समय के लिये उष्ण पादस्नान देकर उसके बाद एक घन्टे के लिये सूखा पैक (dry sweating pack) देना आवश्यक है तथा उसके बाद घर्षण स्नान प्रयोग करना कर्तव्य है।

किडनी से रक्तस्राव होने पर पाँव की लपेट (foot pack) प्रयोग करके किडनी के ऊपर ठंडा देना ही इसकी प्रधान चिकित्सा है।

यदि हार्ट दुर्बल या उत्तेजित रहे, तब हार्ट के ऊपर दिन में दो

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

बार १५ से ३० मिनटों के लिये पानी की पट्टी प्रयोग करनी चाहिये। यह लपेट उठा लेने के बाद यह स्थान रगड़कर लाल और गर्म कर देना आवश्यक है।

[३]

इस रोग में पथ्य का नियमन एक प्रधान चिकित्सा है। रोगी को ऐसा पथ्य देना आवश्यक है जिसमें मूत्र में यूरिक एसिड आदि दाना न बाँधने पावे, बल्कि पिघलकर बाहर निकल जा सके। इसलिये रोगी को यथेष्ट मात्रा में कच्चा दूध, ताजे और सूखे फल, फलों का रस, हरी शाक-सब्जी, विभिन्न साग-सब्जियों की तरकारी तथा कच्चे अनाज का व्यंजन आदि जो सब खाद्य क्षारधर्मी हैं वह यथेष्ट मात्रा में ग्रहण करना उचित है। विस्तृत पथ्य-विधि के लिये पित्त-पथरी रोग द्रष्टव्य है। रोगी को नीबू के रस के साथ काफी पानी पीना चाहिये। कारण नीबू का रस लीवर के लिये जैसा टानिक के समान है, वैसा ही यूरिक एसिड और अन्यान्य विष पिघलाकर शरीर से बाहर निकाल देने में यह विशेष रूप से फलप्रद है (Reddie Mallet—Nature's Way, p. 32)।

जिसमें मूत्र में यूरिक एसिड और यूरिया आदि उत्पन्न होते हैं, ऐसी खाद्य से भी उसे परहेज करना चाहिये। इसलिये रोगी के लिये मछली, मांस, अंडे, दूध की मलाई और पनीर वर्जन करना कर्तव्य है। साधारण नमक भी रोगी को यथासम्भव कम खाना आवश्यक है।

रोगी को प्रतिदिन नीबू के रस के साथ काफी पानी पीना चाहिये। जिसमें शरीर से प्रतिदिन दो-तीन हजार सी-सी मूत्र निकल जा सके इसकी व्यवस्था करना आवश्यक है। इसलिये यदि बार बार पेशाब लगे तो उस ओर ध्यान नहीं देना चाहिये (Howard F. Conn, M.D.—Current Therapy, p. 490, Philadelphia, 1954)। यदि दैनिक पाँच से छः पाइन्ट पानी ग्रहण किया

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

जाय, तब छोटे छोटे पत्थर स्वयं ही शरीर से बाहर हो जाते हैं। इस रोग में कभी कभी अत्यन्त विपत्तिजनक अस्त्र-चिकित्सा की जाती है। किंतु जिस कारण से पथरी शरीर में गठित होती है वह इससे दूर नहीं होता। इसलिये अस्त्र-चिकित्सा के बाद बहुधा दुबारा किडनी में पथरी गठित हो जाती है (Robert Coope, M.D., B.Sc., F.R.C.P.—Wheeler and Jack's Handbook of Medicine, p. 450, London, 1950)।

मूत्राशय की पथरी

[Stone in the bladder]

किडनी से मूत्र निकलकर जिस थैली में संचित होती है उसका नाम मूत्राशय (bladder) है। जिस कारण से किडनी में पत्थर उत्पन्न होता है ठीक उसी कारण से किसी किसी समय मूत्राशय में पथरी उत्पन्न होता है। यह पत्थर छोटे-बड़े सब प्रकार के ही होते हैं। कभी कभी यह मुर्गी या हंस के अंडे जितना बड़ा होता है। इसकी चिकित्सा मूत्रयंत्र की पथरी चिकित्सा के ही अनुरूप है। केवल इसमें मूत्रयंत्र आदि के बदले मूत्राशय के ऊपर गर्म सेंक आदि प्रयोग करना चाहिये।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

त्रयोदश अध्याय

अल्पदृष्टि

[Defective vision]

[१]

अल्पदृष्टि को यदि सभ्य समाज की व्याधि कहा जाय तब बहुत गलत नहीं होगा। पृथ्वी की विभिन्न असभ्य जातियों के लोग खाली आँख से जितनी दूर की चीज देख पाते हैं उसे देखने के लिये सभ्य समाज के लोगों को दूरबीन की जरूरत पड़ती है। असभ्य समाज के लोगों के भीतर अल्पदृष्टि अत्यन्त कम है। किंतु सभ्य समाज के लोगों की दृष्टिशक्ति की जिस प्रकार अवनति हुई है यह देखकर विस्मित होना पड़ता है। किसी किसी की राय यही है कि वर्तमान समय में २१ वर्ष होते न होते ही सैकड़े ९० व्यक्तियों की दृष्टिशक्ति खराब हो जाती है तथा ४० वर्ष के लोगों में ऐसे लोग प्रायः देखे नहीं जाते, जिनकी दृष्टिशक्ति सतेज है।

साधारणतः दृष्टिशक्ति थोड़ा खराब होते ही लोग चश्मा व्यवहार करते हैं। किंतु चश्मा का व्यवहार कभी अल्पदृष्टि की चिकित्सा नहीं है। यह बहुत कुछ लंगड़े आदमी के लाठी व्यवहार करने के समान है। लाठी के व्यवहार द्वारा लंगड़ा पाँव आरोग्य प्राप्त कर सकता है, ऐसा सोचना भ्रम है। चश्मा के व्यवहार से भी अल्पदृष्टि आरोग्य नहीं होती। बल्कि चश्मा के व्यवहार द्वारा जिस कारण से अल्पदृष्टि उत्पन्न होती है उस ओर से ही रोगी का ध्यान हट जाता है। इसके फलस्वरूप चश्मा व्यवहार करते हुए भी रोगी की दृष्टिशक्ति क्रमशः क्षीण होती जाती है। इसीलिये प्रायः देखा जाता है कुछ दिन चश्मा व्यवहार करने के बाद उसी शक्ति के शीशे से और अच्छी तरह से दिखाई नहीं देता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

तब उससे अधिक शक्तिसम्पन्न शीशे के व्यवहार करने की आवश्यकता होती है।

किंतु जब थोड़ी दृष्टिशक्ति रहती है अथवा जब दृष्टिशक्ति क्रमशः घटती जाती है तब प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा दृष्टिशक्ति को क्रमशः इस प्रकार बढ़ाया जा सकता है कि बहुत अवस्था में चश्मा की और आवश्यकता नहीं होती तथा कुछ दिन के बाद चश्मा उतार फेंका जा सकता है।

चश्मा के अतिरिक्त दृष्टिशक्ति की उन्नति सम्भव है या नहीं, इसके सम्बन्ध में अमेरिका के डा० बेट्स (William H. Bates, M.D.) ने दीर्घ अवधि तक अनुसन्धान किया तथा दृष्टिशक्ति बढ़ाने की विभिन्न पद्धतियों का आविष्कार किया। इसके बाद विभिन्न स्थानों में अनुसन्धान के फलस्वरूप इस व्यवस्था की उन्नति हुई है। इन सब पद्धतियों का अनुसरण करके पृथ्वी के विभिन्न स्थानों में हजार हजार व्यक्तियों ने अल्पदृष्टि और विभिन्न चक्षुरोगों से मुक्ति प्राप्त की है तथा बहुत लोग चश्मा सम्पूर्ण रूप से छोड़ देने में सक्षम हुए हैं।

पारी पारी से आँख का व्यायाम और विश्राम ग्रहण करना ही इस चिकित्सा की मूल बात है।

शरीर के अन्यान्य अंगों के लिये जैसे व्यायाम का प्रयोजन है, वैसे ही आँख के भी व्यायाम की आवश्यकता है तथा जब नियमित वैज्ञानिक प्रणाली से आँख का व्यायाम ग्रहण किया जाता है, तब आँखें भी यथेष्ट रूप से सबल होती हैं, इसकी दुर्बलता लुप्त होती है तथा दृष्टिशक्ति भी साथ साथ उन्नति प्राप्त करती है।

आँख के व्यायाम जिस किसी स्थान में, घर के भीतर, बरामदे में या खुले मैदान में बैठकर या खड़े होकर ग्रहण किये जा सकते हैं। इस समय मस्तिष्क स्थिर तथा शरीर सम्पूर्ण रूप से शिथिल कर लेना आवश्यक है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

पहले ही दोनों आँखे जहाँ तक फैलायी जा सकती हैं, बायीं ओर फैलाकर फिर दाहिनी ओर फैलानी पड़ती हैं। इस प्रकार से १२ बार द्रुत व्यायाम करना आवश्यक है।

इसके बाद जितना ऊपर की ओर तथा नीचे सम्भव हो सिर स्थिर रखकर १२ बार दृष्टि ले जानी चाहिये।

तत्पश्चात् आँख को बायीं ओर तिरछे रूप में ऊपर ले जाने के बाद फिर दृष्टि नीची लाकर दाहिनी ओर नीचे के कोण में फैलानी जरूरी है। यह १२ बार करके फिर ठीक विपरीत प्रकार से दक्षिण कोण से वाम लोग में १२ बार दृष्टि ले जाना आवश्यक है।

इसके बाद आँखें घुमाकर १२ बार वृत्ताकार में दृष्टि ले जानी पड़ती है। इसके बाद विपरीत दिशा से फिर घुमाते हुए १२ बार दृष्टि परिचालित करना कर्तव्य है।

तत्पश्चात् १२ बार आँखें जोर से बन्द करके फिर जोर से खोलनी पड़ती हैं। इसे पलक मारना (blinking) कहते हैं। यह व्यायाम दूसरे समय भी ग्रहण किया जा सकता है। पढ़ने के समय बीच बीच में पलक मारने से बहुधा अधिक पढ़ा जाता है। स्वाभाविक अवस्था में भी प्रत्येक मिनट में जिसमें ६ से १२ बार पलकें बन्द हों इस प्रकार का एक अभ्यास बना लेना उचित है। इससे आँखों का स्वास्थ्य अच्छा रहता है। यह अत्यन्त आसान होते हुए भी आँखों का दबाव दूर करने में यह अत्यन्त फलप्रद है।

जिनकी उम्र चालीस के पास पहुँच गई है, उन्हें बीच बीच में कुछ दिनों के लिये व्यायाम ग्रहण करना उचित है। इससे आँखों के चारों ओर की मांसपेशियों का लचीलापन बना रहता है तथा दृष्टिशक्ति सहज ही क्षीण नहीं हो सकती। जिनकी दृष्टिशक्ति खराब हो गई है, उम्र कम होने पर भी उन्हें यह दिन में दो बार ग्रहण करने चाहिये।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

ये व्यायाम ग्रहण करने में केवल कई मिनट समय की आवश्यकता होती है। किंतु इससे आश्चर्यजनक फल प्राप्त होता है। कुछ दिन ये व्यायाम अभ्यास करने के बाद आँखों की मांसपेशियों का लचीलापन अनुभव करके विस्मित होना पड़ता है। ये व्यायाम कुछ दिन करते ही आँखों के विभिन्न अंश सबल हो उठते हैं तथा साथ साथ दृष्टिशक्ति भी उन्नति प्राप्त करती है (Bernarr Macfadden—Strengthening the Eyes, p. 94)।

आँख का मर्दन भी अत्यन्त हितकर है। एक हाथ की उंगलियाँ आँख के नीचे रखकर उँगलियाँ घुमा घुमाकर आँख के चारों ओर मर्दन करना पड़ता है। इसके द्वारा आँख के भीतर रक्त-सञ्चालन बढ़ जाता है।

आँख के ऊपर गर्म-ठंडा लेने से भी आँख में एक व्यायाम का काम होता है। ढकी हुई आँख के ऊपर तीन से पाँच मिनटों के लिये गर्म देकर उसके तुरन्त बाद ठंडे पानी में भिगोई एक तौलिया द्वारा आँख ठंडी कर लेना उचित है। इस प्रकार एक साथ तीन बार करना चाहिये। यह स्मरण रखना आवश्यक है कि आँख में कभी भी बर्फ देना उचित नहीं। कारण वह रक्त-संचालन बन्द करके आँखों के भीतर एक थकावट ले आती है।

[२]

इस प्रकार व्यायाम ग्रहण करने के साथ साथ आँखों को विश्राम देना चाहिये।

डा० बेट्स का प्रधान सिद्धान्त यही है कि आँखों के चारों ओर की मांसपेशियों की उत्तेजित अवस्था (strained condition) ही अल्पदृष्टि का प्रधान कारण है। यह उत्तेजना दूर होते ही दृष्टि-शक्ति लौट आती है। यह अवस्था दूर करने का सर्वश्रेष्ठ उपाय है हथेली द्वारा आँख को ढकना। अंग्रेजी में इसे पर्लिमग (palming)

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh
कहते हैं। एक हाथ की उँगलियों के ऊपर दूसरे हाथ की उंगलियों को रखकर यह ग्रहण किया जाता है। यह इस प्रकार से ग्रहण करना आवश्यक है जिसमें आँख पर किसी प्रकार का दबाव न पड़े तथा किसी प्रकार प्रकाश न दिखाई पड़े। इसके लिये उँगलियों को कुछ कुछ कटोरा जैसा कर लेना आवश्यक है। जिसमें श्वास-प्रश्वास में कोई असुविधा न हो इसकी ओर भी ध्यान रखना चाहिये। इस समय शरीर सम्पूर्ण रूप से ढीला (relaxed) कर लेना उचित है तथा आँखें मूँदकर गहरे काले रंग के किसी पदार्थ का ध्यान करना कर्तव्य है (William H. Bates, M.D.—Good Sight without Glasses, p. 53, London)। इस प्रकार से अन्य जिस किसी व्यवस्था की अपेक्षा आँखों को अधिक विश्राम दिया जाता है (Harry Benjamin—Better Sight without Glasses, p. 56, Allahabad, 1944)। अतः इसके द्वारा सबकी अपेक्षा द्रुतगति से दृष्टिशक्ति लौट आती है।

आँखों को विश्राम देने के लिये झूमना (swinging) भी विशेष हितकर है। इसके द्वारा आँख का दबाव (strain) लुप्त हो जाता है। अतः यह ग्रहण करने के फलस्वरूप दृष्टिशक्ति द्रुत उन्नति प्राप्त करती है। यह ग्रहण करने के लिये एक खिड़की के सामने दोनों पाँव एक फुट की दूरी पर रखकर शरीर को सम्पूर्ण रूप से ढीला करके खड़ा होना आवश्यक है। इस समय दोनों हाथ शरीर के दोनों बगल शिथिल रूप से झूलते रहेंगे। इसके बाद शरीर को घड़ी के पेन्डुलम के समान धीरे-धीरे एक बगल से दूसरे बगल झुलाना चाहिये। झुलाने के साथ साथ लक्ष्य करना पड़ेगा कि खिड़की की सीखचें शरीर की विपरीत दिशा में झूल रही हैं। एक मिनट तक इसी प्रकार झूलने के बाद आँखें बन्द करके एक मिनट झूलना आवश्यक है। किंतु आँखें बन्द करने के समय भी कल्पना करना उचित है कि खिड़कियों की सीखचें विपरीत दिशा में झूल रही हैं। यह दिन में कम से कम

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

एक बार पाँच मिनटों से दस मिनटों के लिये ग्रहण करना उचित है। आँखों में थकान या दर्द होने पर भी यह ग्रहण किया जा सकता है।

आँखों में पानी के छींटे मारना भी आँखों का दबाव (strain) नष्ट करने का एक प्रधान उपाय है। दोनों आँखें बन्द करके आँखों के ऊपर पानी के छींटे मारना चाहिये। प्रतिदिन स्नान के समय यह अवश्य ही ग्रहण करना उचित है तथा अस्वस्थ अवस्था में दिन में तीन बार ग्रहण करना कर्तव्य है। इसके अलावा जभी आँखें गर्म हो जाये या थक जाये तभी यह ग्रहण किया जा सकता है। प्रति बार कम से कम २० बार पानी के छींटे लेना उचित है। सदा ही इसके लिये ठंडा पानी व्यवहार करना चाहिये।

पानी के छींटे के बदले आई कप (eye cup) भी व्यवहार किया जाता है। आई कप ठंडे पानी में भरकर आँख से सटाकर बीस से तीस सेकेण्ड तक बार बार उसके भीतर आँखें खोलनी और बन्द करनी पड़ती है। प्रत्येक आधे मिनट पर पानी बदल देना आवश्यक है। पानी के छींटे से भी यह अधिक फलप्रद है।

आँख में यदि जलन रहे तब आँख के ऊपर मोटा करके ठंडी मिट्टी की पट्टी देने से अत्यन्त लाभ होता है। यह दिन में दो बार २० मिनटों के लिये दी जा सकती है। दोनों आँखें ढककर यह ग्रहण करना आवश्यक है। इसके बाद पानी से आँखें धो लेना उचित है। आँख के ऊपर मिट्टी देने से मिट्टी भीतर चली जायगी ऐसा कभी भी सोचना उचित नहीं। किंतु मिट्टी खूब साफ और मक्खन जैसी मुलायम तथा बलूहट होनी उचित है।

[३]

आँखों को जैसी व्यायाम और विश्राम की जरूरत है, वैसी ही आँखों की शक्ति में वृद्धि करना भी आवश्यक है। यह प्राप्त करने का प्रधान उपाय ही है सूर्यकिरणें स्नान (sun bath)।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

आँखों के विश्राम की भाँति सूर्य की किरण भी आँखों के स्वास्थ्य के लिये समान रूप से आवश्यक है (William H. Bates, M.D.—Good Sight without Glasses, p. 155, London)। यह ऐसी फलप्रद है, दूसरी कोई चिकित्सा ही इसका स्थान ग्रहण नहीं कर सकती। ठीक ठीक रूप से ग्रहण करने से इसके द्वारा आँखों की सब प्रकार की तकलीफ दूर हो सकती है (R S. Agarwal, I.S.M.F.—Mind and Vision, p. 69, Delhi, 1944)। प्रतिदिन सुबह में और शाम के पहले जब सूर्य का तेज कम रहे तभी आँखें ढककर सूर्यकिरण ग्रहण करना उचित है। एक ही साथ यह दीर्घ समय के लिये नहीं लेनी चाहिये। बल्कि बार बार थोड़ी देर के लिये लेना कर्तव्य है। इसीसे लाभ अधिक होता है। साधारणतः प्रति बार पाँच से छः मिनटों के लिये सूर्यताप ग्रहण करने से ही यथेष्ट हो जाता है तथा इससे मात्र पाँच-छः दिनों में ही दृष्टिशक्ति की उन्नति आरम्भ हो जाती है।

धूपस्नान ग्रहण करने के वाद ही आँखों को धो लेना आवश्यक है। इसके लिये आँखों के ऊपर ठंडे पानी के छींटे दिये जा सकते हैं अथवा आई कप व्यवहार किया जाता है।

यह चिकित्सा आरम्भ करने के समय चश्मा का सम्पूर्ण रूप से परित्याग करना उचित है (William H. Bates, M.D.—Good Sight without Glasses, p. 127, London)। किन्तु यदि यह सम्भव न हो तब केवल जरूरत के समय यह लगाया जा सकता है।

[४]

इन सब व्यवस्था के साथ आँखों की स्वास्थ्य-नीति विशेष रूप से अनुसरण करना आवश्यक है। अन्यथा किसी व्यवस्था से ही यथेष्ट लाभ नहीं हो सकता। पहले ही दोनों आँखों को साफ रखना चाहिये।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

यही आँखों की स्वास्थ्य-नीति का पहला नियम है। किंतु आँख पर हाथ देने के पहले सदा ही हाथ धो लेना आवश्यक है। यह नियम सदा एवं सब अवस्था में पालन करना उचित है।

प्रतिदिन नींद के समय आँख में कुछ गन्दगी जमा होती है। नींद खुलने पर बिछावन से उठके वह ठंडे पानी से धोकर साफ कर लेना उचित है।

प्रति बार शौच के बाद तथा दीर्घ समय तक लिख या पढ़कर उठने के बाद आँखों में थोड़ा खून इकट्ठा हो जाता है। इसलिये शौच आदि के बाद आँखें धो लेनी चाहिये। इससे आँखों का दबाव द्रुत लुप्त होता है।

आँखों के व्यवहार हमेशा ही स्वास्थ्य-विद्या के नियमानुसार होना चाहिये। बहुत तेज बिजली की रोशनी में अथवा धूप में किताब रखकर पढ़ना अथवा हठात् तेज रोशनी की ओर देखना अत्यन्त हानिकारक है। गाड़ी में सफर करते समय, चलते समय अथवा लेटकर किताब पढ़ना अनुचित है। पढ़ने के समय कभी भी आँख पर अतिरिक्त जोर नहीं देना चाहिये। इसीलिये बहुत महीन अक्षरों में छपी हुई किताब साधारण अवस्था में वर्जन करना उचित है। जैसे बहुत अधिक तेज रोशनी पढ़ने के लिये वर्जित है, वैसे ही बहुत धीमी रोशनी से परहेज करना चाहिये। सिनेमा देखने के लिये इस समय आँखें नहीं उठाके सिर ऊँचा करके सिनेमा देखना कर्तव्य है। इससे आँखें खराब नहीं हो सकतीं।

जैसे परिश्रम करके सदा ही हम लोग विश्राम करते हैं तथा उससे शरीर अच्छा रहता है, वैसे ही आँखों से काम लेने पर भी बीच बीच में उसे विश्राम देना उचित है। इसके लिये आँखों के ऊपर हाथ का दबाव (palming) लेना ही सबकी अपेक्षा अधिक फलप्रद है।

आँखों में जिसमें धूल, मिट्टी आदि नहीं प्रवेश कर सकें तथा धुआँ न लगे इसके लिये यथासम्भव सतर्क रहना उचित है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

किंतु यह सदा ही ध्यान रखना कर्तव्य है, दोनों आँखों को अच्छा करने का प्रधान उपाय ही है स्वास्थ्य अच्छा बनाना। स्वास्थ्य अच्छा होने से आँख भी अच्छी होती है (Jesse Feiring Williams, M.D.—Personal Hygiene Applied, p. 386, Philadelphia, 1950)। आँखें शरीर से अलग कोई यंत्र नहीं हैं। ये समस्त शरीर की ही अंश हैं। इसलिये सर्वदैहिक कारण से जैसे अन्यान्य रोग उत्पन्न होते हैं, अल्पदृष्टि तथा आँख के विभिन्न रोग भी उसी प्रकार उपस्थित होते हैं। जब शरीर-संचित विभिन्न विषाक्त पदार्थों के द्वारा आँखें आक्रान्त होती हैं तभी यह रोग प्रकट होता है।

इसलिये आँखों को उत्तेजनारहित तथा सबल करने के साथ साथ नियमित रूप से यथेष्ट पानी पीना उचित है, कोष्ठ साफ रखना कर्तव्य है तथा बीच बीच में वाष्पस्नान आदि लेकर शरीर को विकार-रहित कर लेना आवश्यक है। आँखें अच्छी करने के लिये वर्तमान समय में व्यापक रूप से स्टीम बाथ आदि का प्रयोग किया जाता है। विशेषतः सिफलिस और सुजाक आदि से उत्पन्न चक्षुरोग में यह विशेष रूप से व्यवहृत होता है (Conrad Berens, M.D., F.A.C.S.—The Eye and its Diseases, p. 849, Philadelphia, 1950)।

इसके साथ मन को भी शान्त रखने की आवश्यकता है। मन शान्त रहने पर आँखों में भी दबाव (strain) नहीं रहता। वस्तुतः बेट्स की विभिन्न पद्धतियों का प्रधान उद्देश्य ही है मन को तथा साथ साथ आँख को शान्त करना। विश्राम (relaxation) सदा ही दृष्टिशक्ति (vision) की उन्नति करती है। इसलिये सब प्रकार के दृष्टिसंबंधी रोग में शवासन अत्यन्त फलप्रद है। मन का बल भी सदा अक्षुण्ण रखना चाहिये। इसके लिये दिन में दो बार स्वकल्प-भावना (auto-suggestion) ग्रहण करके दृष्टिशक्ति की आश्चर्यजनक उन्नति प्राप्त की जाती है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

रोगी के पथ्य की ओर भी ध्यान देना आवश्यक है। सब रोगों में ही ऐसा खाद्य ग्रहण करना उचित है जिसमें शरीर विकार-रहित हो तथा शरीर स्वस्थ होकर गठित हो उठे। डा० केलॉग ने अपनी पुस्तक में कई एक रोगियों की चर्चा की है जो प्रधानतः पथ्य के द्वारा पेट साफ रखकर दृष्टिशक्ति का पुनरुद्धार करने में समर्थ हुए हैं (The New Dietetics, p. 926, Washington, 1923)।

यह भी देखा गया है, विभिन्न विटामिन और खाद्य-उपादान के अभाव से अल्पदृष्टि विभिन्न प्रकार से प्रकट होती है। खाद्य में ए-विटामिन के अभाव से रतौंधी रोग उत्पन्न होता है तथा इस रोग में ए-विटामिनयुक्त खाद्य देने से बारह घंटे के अन्दर रोग आरोग्य प्राप्त कर लेता है। इसीलिये सैकड़ों वर्षों से पृथ्वी के विभिन्न स्थानों में रतौंधी रोग में जन्तुओं का लीवर व्यवहृत होता आ रहा है (Franklin Bicknell, D.M., M.R.C.P.—The Vitamins in Medicine, p. 1, London, 1953)।

यह भी प्रमाणित हो गया है कि विभिन्न विटामिन विशेषतः ए-विटामिन के अभाव से आँखों के तन्तुओं की अवनति होती है। चर्बी जातीय खाद्य का अभाव भी दृष्टिहीनता का एक प्रधान कारण है। यह कहा जाता है जापानी लोग चर्बी जातीय खाद्य ग्रहण नहीं करते इसीसे जापान में समीपदृष्टि (myopia) रोग से बहुत अधिक भुगतते रहते हैं (Conrad Berens, M.D., F.A.C.S.—The Eye and its Diseases, pp. 260—2, Philadelphia, 1950)।

तथापि अन्यान्य रोगों की भाँति इस रोग का भी प्रधान पथ्य होना उचित है यथेष्ट फल, सलाद, उबाली हुई तरकारी, तरकारी का सूप, दही, दूध, मधु, तरल गुड़, माँड़ समेत भात और चोकर समेत रोटी। अल्पदृष्टि रोग में घी और मक्खन अत्यन्त हितकर है। किंतु ये सब चीजें अत्यन्त हल्के रूप में ग्रहण करनी चाहिये।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

समीपदृष्टि

[Myopia]

दूर की चीज यदि साफ साफ नहीं दिखाई दे तब उसे समीपदृष्टि (short sight) कहते हैं। इस रोग में लिखने-पढ़ने में कोई असुविधा नहीं होती, किंतु दूर की चीज साफ साफ दिखाई नहीं पड़ती।

जहाँ सैकड़े ८० लोग दूरदृष्टि (hypermetropia) से भुगतते हैं, वहाँ सैकड़े मात्र १० व्यक्तियों को ही यह रोग रहता है। इनके भीतर vast majority of the cases are not pathological—आधे से भी अधिक लोगों को भी रोगी कहना नहीं चल सकता (Sir Stewart Duke-Elder, Ph.D., D.Sc., M.D., F.R.C.S.—Persons' Diseases of the Eye, p. 442, London, 1954)। हल्की समीपदृष्टि (low myopia) रोग में शायद कभी भी दृष्टिशक्ति की अवनति होती है तथा प्रायः ही अपने आप आँखें अच्छी हो जातीं हैं। किंतु चश्मा की दूकान में जाने पर वे बिना चश्मा लिये लौट नहीं पाते तथा उन्हें कह दिया जाता है, सदा चश्मा व्यवहार करने के लिये। किंतु वस्तुतः सदा चश्मा व्यवहार करने से समीपदृष्टि में वृद्धि ही होती है (R. S. Agarwal, I.S.M.F.—Mind and Vision, p. 194, Delhi, 1944)।

तीव्र समीपदृष्टि (high myopia) अवश्य ही एक कठिन रोग है। इस रोग में दिन दिन रोगी की दृष्टिशक्ति खराब होती जाती है। साधारणतः वंशानुक्रम से यह रोग प्रकट होता है तथा प्रायः ही बचपन तथा विद्यार्थी जीवन में उत्पन्न होता है। इन सब क्षेत्रों में प्रारम्भ से ही रोगी की विशेष देखभाल करना उचित है। शरीर की एक विशेष अवस्था के कारण ही दृष्टिशक्ति खराब हो जाती है। चश्मा

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

लेने के फलस्वरूप वह अवस्था कभी दूर नहीं होती तथा वही अवस्था शरीर के भीतर रहकर क्रमशः दृष्टिशक्ति खराब कर देती है। इसलिये यह रोग (progressive myopia) प्रकट होते ही अविलम्ब भीतरी शरीर का धौतिमूलक चिकित्सा आरम्भ करना उचित है तथा आँखों का व्यायाम आदि ग्रहण करना कर्तव्य है।

इस रोग में पुतलियाँ स्वाभाविक की अपेक्षा साधारणतः लम्बी रहती हैं। आँख के ऊपर गर्म-ठण्डा देने से तथा पद्धति के अनुसार धूपस्नान के बाद आँख में ठण्डे पानी के छींटे लेने से इस अवस्था का प्रतिकार होता है। किंतु सब क्षेत्रों में ही रोगी का स्वास्थ्य गठित कर लेना ही सबकी अपेक्षा बड़ी बात है (Persons' Diseases of the Eye, p. 447)। स्वास्थ्य का अर्थ अवश्य ही शरीर को मोटा करना नहीं, स्वास्थ्य का अर्थ है शरीर को विकार-रहित करना। इस रोग की अन्यान्य चिकित्सा अल्पदृष्टि के अनुरूप है।

दूरदृष्टि
[Hypermetropia]

दृष्टिशक्ति की साधारण असुविधा को यदि रोग कहकर गिना जाय तब यह कहा जा सकता है कि सभ्य समाज के सैकड़े ८० व्यक्ति ही इस रोग से भुगतते रहते हैं। इस रोग में दूर की चीज दिखाई पड़ती है, किंतु पुस्तक आदि पढ़ने में ही असुविधा होती है। यदि आँख में कोई गड़बड़ी न रहे तब युवक और प्रौढ़ व्यक्तियों को इसके लिये कभी भी चश्मा लेना उचित नहीं (Sir Stewart Duke-Elder, Ph.D., D.Sc., M.D., F.R.C.S.—Persons' Diseases of the Eye, p. 448, London, 1954)। यदि आँख की गड़बड़ी हो तब भी असमय चश्मा नहीं लेना चाहिये। आँख का दर्द और सिरदर्द आदि जिन सब कारणों से लोग साधारणतः चश्मा लेते हैं, वह अत्यन्त सहज ही गायब हो सकता है कई एक दिनों तक स्नान के

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Arya Samaj Foundation, Chandigarh

पहले नौ मिनटों के लिये फुट बाथ लेने से। इस समय सिर, दोनों कान और आँखें एक भारी गीली तौलिया से ढके रखना आवश्यक है तथा प्रत्येक तीन मिनट के बाद यह हटाकर दुबारा ठंडे पानी में डुबाकर प्रयोग करना कर्तव्य है। इस अवस्था में कई एक दिनों तक प्रतिदिन डूस लेकर अवश्य ही कोष्ठ साफ करना उचित है तथा नीबू के रस के साथ काफी पानी पीना आवश्यक है। पथ्य की ओर भी रोगी को विशेष ध्यान देना उचित है। इस रोग में आँखें स्वाभाविक की अपेक्षा छोटी और सिकुड़ी हुई रहती हैं। इसके लिये सर धोकर आँखों के ऊपर गर्म-ठण्डा देना अत्यन्त फलप्रद है। अन्यान्य सब चिकित्सा ही अल्पदृष्टि के अनुरूप हैं।

बुढ़ापे की क्षीणदृष्टि
[Presbyopia]

साधारणतः ४० से ४५ वें वर्ष के भीतर यह अवस्था आती है। यह रोग प्रायः ही धीरे धीरे अग्रसर होता है। आँखों की क्षमता घट जाने के साथ साथ रोगी अनुभव करता है कि वह पहले जैसा छोटे अक्षर देख नहीं पाता अथवा महीन काम कर नहीं सकता। इस अवस्था में कभी कभी आँखों की थकान, तकलीफ तथा आँखों के भीतर कंकड़ पड़ने जैसा अनुभव होता है। इसके लिये अल्पदृष्टि तथा दूरदृष्टि की चिकित्सा द्रष्टव्य हैं।

अल्पदृष्टि की साधारण चिकित्सा का अनुसरण करने से केवल दृष्टिशक्ति ही जो यथेष्ट उन्नति प्राप्त करती हो ऐसा नहीं, आँख की तकलीफ गायब हो जाती है तथा साधारण स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

चतुर्दश अध्याय

दन्तरोग

[Diseases of the teeth]

[१]

मनुष्य के दाँतों की मोती के साथ तुलना की जाती है। परन्तु ये सिर्फ देह के सौन्दर्य की वृद्धि करते हैं ऐसा नहीं, देह के लिये इनकी उपयोगिता बहुत है।

दाँतों की पहली आवश्यकता यह है कि ये खाद्य को पीसकर पचाने के उपयुक्त करते हैं। वाक्यों के उच्चारण तथा शब्दों के गठन में भी इनकी सहायता विशेष रूप से आवश्यक है।

किंतु रुग्ण दन्त स्वास्थ्य-रक्षा के लिये प्रधान प्रतिबन्धक है। जब दाँत और मसूड़े रुग्ण हो जाते हैं तब उन स्थानों से देह के भीतर सदा ही विभिन्न विष तथा कीटाणु प्रवेश करते हैं। इसलिये दाँतों का स्वास्थ्य अच्छा न रहने से कभी देह का स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता है।

तन्तशूल, मसूड़े की सूजन, दाँत तथा मसूड़े का क्षय, दांतों की जड़ से पीब और खून बहना, दांतों का हिलना तथा मसूड़े की कोमल अवस्था आदि को दन्तरोग कहा जाता है।

विभिन्न कारणों से ये सब रोग-लक्षण उत्पन्न होते हैं। अधिकांश अवस्था में दांत की सफाई का अभाव ही इसका प्रधान कारण है। भोजन के बाद साधारण रूप से कुल्ला करने से सब खाद्यकण ही मुंह से निकल जायँ, ऐसा नहीं। मुँह धोने के बाद भी खाद्य के बहुत छोटे छोटे अंश दांत के भीतर छिपे रहते हैं। भोजन करने के बाद जब हम सोते हैं तब मुंह के भीतर ये सब सड़ते रहते हैं तथा इससे विभिन्न अम्ल जातीय पदार्थ (acid) उत्पन्न होते हैं। दांत में चूना की

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

श्रेणी का जो लवण (lime salts) रहते हैं उनके सम्पर्क में आकर वह क्षय होता रहता है। पहले दाँत का एनामेल क्षयप्राप्त होता है। इसके बाद मज्जा आक्रान्त हो जाते हैं। दाँतों की इस प्रकार की गंदगी से विभिन्न जीवाणु भी उनके भीतर द्रुत विस्तार प्राप्त करते हैं। तब दन्तशूल और मसूड़े का फुलाव आदि रोग धीरे धीरे प्रकट होते हैं।

[२]

दाँत साफ करने की विभिन्न व्यवस्था समाज में प्रचलित है। इनमें से ब्रश करने की प्रथा ही अधिक प्रचलित है। कारण अत्यन्त थोड़े समय में तथा बहुत अच्छी तरह इसके द्वारा दाँत साफ हो जाते हैं। किंतु ब्रश से लाभ होता है तभी जब पद्धति के अनुसार ब्रश किया जाता है।

साधारणतः ब्रश द्वारा लम्बालम्बी दाँत के इस ओर से उस ओर तक मला जाता है। किंतु दाँत मलना उचित है ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर की ओर। इस समय ब्रश जोर से दांत के ऊपर दबाये रखकर वृत्ताकार गति से उसे चलाना चाहिये। इस प्रकार दिन में कमः से कम दो बार ब्रश करना आवश्यक है। एक बार सुबह सोकर उठने के बाद तथा दूसरी बार रात में सोने जाने के ठीक पहले। रात में सोने के पहले दाँत मलने की व्यवस्था दन्तरोग में नितान्त अपरिहार्य है। केवल यह अभ्यास बनाये रखने से ही अधिकांश दन्तरोग से मुक्त रहा जा सकता है। एक विख्यात दन्तचिकित्सक ने कहा है, यदि केवल एक बार दाँत मले जांय तब सोने के पहले दाँत मलना उचित है। ब्रश करते समय कभी जल्दीबाजी नहीं करनी चाहिये। जल्दीबाजी करके दाँत मलने से मसूड़ों की अत्यन्त क्षति हो सकती है।

किंतु ब्रश से दाँत मलना हो तो ब्रश सदा विशेष रूप से साफ रखना आवश्यक है। बीच बीच में ब्रश को एक बार साबुन लगाकर सूर्य की रोशनी में सुखा लेना चाहिये। इससे वे साफ और यथासम्भव जीवाणुशून्य रहते हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

ब्रश के बदले दातुन भी व्यवहार किया जाता है। ब्रश से दातुन बहुत अधिक साफ होते हैं। किंतु उसमें असुविधा यही है, दातुन के व्यवहार में बहुत समय जाता है, बार बार थूक फेंकना पड़ता है तथा प्रतिदिन बहुत लार निरर्थक नष्ट हो जाने से पाचन क्रिया की बहुत कुछ क्षति हो जाती है।

आजकल विभिन्न श्रेणी के मंजन बाजार में छा गये हैं। किसी प्रकार का दन्त-मंजन न होने से बहुतों का दाँत मलना ही नहीं हो पाता। किंतु दन्त-मंजन के व्यवहार द्वारा कोई उपकार होता है, ऐसा सोचना गलत है। उनके द्वारा दाँत का स्वास्थ्य कभी भी बढ़ता नहीं अथवा पायरिया दूर नहीं होता। बल्कि कितने दन्त-मंजनों में ऐसे सब पदार्थ रहते हैं जिसके फलस्वरूप दाँतों का एनामेल उड़ जाता है। ये मुँह को जीवाणुशून्य नहीं कर पाते। If the mouth is healthy, they are unnecessary, and if not, they are valueless—यदि मुँह का स्वास्थ्य अच्छा रहे तब वे सम्पूर्ण अनावश्यक हैं, और यदि अच्छा नहीं रहे तब वे अच्छा करने के सिलसिले में सम्पूर्ण मूल्यहीन हैं (Harold S. Diehl, M.A., M.D.—Text-book of Healthful Living, pp. 365-6, New York, 1955)। किसी किसी दन्त-मंजन से अवश्य ही मुँह की दुर्गन्धि नष्ट होती है। किंतु यह बहुत कुछ स्वास्थ्य-सम्बन्धी प्रबन्ध में अच्छे साबुन के बदले इत्र व्यवहार करने जैसा है। मैले कपड़ों में इत्र लगाकर निकलने के समान यह हास्यास्पद बात है।

दाँत के भीतर से दूषित पदार्थ खींचकर निकाल देने के लिये विभिन्न उत्तेजक औषधियाँ दन्त-मंजनों में व्यवहृत होती हैं। ये क्रमशः मसूड़ों को दुर्बल और दाँत की रोग-प्रतिरोध क्षमता को शिथिल बना देती हैं। किंतु सब प्रकार के दन्त-मंजनों के बदले सदा ही बिना किसी खतरे के बालूवाली साफ ताजी गीली मिट्टी व्यवहार की जा सकती है। मिट्टी से नियमित रूप से दाँत मलने से तथा साथ साथ ब्रश करने से

Advd Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

दन्तशूल आदि दांत के किसी रोग का रहना ही कठिन हो जाता है। कारण जिस दूषित अवस्था के कारण विभिन्न दन्तरोग प्रकट होते हैं, बालू के कण उसे दाँत से झाड़-पोंछकर बाहर निकाल देते हैं।

इसके अतिरिक्त प्रतिबार भोजन के बाद ही अच्छी तरह कुल्ला करके मुँह धो लेना आवश्यक है। कुल्ला करते समय दाँतों के बीच इस प्रकार पानी चलाने की जरूरत होती है जिसमें दांत के भीतर स्थित अन्न के टुकड़े बाहर निकल जा सकें।

[३]

बहुत बार पर्याप्त व्यायाम के अभाव में दांत दुर्बल हो पड़ते हैं। प्रकृति ने हमारे विभिन्न दांतों को विभिन्न कार्यों के योग्य बनाकर गठित किया है। दांत के यथायोग्य व्यवहार से दांतों का एक प्रकार का व्यायाम होता है। इससे दांत अच्छे रहते हैं किंतु जब दीर्घ समय तक दांत इस प्रकार परिश्रम करने का सुयोग नहीं पाते, तब क्रमशः उनकी कार्यक्षमता घटने लगती है। इसीलिये जो दीर्घ अवधि तक कड़ी चीजें नहीं खाते, उनके मसूड़े रक्तशून्य तथा कमजोर हो जाते हैं तथा इसके फलस्वरूप दांत की जड़ें शिथिल हो पड़ती हैं।

बीच बीच में कड़ा खाद्य चबाकर खाना ही दांतों का स्वाभाविक व्यायाम है। यदि प्रतिदिन मुँह धोते समय इस प्रकार कुल्ला किया जाय कि मुँह में हल्का हल्का दर्द हो, तभी इसके द्वारा थोड़ा-बहुत व्यायाम का काम होता है।

साफ उँगलियों द्वारा मसूड़ों को रगड़ना भी दांतों के लिये अति उत्तम व्यायाम है। पहले कुछ देर तक लम्बालम्बी दोनों मसूड़े मलकर, उसके बाद तर्जनी और अंगूठे द्वारा मसूड़े के भीतर और बाहर की ओर एक साथ हल्का दबाव डालकर मलना चाहिये। प्रतिदिन पांच मिनटों के लिये इस प्रकार करने से विशेष लाभ होता है। इस प्रकार मसूड़े मलने से रक्त का संचालन बढ़ जाता है तथा इस स्थान में रुके हुए विभिन्न दूषित

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

पदार्थ निकल जाते हैं। अतः इस प्रकार के मर्दन द्वारा दांत केवल सबल होते हैं ऐसा ही नहीं, इसके द्वारा दांत के बहुत रोग आरोग्य प्राप्त कर लेते हैं।

इसके अतिरिक्त दांत के लिये निर्दिष्ट कई व्यायाम ग्रहण करना आवश्यक है। पहले एक साफ तौलिया तह करके दांतों की दोनों कतार द्वारा उसे दवाकर पकड़ना होता है। इसके बाद जितने जोर से खींचने पर कष्ट न अनुभव हो, उतने जोर से तौलिया को सामने की ओर खींचना चाहिये। यह दांत का पहला व्यायाम है। दांत जब इस प्रकार के व्यायाम के अभ्यस्त हो जाते हैं तब क्रमशः विभिन्न दिशाओं से तौलिया को खींचना पड़ता है। तब ऊपर की ओर, नीचे की ओर तथा दाहिनी और बायीं ओर खींचा जा सकता है। सामने की ओर खींचने से सामने के दांत सबल होते हैं तथा अगल-बगल खींचने से अगल-बगल के दांत सबलता प्राप्त करते हैं। व्यायाम चलाने के साथ साथ क्रमशः दांत सबल होते जाते हैं। तब क्रमशः अधिक जोर देकर तथा बीच बीच में झटका देकर खींचना पड़ता है। अन्त में कुछ दिन व्यायाम चलाने के बाद दाँत इस प्रकार सबल हो जाते हैं कि एक आदमी तौलिया को ऊपर बाँधकर अपने शरीर का समस्त वजन और किसी किसी समय उससे भी बहुत अधिक वजन दाँत के ऊपर रख सकता है। किन्तु ये व्यायाम सदा धीरे धीरे बढ़ाने उचित हैं तथा दाँतों में किसी प्रकार चोट न लगे, ऐसे होने आवश्यक हैं।

इसके अतिरिक्त हमारे तन्त्रशास्त्रों ने एक विशेष व्यायाम ग्रहण करने का उपदेश दिया है। यह अत्यन्त सहज है किंतु अत्यन्त फलप्रद है। मलमूत्र त्याग करते समय दाँत पर खूब जोर से दबा रखने से ही यह व्यायाम ग्रहण करना होता है। जब तक मलमूत्र त्याग न हो तब तक यह करना आवश्यक है। इससे दाँत और मसूड़े मजबूत होते हैं तथा दाँत के विभिन्न रोग दूर हो जाते हैं।

गर्म-ठंडा कुल्ला भी दन्तरोग की एक प्रधान स्थानीय चिकित्सा है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh
पहले एक से दो मिनट गर्म पानी से कुल्ला करके उसके बाद एक से दो मिनट ठंडे पानी से कुल्ला करना आवश्यक है तथा एक साथ इस प्रकार तीन बार करना कर्तव्य है। इससे मसूड़े सबलता प्राप्त करते हैं, दाँत कड़े होते हैं, मसूड़े के घाव आरोग्य प्राप्त करते हैं, पीब गायब हो जाता है तथा दाँत का दर्द दूर हो जाता है। कभी भी दांत में दर्द या मसूड़ों में सूजन उत्पन्न होते ही गर्म-ठण्डा लेना उचित है। बहुत अवस्था में एक बार १२ मिनटों के लिये गर्म-ठंडा लेने से ही खाद्य ग्रहण किया जा सकता है। यह सदा ही गर्म से आरम्भ करके ठंडा पर अन्त करना चाहिये।

[४]

बहुत अवस्था में भोजन करने की त्रुटि से भी दांत के विभिन्न रोग प्रकट होते हैं। कैलशियम आदि जिन रासायनिक पदार्थों द्वारा दांत गठित होते हैं, यदि पथ्य की गड़बड़ी के फलस्वरूप दीर्घ अवधि तक शरीर में इन सब खनिज लवणों का अभाव हो जाय, तब प्रकृति अपनी आवश्यकता पूरी करने के लिये शरीर के भीतर ये सब पदार्थ जहां सबसे अधिक मौजूद रहते हैं, उसी स्थान से खींच लाती है। तब अस्थियां और दांत क्षयप्राप्त होते हैं अथवा दुर्बल हो पड़ते हैं (Bernarr Macfadden—Tooth Troubles, p. 159)।

कभी कभी दांतों के भीतर छेद हो जाता है। तब विभिन्न खनिज पदार्थों द्वारा उसे भर दिया जाता है। किंतु जिस कारण से दाँतों का क्षय होता है वह यदि रह जाय, तब एक दाँत का गड्ढा भर देने से भी दूसरे दाँत में गड्ढा हो जा सकता है। इसके अतिरिक्त दाँतों के छेद बन्द कर देने से प्रायः ही दाँत की जड़ में अत्यन्त दुःखदायक व्रण उत्पन्न हो जाता है (E. V. McCollum, Ph.D.—The Newer Knowledge of Nutrition, p. 624)। अतः ऐसी व्यवस्था करना ही कर्तव्य है जिसमें दांत गठित हो उठे और दांतों का क्षय रुक

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

जाय। इसके लिये रोगी का खाद्य ऐसा होना उचित है जिससे उसमें यथेष्ट परिणाम में कैलशियम और फॉस्फोरस रहे। कारण ये ही दांत के प्रधान उपादान हैं तथा इनके अभाव में दांत का क्षय, दांतों की दुर्बलता तथा विभिन्न दन्तरोग उपस्थित होते हैं।

एक बार कुछ गिनीपिग और बन्दरों को खनिज लवण-शून्य खाद्य खिलाकर रक्खा गया। कुछ दिनों के बाद देखा गया, उनके दांतों की जड़ें कमजोर हो गई हैं, किसी किसी जानवर के दांतों में गड्ढा हो गया है तथा किसी किसी के दांतों की जड़ में पीब पैदा हो गई है।

रोगी के लिये विटामिन सी और डी भी विशेष रूप से आवश्यक हैं। कारण ये दांत की वृद्धि में सहायता करते हैं तथा जब खाद्य में ये दोनों विटामिन नहीं रहते, तब दांतों का क्षय होता है, दांत की जड़ हिलने लगती है तथा दांतों में यथेष्ट रूप से चूना और फास्फोरस का संचय नहीं हो पाता।

इसलिये रोगी जिसमें यथेष्ट परिमाण में आवश्यक खनिज लवण और विटामिन पा सके इसके लिये पर्याप्त रूप से नीबू, नारंगी, अच्छा पका केला, आँवला, पपीता, विभिन्न साग-सब्जियां, अँकुर आया हुआ मूँग, दूध, दही, पिसा हुआ तिल, अगस्त्य का फूल, चोलाई साग और सोयाबीन आदि ग्रहण करना उचित है। रोगी को प्रतिदिन सूर्य की किरण ग्रहण करके स्नान करना चाहिये। कारण सूर्य की किरणें त्वचा पर पड़ने से स्वयं ही शरीर के भीतर विटामिन डी उत्पन्न होता है (Lucius Nicholls, M.D., B.C.—Tropical Nutrition and Dietetics, p. 31)।

इस रोग में चीनी तथा अन्यान्य परिशोधित खाद्य (refined food) सम्पूर्ण रूप से वर्जन करना चाहिये। चीनी तैयार करते समय ईख के रस के जितने विटामिन और खनिज लवण हैं सभी निकल जाते हैं। इसलिये दांत और हड्डियों के विभिन्न रोग उपस्थित होते हैं। वस्तुतः वर्तमान समय में अत्यधिक चीनी के व्यवहार के फलस्वरूप ही

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

पृथ्वी के विभिन्न स्थानों में दांत का क्षयरोग (caries of the teeth) प्रकट होता है (Hugh G. Garland, M.D., F.R.C P., and William Phillips, M.D., F.R.C.P.—Medicine, p. 223, London, 1953)।

अमेरिका के मिचीगन विश्वविद्यालय में इस सम्बन्ध में जो अनुसंधान हुआ है उसमें देखा गया है कि केवल चीनी बन्द करते ही दांतों का क्षय रुक जाता है (Olive E. Byed, M.D.—Health Instruction Yearbook, p. 145, Standford, 1948)।

मैदा आदि परिशोधित खाद्य से भी रोगी को परहेज करना उचित है।

किंतु दांत को सबसे अधिक दुर्बल करता है दूषित और विषैला रक्तस्रोत। जब किसी कारण से रक्त ही दूषित हो जाता है तथा इसी दूषित पदार्थ द्वारा दांत आक्रान्त होते हैं तभी विभिन्न दन्तरोग प्रकट होते हैं। इसीलिये पाचन यंत्र की विशृङ्खलता तथा गर्भावस्था में बहुधा दन्तरोग दिखाई पड़ते हैं।

अतः दांतों की स्वास्थ्यरक्षा तथा इसके विभिन्न रोगों के आरोग्य का प्रधान उपाय है दांतों की चिकित्सा के साथ साथ देह का स्वास्थ्य भी अच्छा कर लेना। अमेरिका के एक डाक्टर ने कहा है कि शरीर के स्वास्थ्य के बिना दांतों का स्वास्थ्य गठित कर लेना सम्पूर्ण असम्भव है, तथा दांतों के स्वास्थ्य के बिना भी शरीर का स्वास्थ्य गठित करना सम्भव नहीं (Olive E. Byed, M.D.—Health Instruction Yearbook, 1951, p. 35, California)।

पायरिया

[Pyorrhea]

यह प्रौढ़ावस्था का एक कठिन रोग है। मसूड़ों की सूजन, दांतों

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

की जड़ों में पीब का संचय, मसूड़ों का क्षय, दांत के ऊपर दन्त-पत्थर (tartar) की उत्पत्ति आदि इस रोग के प्रधान लक्षण हैं। इस रोग में मसूड़े लाल और कोमल हो जाते हैं, दर्द करते हैं तथा सहज ही दांतों की जड़ से खून गिरता है। मसूड़े कोमल और रोगग्रस्त हो जाने के कारण दांत क्रमशः हिलने लगते हैं। पायरिया में दांतों की जड़ में जो पोब संचित होता है वह सदा ही खाद्य के साथ शरीर के भीतर चला जाता है और वह शरीर का स्वास्थ्य नष्ट कर देता है। बहुत अवस्था में इससे हार्ट, किडनी, लीवर और मस्तिष्क आदि यंत्र के रोग उत्पन्न होते हैं।

पायरिया ऐसा सांघातिक रोग है कि यह रोग रहने पर कभी दीर्घ जीवन प्राप्त नहीं हो सकता। यह किसी घातक तरुण रोग की भांति एक दिन में जीवन नष्ट नहीं करता। किंतु भीतर भीतर शरीर को ध्वंस कर देता है। पायरिया होने पर सोचना उचित है, इसे ध्वंस न कर सकने पर यही रोगी का जीवन ध्वंस कर देगा।

साधारणतः इस रोग में दांत उखाड़ दिये जाते हैं। किंतु इससे रोग का मूल कारण नहीं मिटता, बल्कि वही शरीर के भीतर रहकर दूसरा कोई कठिन रोग उत्पन्न कर देता है।

किसी जीवाणु से यह रोग उत्पन्न नहीं होता (Randolph Lee Clark, M.Sc., M.D.—The Book of Health, p. 391, New York, 1953) तथा इस रोग के कारण का पता नहीं चलता, ऐसा कहा जाता है। किंतु भीतरी शरीर की सफाई करनेवाली चिकित्सा (internal cleansing treatment) करके बहुत-से पायरिया के रोगियों ने आरोग्य प्राप्त किया है (Stanley Leaf—Health for All, June, p 22, London, 1952)। यही प्रमाणित करता है कि शरीर का दूषित संचय ही रोग का मूल कारण है। जब इसके द्वारा मसूड़े आक्रान्त होते हैं तभी यह रोग होता है। वस्तुतः पायरिया एक स्थानीय रोग नहीं। अतः

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

केवल स्थानीय चिकित्सा द्वारा कभी यह आरोग्य नहीं किया जा सकता (Bernarr Macfadden—Tooth Troubles, p. 127)। शरीर को विकार-रहित करने के साथ साथ दांतों के स्वास्थ्य की ओर ध्यान देना ही इसकी प्रधान चिकित्सा है।

इसके लिये पहले ही नीम के पानी से डूस, हिप बाथ और पेट की लपेट आदि द्वारा कोष्ठ साफ और पेट ठीक कर लेवे, बीच बीच में स्टीम बाथ, गीली चादर का पैक और उपवास आदि ग्रहण करके नीबू के रस के साथ काफी पानी पीकर तथा फल, सलाद, साग-सब्जी और दही इत्यादि रक्षाकारी खाद्य खाकर शरीर को विकार-रहित करना आवश्यक है। इसके बाद तथा साथ साथ दांत के स्वास्थ्य की ओर ध्यान देने से पायरिया निश्चित रूप से आरोग्य प्राप्त करता है।

रोगी को प्रतिदिन एक बार गर्म-ठंडा कुल्ला ग्रहण करना उचित है तथा दिन में तीन बार काफी बालूवाली गीली मिट्टी के द्वारा दांत मलना आवश्यक है। यह स्मरण रखना चाहिये कि गर्म-ठंडा कुल्ला और मिट्टी द्वारा मलना ही दांत के सब प्रकार के रोगों में प्रधान स्थानीय चिकित्सा है।

दांत में जब दर्द नहीं रहे तब प्रतिदिन क्रमशः बढ़ानेवाले (graduated) दांत के व्यायाम ग्रहण करना उचित है। मसूड़े की मालिश भी अत्यन्त फलप्रद है। दांत सदा साफ रखना उचित है तथा भोजन के उपरान्त खाद्य के समस्त कण दूर कर देना कर्तव्य है। कारण ये सड़कर दांत का एनामेल क्षय कर देते हैं।

पथ्य की ओर भी सदा रोगी को ध्यान देना उचित है। विटामिन-सी के साथ मसूड़ों के स्वास्थ्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है ऐसा विचार किया जाता है। एक डाक्टर (Hanke) ने कहा है, दैनिक एक पाइन्ट करके नारंगी का रस लेने से मसूड़ों की सूजी हुई अवस्था प्रायः सम्पूर्ण रूप से लुप्त हो जाती है (Harold S. Diehl, M.A,

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

M.D.—Text-book of Healthful Living, p. 354, New York, 1955)।

जो सब पायरिया किसी तरह भी अच्छा नहीं होता, भीतरी शरीर की सफाई करनेवाली चिकित्सा के साथ साथ तीन महीने कच्चा खाद्य खाकर रहने से वे निश्चित रूप से आरोग्य प्राप्त करते हैं।

रोगी का प्रधान पथ्य ही होना उचित है फल, फलों का रस, १२ घंटे भिगोये हुए किशमिश, खूबानी और अंजीर, सलाद, साग-सब्जियों का कच्चा रस और दही।

रोगी को यथेष्ट मात्रा में नीबू, नारंगी, बिजोड़ा नीबू, अंगूर, अमरूद, पपीता, अनन्नास, खूब पका केला, टमाटर और आंवला खाना उचित है। कारण ये सब खाद्य सी-विटामिन के प्रधान आधार हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

पञ्चदश अध्याय

बालों के रोग
[Diseases of the hair]

[१]

हमारे शरीर के तन्तुओं के भीतर प्रतिपल ध्वंस और निर्माण हो रहा है। पुराने तन्तु टूटते जाते हैं, तथा उनके स्थान पर नये नये तन्तु गठित होते हैं। हमारे सिर के बालों की आयु भी मात्र होती है दो से छः वर्ष। हमारे मस्तिष्क की त्वचा में साधारणतः १,२५,००० बाल रहते हैं। प्रति सप्ताह ही इनमें से कई एक झड़ जाते हैं तथा उनकी जड़ों से फिर नये बाल उत्पन्न होते हैं। किंतु जब बाल अत्यन्त तेजी से झड़ने लगते हैं, तब बाल क्रमशः महीन और पतले हो पड़ते हैं तथा अन्त में ऐसी अवस्था होती है कि केश-कोषों (hair-follicles) की बाल उत्पादन करने की क्षमता ही नष्ट हो जाती है। तब सिर गंजा हो जाता है।

विभिन्न कारणों से यह अवस्था आ सकती है। जिन सब कारणों से केश-कोष शरीर से पुष्टि ग्रहण करने में अक्षम हो पड़ते हैं अथवा पुष्टिग्रहण में बाधा पाते हैं, साधारणतः वही गँजापन उत्पन्न कर देते हैं। इसीलिये जो अत्यधिक समय टोपी या पगड़ी पहने रहते हैं, सिर के रक्त-संचालन में रुकावट पड़ने के कारण बहुधा उनके बाल झड़ जाते हैं।

किसी किसी अवस्था में दीर्घ अवधि की रूसी, मस्तिष्क की त्वचा का दाद, एकजिमा और इरिसिप्लास आदि बालों की जड़ दुर्बल और कम-अधिक मात्रा में नष्ट कर देते हैं। तब बाल क्रमशः झड़ने लग जाते हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

किंतु केशों का पतन वस्तुतः केवल मस्तिष्क की त्वचा का रोग नहीं ।। हमारे बाल हमारे शरीर के ही अंग हैं—कुछ अंश में हमारी हड्डियों के ही समजातीय हैं। शरीर के अन्यान्य अंशों का स्वास्थ्य और पुष्टि जिस प्रकार शरीर के साधारण स्वास्थ्य पर निर्भर करती है, उसी प्रकार बालों का स्वास्थ्य भी शरीर के साधारण स्वास्थ्य पर ही निर्भरशील है।

बहुधा देखा जाता है, विभिन्न जाति के ज्वर, सिफलिस, रक्तहीनता, कोष्ठबद्धता आदि रोगों से सिर के बाल झड़ जाते हैं। इन सब रोगों में शरीर के भीतर जिस विष का संचार होता है, वह जब केश-कोष पर आक्रमण करता है तभी बाल झड़ने लगते हैं। जब साधारण अवस्था में भी बाल झड़ने लग जाय, तब समझना चाहिये कि वे शरीर की ही विकारयुक्त अवस्था के लक्षण हैं।

इसलिये बालों की देखभाल के साथ जब शरीर की देखभाल की जाती है, तभी केवल बालों का स्वास्थ्य अक्षुण्ण रहता है तथा बाल झड़ने का प्रतिकार होता है।

बाल झड़ने के अतिरिक्त बालों के विभिन्न रोग होते हैं। इनमें से बालों का असमय में पक जाना तथा मस्तिष्क की त्वचा में रूसी प्रायः दिखाई पड़ते हैं। But the main essential in all of them is to ensure that the blood-stream is purified. Without the general cleansing, local treatment is useless and can never be successful—किंतु बालों की सबसे प्रधान आवश्यकता ही है रक्त-स्रोत को साफ करना। शरीर को भीतर से साफ किये बिना स्थानीय चिकित्सा सम्पूर्ण व्यर्थ है तथा कभी भी वह सफल नहीं हो सकती (J. Russell Snedden, M.B., N.A.—Health for All, p. 117, August, 1951)।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

[२]

प्रतिदिन समाचार-पत्रों में गंजापन दूर करने और केशवर्धक असंख्य तेल, मलहम और टॉनिकों के विज्ञापन हमें दिखाई पड़ते हैं। इन सब विज्ञापनों में बहुत जोर देकर यह प्रचार किया जाता है कि ये बाल उगाने और गँजापन दूर करने में जादू जैसा काम करते हैं। यदि ये वस्तुतः गंजापन बन्द ही कर पाते, अथवा सिर में यथेष्ट बाल उत्पन्न कर पाते, तब वस्तुतः ये जादू जैसा ही काम करते। मस्तिष्क की त्वचा तथा साधारण रूप से शरीर की जिस विकारयुक्त अवस्था के कारण गंजापन उत्पन्न होता है, जब तक वह अवस्था दूर नहीं की जाती तब तक काफी पैसा खर्च करके बाजार के श्रेष्ठ केश तैल आदि खरीदकर व्यवहार किये जा सकते हैं। किंतु उनके द्वारा कभी भी स्थायी फल उत्पन्न नहीं हो सकता।

बालों का स्वास्थ्य लौटा लाने के लिये प्रधानतः ऐसी व्यवस्था करना आवश्यक है जिसमें केश-कोष पर्याप्त मात्रा में रक्त के सम्पर्क में आयें तथा उनसे प्रचुर परिमाण में पुष्टि ग्रहण कर सकें। इसलिये बालों की त्वचा का मर्दन ही बाल झड़ने की एक प्रधान चिकित्सा है।

किंतु यह मर्दन करने की एक विशेष पद्धति है। हाथ की तीन उँगलियाँ बालों के भीतर से मस्तिष्क की त्वचा पर रखके घुमा-घुमाकर पूरा सिर मर्दन करना पड़ता है। उँगलियाँ मस्तिष्क की त्वचा पर जोर से दबाकर रखना आवश्यक है। इस समय ध्यान रखना चाहिये जिसमें मस्तिष्क की त्वचा मर्दन के साथ साथ संचालित हो। इस प्रकार से मस्तिष्क की समस्त त्वचा का मर्दन करना आवश्यक है।

बाल झड़ने का एक प्रधान कारण ही है बालों की त्वचा की निष्क्रियता। दो-एक बार हल्के-हल्के बाल सँवारने के अतिरिक्त मस्तिष्क पर कभी भी हमारा प्रायः हाथ नहीं पड़ता। इसलिये मस्तिष्क की त्वचा में रक्त बहुत कम संचालन कर पाता है तथा उसके फलस्वरूप केश-कोष

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

पुष्टि के उपयुक्त खाद्य नहीं पाते, इसीसे क्रमशः बाल झड़ जाते हैं। मर्दन के द्वारा मस्तिष्क की त्वचा में रक्त-संचालन बढ़ जाता है। इससे केश-कोष उन्नति प्राप्त करते हैं, केश-कोष की शुष्कता (atrophy) बन्द होती है। उनके केश उत्पादन की क्षमता बढ़ जाती है तथा इनके द्वारा बालों का पकना भी बहुत अंश में दूर हो जाता है। जिस किसी व्यवस्था के द्वारा केश-कोषों को रक्त पहुँचाया जाय वही बाल बढ़ाने में सहायता करती है।

इस प्रकार से बाल बढ़ाने का एक प्रधान उपाय है सिर के बालों को धीरे धीरे खींचना। इस प्रकार खींचने से मस्तिष्क की त्वचा मस्तिष्क की हड्डी से थोड़ा अलग होती है तथा जो स्थान इस प्रकार खींचा जाता है उस स्थान में ही रक्त-संचालन बढ़ जाता है। बालों को पुष्ट करने के लिये जो सब चीजें आवश्यक हैं, तब वह रक्त से ग्रहीत होता है तथा उसके फलस्वरूप स्वभावतः ही बाल सबल हो उठते हैं। बाल खींचने की सहज पद्धति यही है कि हाथ की उंगलियों को कंघी के समान अलग अलग करके बालों में घुसाकर कई एक सेकेण्डों तक उसे ऊँचा करके पकड़े रहना चाहिये। इस प्रकार सिर के सब बाल खींचना आवश्यक है। कुछ दिनों तक इस प्रकार अभ्यास करने के बाद मस्तिष्क की त्वचा खींचने पर कुछ अंश में बिल्ली की त्वचा की भाँति ऊपर उठ आती है तब यह समझा जा सकता है कि मर्दन का उद्देश्य पूरा हो गया है।

इस प्रकार खींचने से सिर के बाल पहले पहल, हो सकता है, थोड़ा उखड़ जाये। किंतु इसके लिये डरना नहीं चाहिये। जिन सब बालों की आयु सचमुच ही समाप्त हो गई है, उन्हें सिर में रखकर कुछ भी लाभ नहीं होता। इन बालों को उखाड़ फेंकने से अपने आप ही फिर बालों की जड़ से नये बाल निकलते हैं। किंतु जब तक बाल स्वयं ही नहीं गिर जायँ, तब तक मरे बालों को रहने देने से केश-कोष भी मर जाते हैं तथा उनसे फिर नये बालों की उत्पत्ति नहीं होती।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

कोई कोई इस अवस्था में बालों को विशेष रूप से नहीं हिला-डुलाकर किसी प्रकार सिर पर सजाये रखते हैं। किंतु इससे अपने आप को ही केवल धोखा दिया जाता है। हजारों व्यक्तियों ने इस प्रकार बाल सँवारकर रखने की अत्यधिक अशोभन चेष्टा में स्थायी रूप से गंजापन उत्पन्न कर लिया है।

दिन में दो बार बाल सँवारना भी नितान्त आवश्यक है। बालों की देखभाल में यही काम केवल हम लोग करते हैं। किंतु बालों की उन्नति के लिये हम लोग यह नहीं करते। सभ्य समाज में मिलने-जुलने के लिये ही हम लोग ऐसा करते हैं। बाल सँवारने के साथ बालों के स्वास्थ्य को मिला देने के लिये दिन में कम से कम एक बार ब्रश व्यवहार करना उचित है। ब्रश खूब कड़ा होना उचित नहीं और खूब मुलायम होना भी उचित नहीं। कंघी के सम्बन्ध में भी यही बात है। नियमित बाल सँवारना ही बालों की रक्षा का एक प्रधान उपाय है। यह मस्तिष्क की त्वचा में रक्त-संचालन करने में जैसी सहायता करता है, वैसे ही त्वचा विशेष रूप से साफ रखता है। बहुत बार मस्तिष्क की त्वचा साफ नहीं रखने के कारण ही उसमें विभिन्न चर्मरोग उत्पन्न होते हैं तथा ये सब रोग केश-कोषों को दुर्बल करके सिर के बाल गिरा देते हैं।

बाल गिरना बन्द करने के लिये मस्तिष्क की त्वचा विशेष रूप से तैलसिक्त रखने की भी जरूरत है। किंतु तेल के निर्वाचन में विशेष सतर्कता का अवलम्बन लेना आवश्यक है। बाजार में जो सब केशतैल पाये जाते हैं, सुगन्धित करने के लिये उनके भीतर ऐसी बहुत-सी चीजें मिलायी रहती हैं कि बहुधा उनके कारण ही बाल उड़ जाते हैं। तेल ऐसा होना आवश्यक है जिसका कोई रंग न हो तथा जो गन्धहीन और साफ हो।

इन सब चिकित्सा के साथ शरीर को विकार-रहित करना भी विशेष रूप से आवश्यक है। बहुत अवस्था में कोष्ठबद्धता ही इस रोग का प्रधान

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

कारण है। पेट के भीतर मल बहुत दिनों तक रुका रहने से जो विष शरीर में ग्रहीत होता है, बहुत बार वह सिर में जाकर ही सिर के बाल उड़ा देता है। इसलिये नियमित रूप से हिप बाथ लेकर तथा पेड़ू में मिट्टी की पुल्टिस व्यवहार करके कोष्ठ साफ रखना विशेष रूप से आवश्यक है। इस जाति के रोग में फुट बाथ अत्यन्त हितकर है। रोगी बीच बीच में डूस लेकर स्नान के पहले १२ मिनटों के लिये फुट बाथ (hot foot bath) ले सकता है। इस समय मस्तिष्क एक भारी तौलिया द्वारा ढके रखना उचित है तथा प्रतिदिन तीन मिनट के बाद उसे बदल देना कर्तव्य है। इससे सिर का ताप थोड़े ही समय में कम हो जाता है, सिर ठंडा होता है तथा बाल झड़ना बन्द हो जाता है।

प्रतिदिन रोगी को नीबू के रस के साथ काफी पानी पीना विशेष रूप से आवश्यक है।

इसमें अवश्य ही सन्देह नहीं कि गंजापन पुश्त-दर-पुश्त चलता है। इसका प्रधान कारण यही है कि एक श्रेणी का आहार-विहार पुश्त-दर-पुश्त चलता रहता है। यदि अस्वास्थ्यकर आहार-विहार का प्ररित्याग करके प्रकृति के पथ पर रहा जाय तथा प्राकृतिक और रक्षाकारी खाद्य के ऊपर जोर दिया जाय तब वंशगत सब रोगों से ही छुटकारा मिल सकता है।

[२]

रोगी का पथ्य ऐसा होना उचित है जिसमें कोष्ठबद्धता नहीं आ सके। इसके लिये प्रतिदिन प्रचुर फल, सलाद और हरे उबाले हुए साग खाना चाहिये।

हमारे बालों का प्रधान उपादान सिसोटीन नामक एक प्रकार का प्रोटीन है। यह यथेष्ट मात्रा में पालक के साग और पातगोबी में रहता है। इसके अतिरिक्त यथेष्ट मात्रा में ताजे और सूखे फल, सलाद, दही, सोयाबीन, उबाली हुई तरकारी, तरकारी का सूप, मधु और तरल गुड़

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

लेने से रक्त साफ रखने और बालों को गठित करने के लिये जिन सब खनिज लवणों की आवश्यकता है, सभी मिल जा सकते हैं। इसके साथ अवश्य ही कम छंटा हुआ चावल और चोकर समेत आटा ग्रहण करना चाहिये।

रूसी
[Dandruff]

जो अत्यन्त मैले-कुचैले हैं तथा भूलकर भी सिर में कंघी नहीं देते, साधारणतः उनके ही सिर में रूसी हो जाती है। बहुधा मस्तिष्क की त्वचा तेल से गीली नहीं रखने के कारण भी रूसी उत्पन्न होती है। किंतु मस्तिष्क की त्वचा का स्वास्थ्य क्षीण हुए बिना कभी भी सिर में रूसी नहीं पड़ सकती। अधिकांश अवस्था में शरीर की दूषित अवस्था के फलस्वरूप ही मस्तिष्क की त्वचा का स्वास्थ्य क्षीण हो जाती है। इसलिये बहुधा ज्वर, रक्तहीनता, क्षय, वातरोग, सिफलिस, लीवर और किडनी के रोग तथा कोष्ठबद्धता में रूसी उत्पन्न होती है। जिनके सिर में रूसी है, समझना होगा उनका पेट अत्यन्त खराब है। वस्तुतः जो कुछ शरीर में विष की मात्रा बढ़ाता है (any condition that causes an increase of toxic products in the blood) वही रूसी उत्पन्न करता है (Bernarr Macfadden—Hair Culture, p. 93)। अतः रूसी नीरोग करने के लिये केवल मस्तिष्क की त्वचा की देखभाल ही यथेष्ट नहीं, सिर साफ और तेल से भींगा रखने के साथ साथ शरीर को विकार-रहित करना तथा पेट साफ रखना ही इसकी चिकित्सा है। केवल कोष्ठ साफ रखने से ही बहुत अवस्था में रूसी आरोग्य प्राप्त करती है।

सिर साफ रखने के लिये प्रतिदिन कम से कम दो बार कंघी और ब्रश के द्वारा बाल सँवारना आवश्यक है। किंतु कंघी अत्यन्त नुकीली

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Arya Samaj Foundation Chandigarh

होनी उचित नहीं। कारण अत्यन्त नुकीली कंघी व्यवहार करने से मस्तिष्क की त्वचा में जिस उत्तेजना (irritation) का संचार होता है, उसीसे बहुत बार रूसी उत्पन्न हो जाती है।

यदि एक उँगली में थोड़ा कपड़ा लपेटकर उसके द्वारा मस्तिष्क की त्वचा सप्ताह में कम से कम एक बार जोर से रगड़ी जाय तब रोगी को विशेष लाभ होता है। बाल हटा हटाकर सम्पूर्ण सिर में इसी प्रकार रगड़ना चाहिये। इससे त्वचा जैसी साफ हो जाती है वैसे ही केश-कोष भी यथेष्ट उद्दीपन प्राप्त करते हैं। इस प्रकार सिर रगड़ने को अंग्रेजी में कहते हैं—dry shampoo।

बीच बीच में गीली मिट्टी द्वारा सिर धोने से सिर बहुत साफ होता है और बहुत समय कई एक बार इस प्रकार सिर धोने से ही सिर से रूसी अधिकांश लुप्त हो जाती है। किंतु मिट्टी विशेष रूप से साफ होना आवश्यक है तथा नुवाही नहीं हो, यह देखना जरूरी है।

अच्छे साबुन से सिर धोने से भी साफ हो सकता है। किंतु अत्यधिक साबुन व्यवहार करने से बालों में जो स्वाभाविक तैलाक्त पदार्थ रहता है। वह निकल जाता है तथा बाल रूखे और नाजुक हो जाते हैं। अर्थात् जिस अवस्था को दूर करना चिकित्सा का उद्देश्य है, यह वही अवस्था उत्पन्न कर देता है।

इसके साथ सिर को तेल से भिगोया रखना भी विशेष आवश्यक है। किंतु जिन्हें रूसी होती है उनके मस्तिष्क की त्वचा इतनी सूख जाती है कि साधारण रूप से तेल मालिश से बहुधा उनको लाभ नहीं होता। उँगली से सिर में तेल लेकर धीरे धीरे दस मिनटों तक उसे त्वचा में मालिश करना आवश्यक है। इससे मस्तिष्क की त्वचा जैसी तैलाक्त रहती है वैसे ही उस स्थान में रक्त-संचालन बढ़ जाता है।

स्थायी फल-प्राप्ति के लिये पेट साफ रखना चाहिये। इसके लिये नियमित रूप से हिप बाथ तथा पेट गर्म रहने पर पेट पर मिट्टी की

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

पुल्टिस ग्रहण करनी चाहिये। कुछ समय तक सारी रात के लिये पेट की लपेट व्यवहार करना भी नितान्त आवश्यक है।

इसके साथ दिन में दो वार स्नान तथा प्रचुर फल, सलाद, हरी साग-सब्जी तथा दही व्यवहार करना उचित है और बीच बीच में स्टीम बाथ तथा गीली चादर का पैक भी लेने की जरूरत है। साधारण स्वास्थ्य के लिये सदा ही नीबू के रस के साथ प्रचुर पानी पीना चाहिये।

कभी भी वेसलिन या मलहम आदि रूसी के ऊपर प्रयोग करना उचित नहीं। इससे रूसी हो सकता है अस्थायी रूप से आरोग्य हो जाय, किंतु बाल झड़ जाते हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

षष्ठदश अध्याय

विभिन्न रोग

करनरी थ्राम्बसिस

जिस धमनी के भीतर से हार्ट की मांसपेशियों को खून मिलता है उसका नाम है करनरी आर्टरी। कभी कभी उस धमनी में खून का धक्का अटक जाता है या दूसरे किसी प्रतिबंधक की सृष्टि होती है और उसके फलस्वरूप खून का दौरा बन्द हो जाता है। तब असहनीय दर्द उपस्थित होता है। इसीको करनरी थ्राम्बसिस कहा जाता है।

विगत तीस वर्षों में इस रोग का आक्रमण क्रमशः वृद्धि पा रहा है और वर्तमान समय में वह एक साधारण रोग में परिणत हुआ है। जो लोग मध्य वयः से वार्धक्य में पैर रखते हैं उनको ही साधारणतया इस रोग का आक्रमण होता है।

यह प्रायः विश्राम के समय छाती के सामने की ओर उपस्थित होता है। इसमें इतना दर्द होता है कि इसके साथ और किसी दर्द की तुलना ही नहीं होती। किंतु कभी कभी दर्द बहुत मामूली नहीं होता ऐसा नहीं। हृत्शूल का दर्द जैसा थोड़े ही समय के लिये होता है वह ऐसा नहीं। यह दर्द कभी कभी बारह घंटे तक प्रबल रूप से रहता है। किसी किसी क्षेत्र में वह एक साथ कई दिन तक वर्तमान रहता है। जब हार्ट का दर्द आधे घंटे तक स्थायी होता है तब वह थ्राम्बसिस से उत्पन्न होता है इसमें कोई सन्देह नहीं।

इस अवस्था में नाड़ी बहुत दुर्बल हो जाती है, श्वास का तकलीफ उपस्थित होता है, शरीर नील हो जाता है और कभी कभी उल्टी, दस्त, वायुफुल्लता और हिक्का का प्रकाश होता है। साधारणतया ऐसी

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

अवस्था में थोड़ा-सा ज्वर होता है और ज्वर कई रोज तक जारी रहता है।

विभिन्न कारण से यह रोग उपस्थित होता है। धमनी के भीतर जब खून का दौरा मृदु हो जाता है तब कभी कभी खून के भीतर चक्का उत्पन्न होता है और जब करनरी आर्टरी के भीतर घुस जाय तब इस रोग का प्रकाश होता है।

साधारणतया थोड़ा-सा ब्लड प्रेसर वृद्धि पाने से लोग अस्थिर हो जाते हैं और उपवास आदि के रास्ते में नहीं जाकर जबर्दस्ती से औषध का सहारा लेकर प्रेसर घटा देते हैं। इसके फलस्वरूप कभी कभी धमनी के भीतर खून का दौरा मृदु हो जाता है और अंत में यह रोग उपस्थित हो जाता है (Frederick W. Price, M.D., F.R.C.P.—A Text-book of the Practice of Medicine, p. 1629, London, 1947)।

विभिन्न कारण से जब रक्त विषैला हो उठता है एवं रक्त में रासायनिक परिस्थिति का परिवर्तन होता है तब रक्त के भीतर चक्का गठित होता है एवं अंत में यह रोग उत्पन्न होता है (E. T. Bell, M.D.—A Text-book of Pathology, p. 68, Philadelphia, 1956)। सांप का विष तथा इथर आदि खून में घुसा देने से बहुत अवस्था में ऐसी हालत प्रकाश पाता है। संक्रामक व्याधि में रक्त के भीतर जो विष फैल जाता है कभी कभी वह ऐसी अवस्था उत्पन्न करता है।

धमनी के भीतरी भाग जब सूजन आदि के फलस्वरूप कड़ा (rough) हो जाता है तब किसी किसी अवस्था में रक्त के कण उसके साथ अटक जाते हैं। इसके बाद रक्त से उपादान लेकर वह क्रमशः बड़ा हो उठता है एवं रक्त का आने-जाने का रास्ता बंद कर देता है। तब यह विपद उपस्थित हो जाता है। सारे शरीर विभिन्न विषाक्त तथा दूषित पदार्थों से भारी नहीं होने से कभी ऐसा नहीं होता

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

और दूसरे रोग जैसा शरीर के विषैली हालत से उत्पन्न होते हैं यह रोग भी वैसा ही पैदा होता है। इसलिये शरीर के जिस दोषयुक्त अवस्था में यह रोग उत्पन्न होता है उससे देह को मुक्त करना ही इसकी प्रधान चिकित्सा है।

किंतु रोग के आक्रमण के साथ साथ तीव्र दर्द जिससे कम हो जाय उसकी व्यवस्था करना ही प्राथमिक कर्तव्य है। इस रोग की तीव्र अवस्था में साधारणतया एक या एक से अधिक बार मरफिया प्रयोग कर दर्द बंद किया जाता है। किंतु हार्ट के रोगों में मरफिया प्रयोग करना बहुत खतरनाक सिद्ध हुआ है। हार्ट के रोगों में मरफिया ने इतने लोगों को मार डाला है कि इतने लोग एक दूसरे के हाथ पकड़कर खड़ा होने से सारी पृथ्वी को घेरकर खड़ा हो सकते हैं।

इस समय हार्ट के ऊपर बर्फ की थैली या बहुत ठंडे पानी से भींगी हुई एक तौलिया रखना कर्तव्य है। दर्द कम हो जाने से ही तौलिया हटाकर वह स्थान हल्के हाथों से या ऊनी कपड़े आदि से घसकर चर्म का ताप लौटा लाना आवश्यक है।

इस समय ध्यान रखना चाहिये रोगी के हाथ और पैर ठंडे हो गये हैं या नहीं। ठंडे हो जाने से जल्दी से जल्दी गरम कर लेना उचित है एवं थोड़े ही समय नष्ट किये बिना किसी भी हालत में एक घण्टे के लिये दोनों पैर में अलग अलग पैर की लपेट देना उचित है। लपेट के भीतर अवश्य ही ताप का संचार होना चाहिये। तब आक्रांत स्थान से रक्त नीचे उतर आता है और दर्द गायब हो जाता है।

इसके बाद विश्राम ही प्रधान चिकित्सा है। रोग के आक्रमण होने से कम से कम डेढ़ महीना शय्या में रहकर रोगी को विश्राम करना चाहिये। पहला सात रोज विश्राम परिपूर्ण होना चाहिये। इसके बाद रोगी शय्या में रहकर अपना खाना आप खा सकता है एवं पुस्तक आदि पढ़ सकता है। इसके साथ साथ मानसिक विश्राम भी बहुत जरूरी है।

किंतु सुदीर्घ विश्राम भी खतरनाक नहीं होता ऐसा नहीं। अगर

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

विश्राम बहुत दीर्घ हो तो पैर की बड़ी शिराओं (vein) में रक्त का चक्का गठित हो सकता है। इसलिये शय्या में रहकर ही दिन में दो-तीन बार पैर का हल्का व्यायाम करना उचित है। एक बार एक पैर टेढ़ा करके छाती के साथ लगाके पुनः उसे विस्तार करना कर्तव्य है। यह व्यायाम क्रमशः अभ्यास करके और दिन पर दिन बढ़ाकर अन्त में १२ बार तक किया जा सकता है (Geoffrey Bourne, M.D.—Heart Disease, p. 87, London, 1954)।

इस रोग में रक्त में थक्का बनना रोकने के लिये विभिन्न औषध (anti-coagulents) व्यवहार किया जाता है। इससे रक्त का जम जाने की स्वाभाविक क्षमता इतनी कम हो जाती है कि उसके फलस्वरूप शरीर के विभिन्न स्थान से रक्तस्राव होता है। बहुत अवस्था में ऐसी हालत में आँत तथा किडनी के भीतर रक्तस्राव होता है एवं बहुधा एक संकटकाल उपस्थित होता है (Ibid., pp. 88-89)।

वस्तुतः इस रोग में औषध के ऊपर निर्भर करके कभी स्थायी फल लाभ नहीं किया जा सकता। वह एक-सा न्यूमोनिया नहीं है कि पेनिसिलिन से आरोग्य होगा या मलेरिया नहीं है कि क्विनाईन से मिट जायेगा। इसकी कोई दवाई नहीं है। शरीर की जिस दोषयुक्त हालत से वह रोग उत्पन्न होता है उसे दूर करना ही दूसरे रोगों की तरह इसकी चिकित्सा है।

इसलिये जिससे कोष्ठ साफ रहे एवं प्रस्राव तथा पसीना परिमित रूप में हो इसके लिये व्यवस्था करना कर्तव्य है, कारण इन्हीं सब रास्तों से शरीर का कूड़ा-कर्कट शरीर से बाहर हो जाता है।

रोगी को दिन में दो बार एक घंटे के लिये पेट की लपेट देनी चाहिये। इससे कोष्ठ की सफाई में और ध्यान देने की जरूरत नहीं होती।

हर रोज नहाने के पहले रोगी को एक घंटे के लिये पैर की लपेट प्रयोग करना कर्तव्य है। किन्तु पैर की लपेट विशेष रूप से ढक देना उचित है। इससे तमाम शरीर में आप से आप पसीना आ जाता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

रोगी स्वस्थ होने के बाद उसे बीच बीच में डूस और आतप स्नान आदि प्रयोग करना कर्तव्य है।

रोगी को हर रोज यथेष्ट रूप में फल तथा फलों का रस देना उचित है, खासकर खट्टे फल उसके लिये बहुत हितकर है। इसलिये उसे कमला नीबू, टमाटर, बिजोरा नीबू, ग्रेप-फ्रूट और सेव आदि देना उचित है। दूसरे फल भी उसको काफी मात्रा में ग्रहण करना कर्तव्य है। रोगी के लिये सलाद भी अच्छा पथ्य है। किंतु पहले पहल सीठी फेंककर सिर्फ रस खाना उचित है। ये सब पथ्य यथेष्ट रूप में भोजन करने से रोगी की कब्जियत नहीं रह सकती।

इसके साथ रोगी को थोड़ी मात्रा में दूध और यथेष्ट रूप से दही ग्रहण करना उचित है। हमलोगों का जो कुछ प्रयोजन हो उन्हें इन सब खाद्यों से पाया जा सकता है। इसके अलावा फल तथा सलाद आदि खाद्य रक्त को विषमुक्त करके रोग के मूल कारण नष्ट कर देते हैं। नीबू के रस के साथ हर रोज कुछ मात्रा में जल पीना भी रोगी के लिए एकांत आवश्यक है।

इस रोग का आक्रमण होने पर पहले डेढ़ माह सिर्फ ये सब खाद्य खाकर ही रहना उचित है। इसके बाद दिन में एक बार भात या रोटी तथा दूसरे वक्त फल, सलाद और दूध आदि खाकर रहना आवश्यक है।

रोगी को बीच बीच में जितने दिन कर सकें उतने दिन के लिये उपवास करना आवश्यक है। इससे रोग के मूल कारण शरीर के भीतर दग्ध हो जाते हैं।

यह कहा जाता है कि यह रोग होने पर आदमी दीर्घ दिन तक जिन्दा नहीं रह सकते। लेकिन यह एकदम गलत सिद्धांत है। यदि शरीर को दोषमुक्त किया जाय एवं रक्खा जाय तथा इस पथ्य के ऊपर जोर रहे तब शरीर में पुनः स्वास्थ्य की प्रतिष्ठा होती है एवं आदमी दीर्घजीवी हो सकते हैं।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

रोगी को कभी भीत नहीं होना चाहिये। रोग के लिये घबड़ाने से हमेशा रोग की वृद्धि होती है। मन को हमेशा रोग छोड़कर दूसरे विषय पर निबद्ध रखना उचित है। इस समय जो दीर्घ अवसर मिलेगा वह भगवान के ध्यान में व्यतीत किया जा सकता है। इसमें सक्षम हो तो रोग रोगी के बगल होकर चला जाता है। यह हमेशा स्मरण रखना उचित है कि यद्यपि इसे कठिन रोग जैसा गिना जाता है तभी सैकड़ा ७५ से ८५ क्षेत्र में यह घातक नहीं होता। यह साधारणतः घातक होता है जब सिर्फ दवाई पर निर्भर किया जाय।

एलर्जी

[Allergy]

एलर्जी शब्द का अर्थ है प्रतिक्रिया (reaction)। जिन सब चीजों को ग्रहण करने से अधिकांश आदमियों को कुछ नहीं होता है उन्हें ग्रहण करने से किसी किसी आदमी के शरीर में हरेक रोग-लक्षण प्रकाश पाते हैं। इसका नाम ही एलर्जी है। बहुत पुराना प्रवाद वाक्य है— one man's food is another man's poison। एक आदमी के लिये जो भोजन है दूसरे आदमी के लिये वह जहर होता है। साधारण खाद्य आदि जो ऐसा किसी किसी आदमी के शरीर में विषक्रिया उत्पन्न करता है उसीका नाम एलर्जी है।

जो सब खाद्य यह प्रतिक्रिया उत्पन्न करते हैं उनमें मछली, अंडा, दुग्ध, दुग्ध द्रव्य, चॉकलेट, टमाटर, दाल, कॉफी, मटर छीमी, बीन और गेहूँ प्रधान है। कभी कभी पालक के तकिया पर लेटना, कुत्ते तथा बिल्ली का गंध, ऊनी चीजों का इस्तेमाल एवं पेनिसिलिन आदि विभिन्न औषध रोग-लक्षण उत्पन्न करते हैं।

इन सब कारणों से किसी किसी के शरीर में दमा, सर्दी, छींक आदि छाती के रोग, किसी किसी आदमी में आमवात (urticaria),

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

एकजिमा और खाज आदि चर्मरोग, किसी किसी को दस्त, पेट का दर्द, उलटी, तथा उलटी की हालत (nausea) प्रभृति पेट के रोग प्रतिक्रिया से प्रकाश पाते हैं। इसके अलावा सिरदर्द आदि स्नायविक रोग इससे उत्पन्न होते हैं।

यद्यपि वन पिरकोयेट ने (Von Pirquet) सन् १९०६ में एलर्जी शब्द को पहले चालू किया (John S. Richardson, M.A., M.D., F.R.C.P.—The Practice of Medicine, p. 828, London, 1956) तब भी सैकड़ों वर्षों से इसके बारे में आलोचना हुई है और अब भी चल रही है (Hobart A. Reimann, M.D.—Treatment in General Medicine, Vol. 2, p. 76, Philadelphia, 1948)। किंतु यह रोग क्यों होता है उसका कारण आज भी पहले जैसा रहस्य से ढका हुआ है (Harold S. Diehl, M.A., M.D.—Text-book of Healthful Living, p. 182, New York, 1955)।

यह कहा जाता है कि रोग की गति वंशगत होती है। कभी कभी यह भी कहा जाता है कि यह रोग जन्म से ही शुरू होता है। ऐसा कि जो रोग दवाई से नहीं मिटता उसे ही बहुधा एलर्जी कहकर राय दिया जाता है।

यह सब कोई जानते हैं कि एलर्जी की कोई दवाई नहीं है। किंतु उसके लिये रोगी बगैर दवाई नहीं रहते। बल्कि और भी ज्यादा दवाई खाते हैं जो रोग के मूल कारण को स्पर्श नहीं कर सकते। इसके फलस्वरूप रोग तो मिटता ही नहीं, बल्कि औषध की विषक्रिया से शरीर और भी खराब होता है।

इस रोग में दवा के पीछे दौड़ना एकदम बेकार है। औषधि के देश अमेरिका में लाखों आदमी एलर्जी से भुगतते रहे हैं और उसकी संख्या दिन पर दिन बढ़ती जा रही है (Morris Fishbrin,

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

M.D.—The Popular Medical Encyclopaedia, p. 17, New York, 1954)। यह कहा जा सकता है कि वर्तमान अमेरिका में हर दस आदमी में एक आदमी किसी-न-किसी रूप में एलर्जी से भुगतते रहे हैं और ऐसे बहुत आदमी हैं जिनको गर्मी में, ठंडे में, ऐसा कि धूप में जाने पर शरीर के भीतर हरेक रोग-लक्षण उत्पन्न होते हैं (Harold S. Diehl, M.A., M.D.—Text-book of Healthful Living, p. 339, New York, 1955)।

इस रोग के कारण क्यों बाहर नहीं हो रहा है एवं इसके औषध क्यों नहीं बाहर हुए? इसका कारण यह है कि शरीर के दूसरे रोग जैसा शरीर में जमा हुआ हरेक दूषित और विषाक्त पदार्थों से उत्पन्न होते हैं, एलर्जी भी वैसे ही उत्पन्न होता है। शरीर में जमा हुआ विभिन्न विष के आक्रमण से जब रोग के साथ मुकाबला करने की शरीर की ताकत (प्रतिरोध क्षमता) घट जाती है तभी एक दुबले स्थान में रोग पैदा होता है। इसी ढंग से पेट, छाती और चर्म आदि के विभिन्न रोग उत्पन्न होते हैं। अतः एलर्जी की चिकित्सा क्या है? देह को दोषमुक्त करके देह की रोग प्रतिरोध क्षमता बढ़ाना ही इसकी चिकित्सा है।

इसलिये रोगी का जो कोई लक्षण क्यों न प्रकाश हो, पहले ही उसका पेट साफ कर लेना और जिससे साफ रहे उसकी व्यवस्था करना कर्तव्य है। इसके साथ मूत्रयंत्र का काम जिससे अच्छे ढंग से चले और लोमकूप मुक्त रहे उसकी व्यवस्था करना आवश्यक है। दिन पर दिन रोगी के पेट और लीवर पर मालिश, पेट पर गर्म-ठंडा, डूस, मृदु बाष्पस्नान या उष्ण पादस्नान, घर्षणस्नान या तौलिया स्नान प्रयोग करना उचित है। इसके साथ पेट की लपेट एवं कटिस्नान आदि पद्धति अनुसार प्रयोग करना आवश्यक है एवं रोगी को नीबू के रस के साथ प्रचुर जल पान करने को कहना कर्तव्य है।

इन सब रोगियों को साधारणतया कमोबेश स्नायविक दुर्बलता रहती

Arya Vidya ... Collection, Nepal

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

हैं। वास्तव में इस रोग को कभी कभी अति-सचेतनता (hyper sensitiveness) ऐसा नाम दिया जाता है। इसलिये उसका सिर धोकर हर रोज स्नान के पहले समूचे मेरुदंड पर गर्म-ठंडा देकर उसके बाद स्नान कराना उचित है। इससे स्नायु भीतर से मजबूत हो उठते हैं। रोगियों को रात रहते रहते शय्या छोड़कर उठना उचित है और खुली हवा में भ्रमण करना कर्तव्य है। रोगी खुली हवा में आसन कर सकें तो बहुत लाभप्रद होता है। खासकर उत्थान-पादासन, भुजंगासन, शलभासन, धनुरासन, उड्डीयान, हलासन और सर्वाङ्गासन करना उचित है यानी जिन सब आसनों से स्नायु तथा पेट सबल हो उठते हैं उनके ऊपर ही ध्यान देना जरूरी हैं।

खास तौर पर यह कहा जाय कि दूसरे रोगों के समान स्वास्थ्य अच्छा करना ही एलर्जी की प्रधान चिकित्सा है। स्वास्थ्य अच्छा करने का अर्थ यही होता है कि शरीर के विभिन्न द्वार से शरीर के कूड़ा-कर्कट बाहर कर देना एवं उपयुक्त पथ्य तथा व्यायाम आदि ग्रहण करके शरीर को सबल बना लेना। किंतु रोगों की उत्कट अवस्था (acute stage) में हमेशा ही स्थानीय चिकित्सा करना उचित है (British Encyclopaedia of Medical Practice, Vol. I, p. 301)।

अगर रोगी को पुराना सर्दी रहे तो हफ्ते में दो रोज रोगी की छाती और पीठ पर गर्म-ठंडा देकर छाती की लपेट लेनी चाहिये। गर्म-ठंडा पहले रोज छाती पर और दूसरे रोज पीठ पर देना कर्तव्य है। छाती पर सेंक देते समय हार्ट के ऊपर एक गीला गमछा रखना उचित है। अंत में हार्ट के स्थान घसकर गर्म करने के बाद छाती की लपेट देना कर्तव्य है। अगर रोगी को बार बार छींक आये या नाक से पानी गिरे तब बीच बीच में उसके नाक के ऊपर गर्म-ठंडा देना कर्तव्य है। उसके गले का दोष रहने से छाती की लपेट के साथ गले की लपेट भी प्रयोग करना आवश्यक है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

रोगी को एकजिमा रहने से नीम-पानी से डूस एवं एकजिमा आदि के ऊपर हप्ते में दो रोज पाँच से दस मिनट के लिये गरम सेंक के बाद एक घंटे के लिये आधा इञ्च भारी मिट्टी की पुलटिस प्रयोग करना उचित है। आमवात आदि होने पर नीम-पानी से डूस के बाद सात मिनट के लिये भापस्नान देने के बाद स्नान कराना कर्तव्य है। बीच बीच में ज्यादा समय के लिये भी भापस्नान प्रयोग करना उचित है।

यदि रोगी का पेट जल्दी से खराब हो जाता है तब सर्वदैहिक चिकित्सा के साथ साथ पेट पर गर्म-ठंडा, डूस और पेट की लपेट बार बार प्रयोग करने से ही पेट अच्छा हो जाता है।

किंतु रोगी के पथ्य के ऊपर हमेशा ही जोर ध्यान देना उचित है। रोगी का पथ्य होना चाहिये हरेक सहजपाच्य फल, फलों का रस, सलाद, उबाला हुआ साग-तरकारी, तरकारी का सूप, चीनी के बदले में मधु या तरल गुड़ (cane syrup), धारोष्ण दुग्ध, ताजा दही तथा मट्ठा, चोकर के साथ ताजे गेहूँ की रोटी एवं माँड़ के साथ पुराने चावल का भात। रोटी और भात आदि शस्य जातीय पदार्थ बहुत कम खाकर फल, सलाद, तरकारी और दूध आदि ज्यादा खाना चाहिये। सभी पुराने रोगों का यही पथ्य है।

जो सब खाद्य खाने से विभिन्न रोग-लक्षण उपस्थित होते हैं उन्हें पहले ही सम्पूर्ण रूप से वर्जन करना कर्तव्य है। इसके बाद शरीर साफ होने के साथ साथ ये सब खाद्य बहुत कम करके और कुछ दिन बाद बाद भोजन करना कर्तव्य है। तब वे सह्य हो जाते हैं। शरीर साफ होने के साथ साथ रोगी के दूसरे लक्षण भी गायब हो जाते हैं और उनका बदन नया हो जाता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

सप्तदश अध्याय

प्रयोग-विधि

चिकित्सा करने के पहले विभिन्न प्रयोगों की विधियों के सम्बन्ध में ज्ञान रखना आवश्यक है। वास्तव में प्राकृतिक चिकित्सा की सफलता निर्भूल प्रयोग पर ही निर्भर करती है। नीचे कई प्रकार की चिकित्साओं के प्रयोग और उनके लाभ वर्णमाला के क्रम से लिखे जाते हैं।

आतप स्नान (sun bath)—धूपस्नान देखिये।

आसन—ऋषियों का निकाला हुआ यह एक प्रकार का व्यायाम है। यह पेट और स्नायविक यंत्र को सबल बनाकर और कई प्रकार की ग्रन्थियों की ताकत बढ़ाकर शरीर में अटूट स्वास्थ्य ला देता है। इसलिये ये आसन प्रायः सभी व्यायामों से अच्छे हैं। यदि ये सब आसन खूब धीरे धीरे अभ्यास किये जांय तो इनके द्वारा नवीन जीवन प्राप्त किया जा सकता है। आसन बहुत प्रकार के हैं। उनमें से नीचे लिखे हुए कई आसन बहुत लाभदायक होता है।

उड्डीयान—झुककर, खड़े होकर या पद्मासन में बैठकर पहले श्वास को छोड़कर पेट खाली कर लेना पड़ता है। इसके बाद जरा भी श्वास नहीं लेकर पेट को इस तरह मेरुदण्ड की ओर आकर्षित करना पड़ता है, जिससे पेट में एक गड्ढे की सृष्टि हो। इसका अभ्यास हो जाने पर पेट पीठ से मिल जाता है।

उत्थान-पादासन—चित्त लेटकर दोनों पैरों को सीधी रेखा में :० डिग्री के कोण के रूप में खींचकर कुछ देर तक रहने से ही यह आसन हो जाता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

धनुरासन—पेट के बल लेटकर दोनों हाथों से दोनों पाँवों की फिल्लियों को पकड़कर रीढ़ को धनुष की तरह टेढ़ा करने से यह आसन होता है। इससे पेट के ऊपर सारे शरीर का वजन रहता है। यह अजीर्ण का एक ब्रह्मास्त्र है।

नौली—खड़े होकर उड्डीयान करके और पेट की दोनों तरफ की मांसपेशियों को संकुचित करके पेट के भीतर की मांसपेशियों को फुलाने से ही यह आसन होता है।

भुजंगासन—पेट के बल लेटकर हाथों पर देह का भार रखकर नाभि से ऊपर का देहांश साँप की तरह ऊपर उठाने से ही यह आसन होता है।

मयूरासन—घुटने के बल जमीन में बैठकर दोनों हाथ एक साथ जमीन में रखना पड़ता है। उसके बाद हाथों के कुहनियों के ऊपरी अंश सीने से सटाकर दोनों हाथों के ऊपर देह का भार रखने से ही यह आसन होता है। ऐसी अवस्था में सारा शरीर जमीन के साथ समानान्तर अवस्था में रहता है।

शलभासन—सीने के बल लेटकर और दोनों हाथों को देह की दोनों तरफ ऊपर की ओर तथा बन्धमुट्ठी अवस्था में रखकर और कुम्भक करके दोनों पाँवों को सीधी रेखा में जहाँ तक सम्भव हो ऊपर की तरफ उठाने से यह आसन होता है।

शवासन—चित्त लेटकर सारा शरीर ढीला करके यह आसन लिया जाता है। इससे देह थोड़े समय में विश्राम लाभ करता है तथा सभी स्नायविक उत्तेजनायें क्षण भर में दूर हो जाती हैं।

शीर्षासन—मस्तक को जमीन पर और पैरों को शून्य में रखकर यह आसन होता है।

सर्वाङ्गासन—चित्त लेटकर दोनों पाँवों को सिर के ऊपर शून्य में सीधी रेखा में रखे जाते हैं तथा गर्दन के ऊपर सारे शरीर का भार

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Arya Samaj Foundation Chandigarh

रहता है। इस समय ठुड्डी द्वारा गले को ढक दिया जाता है। साथ ही साथ दोनों हाथों से कमर को पकड़कर देह को सरल रेखा में रखा जाता है।

हलासन—चित्त लेटकर धीरे धीरे दोनों पैरों को ऊपर की तरफ उठाकर सिर के पीछे ले जाकर जमीन से सटाने से ही यह आसन होता है।

उपवास—उपवास प्रकृति की सर्वश्रेष्ठ चिकित्सा है। मनुष्य को छोड़कर अन्य सारे जीव-जन्तुओं की केवल उपवास ही एकमात्र चिकित्सा है। सिर्फ उपवास मात्र से ही सारे पुराने रोग आराम हो जाते हैं। जीर्ण रोगों में उपवास शुरू करने के लिये धीरे धीरे उपवास में अभ्यस्त होना चाहिये। पहले बीच बीच में फल, फलों का रस और कच्चे तरकारी का व्यंजन (salad) खाकर तीन-चार दिनों तक उपवास करना उचित है। इससे शरीर और मन लम्बे उपवास के लिये अभ्यस्त हो जाते हैं। उपवासों में नीबू के रस के साथ काफी पानी पीना जरूरी है। निर्दिष्ट समय के बाद बहुत होशियारी से उपवास तोड़ना चाहिये। उपवास के बाद कई दिनों तक केवल तरल पथ्य ही ग्रहण करना कर्तव्य है। किंतु यह भी बहुत थोड़ा थोड़ा करके लेना चाहिये। पहले ही अधिक पथ्य लेने से कोई भी आफत आ सकता है।

उष्ण पादस्नान (hot foot bath)—दोनों पांवों को काफी गर्म पानी में डुबोकर गर्म पानी की बाल्टी के साथ गले तक कम्बल से ढककर बैठने का नाम है उष्ण पादस्नान। उस समय सिर को गीली तौलिया से ढककर रखना चाहिये तथा बाद में गुनगुना पानी से शरीर पोंछकर ठंडा कर लेना आवश्यक है। उससे फायदा करीब करीब स्टीम बाथ की तरह होता है।

कच्ची तरकारियों का व्यंजन (salad)—टमाटर, पालक का शाक, धनिये की हरी पत्ती, अंकुरित चना, खीरा, गाजर, मूली और

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

लेटूस आदि को काटकर नीबू के रस या मधु लगाकर कच्चे तरकारियों का अच्छा व्यंजन बनाया जाता है। इसे ही सलाद कहते हैं। इसमें कुछ जैतून का तेल या घी भी मिलाना चाहिये।

कटिस्नान (hip bath) हिप बाथ देखिये।

क्रमवर्धमान व्यायाम (graduated exercise)—पहले दिन ही कठिन या कष्ट से पूरा होनेवाला व्यायाम कभी नहीं करना चाहिये। पहले पहल एक या आधे मिनट के लिये खूब हल्का व्यायाम करके धीरे धीरे उसका समय और जोर बढ़ाया जाता है। इससे शरीर और शरीर का प्रत्येक अङ्ग नया हो उठता है और शरीर की ताकत जितनी बढ़ती है बीमारी की तेजी उतनी ही घटती है। किंतु बीमारी के उत्कट अवस्था में व्यायाम कभी नहीं करना चाहिये। उस अवस्था में पूर्ण विश्राम लेना ही कर्तव्य है।

क्रमवर्धमान स्नान (graduated bath)—दुर्बल और अनभ्यस्त रोगी को एकायक स्नान न देकर पहले पहल उसे थोड़ी देर के लिये तौलिया स्नान (sponge bath) कराना आवश्यक है। उसके बाद रोगी को जब आदत पड़ जाय तब धीरे धीरे स्नान के समय और तेजो में वृद्धि लायी जानी चाहिये। पीछे उसे पूरा स्नान (full bath) दिया जा सकता है। आदत न हो तो एकायक उसे ठंडे पानी का स्नान नहीं देना चाहिये। पहले पहल थोड़ी देर के लिये उसे हल्के गर्म पानी में स्नान कराना उचित है। धीरे धीरे पानी की गर्मी कम करते करते उसे दो-चार दिनों के बाद ठण्डे पानी में नहलाना चाहिये। जीवनी-शक्ति को बढ़ाने और रोग के कीड़ों का आक्रमण रोकने के लिये ठण्डे जल के स्नान से बढ़कर अच्छा कोई उपाय नहीं है। प्रायः प्रत्येक रोगी को प्रतिदिन थोड़ा-बहुत करके कम से कम दो बार ठंडे जल का स्नान देना चाहिये।

गर्म-ठंडा हिप बाथ—सिर को पहले धो लेकर तथा सिर पर गीली तौलिया रखकर यह बाथ ग्रहण करना आवश्यक है। तीन से छः मिनट

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

तक गर्म पानी में हिप बाथ लेकर उसके बाद ही दो-तीन मिनटों के लिये ठंडे पानी में हिप बाथ लेने से ही यह बाथ लेना होता है। यह एक साथ तीन बार के लिये ग्रहण करना कर्तव्य है और बाद में नहा लेना उचित है।

गर्म-ठंडी पट्टी (alternate compress)—इनमें एक से पाँच मिनटों तक गर्म सेंक देकर पीछे इस स्थान को ठंडे पानी में भिगोये गये गमछे द्वारा अच्छी तरह से ठण्डा करना होता है। इस प्रकार एक साथ तीन बार करना जरूरी है। गर्म से शुरू करके ठण्डे पर लाकर इसे छोड़ना चाहिये। परन्तु शरीर यदि गर्म हो तो सदा ठण्डे से इसको शुरू करना जरूरी है। यह प्रायः एक बार बीस मिनटों से तीस मिनटों तक देनी चाहिये। जिस स्थान पर यह किया जाता है, उस स्थान की खून की नालियाँ खुलती और सिमटती हैं। इससे दूषित चीजें बाहर निकल जाती हैं और नया खून बार बार शरीर को बनाने का मसाला लेकर आता है। इसलिये इसके प्रयोग से दुर्बल और रुग्ण अंग बहुत जल्दी चंगा और स्वस्थ हो जाता है। वर्तमान समय में इस पट्टी को contrast bath कहते हैं।

गर्म पादस्नान (hot foot bath)—उष्ण पादस्नान देखिये।

गले की पट्टी—एक गीला तथा निचोड़ा हुआ कपड़े का टुकड़ा गले की चारों तरफ २ से ४ तह लपेटकर ऊपर से मफलर आदि से अच्छी तरह ढकने से ही यह पट्टी लेना होता है।

गीली चादर की लपेट—भीगी चादर की लपेट देखिये।

गुरदे की गर्म और ठंडी पट्टी (renal compress)—इसमें वक्षास्थि के निचले हिस्से में (over lower third of the sternum) सात से दस मिनटों के लिये खूब ठण्डी पट्टी रखकर, एक ही साथ कमर और चूतर के ऊपर गर्म पानी का थैला रखना पड़ता है या सेंक देना पड़ता है। तीन से दस मिनट पर भींगी तौलिया

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

को हटाकर उस जगह को सूखे फ्लानेल से एक मिनट तक रगड़कर बाद में फिर ठंडा का इस्तेमाल करना पड़ता है। इसके साथ साथ पीछे के गर्म पानी के थैले को हटाकर एक मिनट के लिये ठण्डे पानी में भिगोये गये गमछे से इस स्थान को पोंछकर फिर से गर्मी का इस्तेमाल करना होता है। एक ही बार में इस क्रिया को १५ से ३० मिनटों तक करना जरूरी है। अन्त में छाती से पानी की पट्टी हटाकर उस जगह को सूखे फ्लानेल से रगड़कर लाल और गर्म करना पड़ता है। पेशाब पैदा करने और उसका परिमाण बढ़ाने में यह किसी भी दवा से अच्छा काम करता है।

घर्षण स्नान (cold friction)—गीले गमछे से (तौलिया नहीं) दाहिना हाथ ढककर तथा गमछे का बाकी अंश बाँये हाथ से अच्छी तरह पकड़कर दाहिने हाथ से रोगी का देह घर्षण करने से ही घर्षण स्नान प्रयोग करना होता है। हाथ के सामने का गमछा तना हुआ रहना आवश्यक है। एक बार में देह का सिर्फ एक छोटा अंश इस तरह घर्षण करके लाल तथा गर्म कर लेकर और बाद में ढककर दूसरे अंश में घर्षण स्नान प्रयोग करना पड़ता है। देह की गर्म अवस्था में घर्षण स्नान शुरू करना कर्तव्य है तथा घर्षण करते समय देह को गर्म कर लेना आवश्यक है।

छाती की पट्टी (chest pack)—एक बड़े भींगे हुए कपड़े के टुकड़े को शरीर की गर्मी के अनुसार दो से चार बार दोनों कंधों के साथ छाती और पीठ के चारों तरफ घुमाकर लम्बे फ्लानेल के टुकड़े या अलवान के द्वारा अच्छी तरह ढक देने से ही छाती की पट्टी हो जाती है। शरीर की गर्मी जितनी ही अधिक रहेगी, भींगे टुकड़े को उतनी ही बार अधिक घुमाकर लपेटना होगा। पट्टी के नीचे का स्थान इसीके कारण गर्म होना चाहिये। इससे छाती और पीठ के रोएँ के दरवाजे खुल जाते हैं और उसके भीतर से यथेष्ट दूषित पदार्थ शरीर से बाहर निकल जाता है। फुसफुस में खून का जमाव भी

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

इसके द्वारा जादू की तरह दूर हो जाता है। इसलिये जुकाम आदि छाती की बीमारी के लिये यह रामवाण है।

जलपट्टी—ठंडे पानी में भिगोया हुआ कपड़े का टुकड़ा देह के किसी अंश में रखकर गर्म हो जाने के साथ ही उसे बदल देने से इसे जलपट्टी (ठंडी पट्टी) कहते हैं।

जल पीना—जल पीने का सबसे अच्छा समय प्रातःकाल है। नींद से उठने के बाद या खाना खाने के एक घंटा पहले और पेट जिस समय खाली रहे। प्रतिदिन दो-ढाई सेर पानी पीना जरूरी है। ऐसा करने से शरीर का बहुत-सा विष पेशाब के साथ निकल जाता है।

ठंडी-गर्म पट्टी—यह गर्म-ठंडो पट्टी के अनुरूप है, केवल गर्म के बदले में ठंडे से प्रयोग किया जाता है।

ढकी हुई लपेट (heating compress)—एक मोटे भींगे कपड़े के ऊपर से फ्लानेल रखकर उसे बांध देने से ही इस पट्टी का लगाना होता है। इसको इस प्रकार बांधना जरूरी है कि भीतर कुछ गर्मी पैदा हो। इस पट्टी के व्यवहार करने से नीचे के रोएँ के दरवाजे खुल जाते हैं और इस रास्ते से बहुत-सा विष शरीर से बाहर निकल जाता है।

तौलिया स्नान (sponge bath)—भीगी तौलिया से शरीर को पोंछ देने का नाम तौलिया स्नान है।

दीर्घ तापयुक्त गर्म-ठंडी पट्टी (revulsive compress)—पांच मिनट गर्म सेंक देकर उसके बाद तुरन्त आधे मिनट के लिये खूब ठंडे पानी में भिगोये गये गमछे के द्वारा इन स्थान को पोंछ देना पड़ता है। इससे गर्म-ठंडी पट्टी के समान ही लाभ होता है।

धड़ की लपेट (trunk pack)—हाथ और पैर छोड़कर जो शरीर है, उसकी लपेट का नाम धर की लपेट है। यह गीली चादर की लपेट के ही बराबर है। इसमें सिर्फ यही विशेषता है कि हाथ और पैर गीली चादर के बाहर, लेकिन कम्बल के भीतर रहता है। गीली

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

चादर की लपेट देने के पहले इस लपेट का दो-एक दफे प्रयोग करने से गीली चादर की लपेट लेना सहज होता है।

धूपस्नान (sun bath)—सिर को पहले धोकर और उसमें भीगी तौलिया लपेटकर सूर्य की किरणें शरीर पर लेनी होती हैं। पहले ही दिन अधिक देर तक धूप में न बैठकर थोड़ा थोड़ा करके समय बढ़ाना चाहिये। सभी उष्ण-स्नान (hot bath) लेने के बाद ही भीगी तौलिया से शरीर को पोंछकर नहा लेना आवश्यक है। इससे शरीर का प्रत्येक यंत्र और खास तौर से समस्त शरीर में यथेष्ट उद्दीपन आ जाता है। कारण यह है कि सूर्य ही सभी ताकतों की जड़ है। धूपस्नान से शरीर का यथेष्ट दूषित पदार्थ भी शरीर से बाहर निकल जाता है।

पथ्य (diet)—सभी रोगों में मूल पथ्य होना चाहिये फल, फलों का रस, कच्चा शाक-सब्जी का व्यंजन (salad), सागों का कच्चा रस, उबाला हुआ तरकारी का सूप, उबाला हुआ तरकारी, दूध, दही, मट्ठा, मधु और तरल गुड़। रोग की विभिन्न अवस्था के साथ मेल रखकर वे सब खाद्य हर एक ढंग से देना कर्तव्य है। जैसा स्वस्थ रोगी सलाद खायेगा और दस्त का रोगी डाभ का पानी तथा हल्का मट्ठा खायेगा। मांड़ समेत कम छटा हुआ चावल का भात और चोकर समेत आटे की रोटी खाना उचित है। किंतु चिकित्सा के समय भात-रोटी कम खाकर ऊपर लिखित पथ्यों के ऊपर ही जोर देना चाहिये। रोगी के लिये हल्दी छोड़के सभी प्रकार के मसाले, ज्यादा नमक, सभी प्रकार की भुंजी हुई और तली हुई चीजें, चीनी और मैदा आदि परिशोधित खाद्य (refined foods), कठिनाई से पचनेवाली चीजें तथा मांस, मछली, अंडा, चाय, तम्बाकू छोड़ देना कर्तव्य है। निमन्त्रण हमेशा वर्जनीय है।

पानी की पट्टी (cold compress)—जलपट्टी देखिये।

पेट की लपेट (wet girdle)—एक भीगे कपड़े का टुकड़ा

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

चुचुक (nipple) से लेकर पेड़ू की शेष सीमा तक दो से आठ बार घुमाकर बांधने और उसके बाद उसके ऊपर अच्छी तरह से मोटा करके फ्लानेल लपेट लेने से यह पट्टी लेनी होती है। पट्टी के नीचे की जगह गर्म हो जानी चाहिये। पेट साफ और सबल तथा दोषशून्य करने के लिये यह उपाय जादू के समान ही लगता है।

पैर की लपेट (foot pack)—पैर की फिल्ली से लेकर घुटने तक दोनों पैरों को निचोड़े हुए भीगे कपड़े से लपेटकर ऊपर से उस पर फ्लानेल की लपेट से उसे ढक देना ही पैर की लपेट लेना कहा जाता है। उस समय यह ध्यान रखना चाहिये कि दोनों पैर गर्म रहें। अधिक गर्म न रहें तो बीच बीच में उस पर गर्म पानी की थैली या बोतल रखकर दोनों पैरों को बराबर गर्म रखना उचित है। यदि पैर ठंडा रहता हो तो यह पट्टी नीचे के हिस्से पर न देकर जंघे के ऊपर बांधना उचित है। पैक देकर गले तक रोगी का समूचा शरीर कम्बल से ढक देना और शिर को भीगी तौलिया से लपेटना जरूरी है। यह पैक ऊपर के आक्रान्त अंग के भीतर से खराब खून को नीचे उतार लाता है और नया स्वस्थ खून उसकी जगह पहुँचाता है। इसलिये ऊपरी अंग के किसी भी रोग में यह जादू की तरह फायदा करता है।

फुट बाथ (foot bath)—उष्ण पादस्नान देखिये।

बस्तिदेश की लपेट (pelvic pack)—एक भीगा गमछा काछा मारकर पहनकर ऊपर से एक दुशाला मोटा करके पहन लेने से ही यह लपेट लेना होता है। भीतर में गर्मी पैदा होनी चाहिये।

भीगी चादर का ठंडा पैक (cooling wet-sheet pack)—रोगी को भीगी चादर के पैक के भीतर केवल २० ही मिनट रखने से यह पैक होता है। तेज बुखार के समय इस पैक को पांच से सात मिनटों तक के लिये एक ही बार में तीन-चार बार दिया जा सकता है। यह पैक इस्तेमाल करके जितना चाहें उतना बुखार कम किया जा सकता है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

भीगी चादर का पैक (wet-sheet pack)—एक भीगी चादर या धोती द्वारा रोगी को गले से लेकर पैर तक ढककर उसके बाद तीन-चार कम्बल और लिहाफ़ के द्वारा उसको ढक देने का नाम भीगी चादर का पैक है। साधारणतया पैक के भीतर रोगी को एक घंटे तक रखना चाहिये। इसके बाद रोगी का समूचा शरीर गर्म पानी में भिगोई हुई तौलिया से पोंछ देना जरूरी है। इससे जो लाभ होता है, वह स्टीम बाथ के लाभ के बराबर है।

भीगी चादर का मातदिल पैक (neutral wet-sheet pack)—रोगी को जाड़ा लगना समाप्त हो जाने के बाद उसे पैक के भीतर न गर्म न ठंडी अवस्था में रखने से मातदिल पैक होता है। रोगी को लम्बे काल तक इस हालत में रखने के लिये ऊपर से कम्बल हटाकर यह मातदिल पैक रखने चाहिये।

मध्य शरीर का पैक (trunk pack)—धड़ की लपेट देखिये।

मर्दन (massage)—मालिश के बहुत-से तरीके हैं। किसी अंग पर हाथ रखकर हाथ घुमा घुमाकर नीचे से खून को ठेलकर ऊपर की ओर (दिल की ओर) ले जाने को घर्षण या रगड़ना (friction) कहते हैं। किसी जगह पर हाथ रखकर शरीर की विभिन्न मांसपेशियों को पकड़कर दबाना ही दलन (kneading) है। हाथ की तलहटी कड़ा करके रोगी के शरीर के किसी अंश पर रखकर या मांस को पकड़कर हाथ को तेजी से हिलाने से कम्पन (vibration) होता है। दोनों हाथों या उँगलियों से आरामदेह ढंग से शरीर के विभिन्न स्थानों के थपथपाने को थपकी (percussion , कहते हैं। गांठ घुमाना (rotation), संधि-प्रसारण (stretching) आर संधि भंग (flexion) भी बहुत लाभप्रद मालिश है।

मिट्टी की पुलटिस (earth compress)—पुलटिस की गीली मिट्टी इस तरह की होनी चाहिये कि उसका तीन हिस्सा बालू और एक भाग चिकनी मिट्टी हो। इसको आधा इञ्च मोटा और थोड़ा बड़ा करके

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

प्रयोग में लाना चाहिये। प्रयोग करते समय मिट्टी मक्खन की तरह मुलायम होना जरूरी है।

मूत्रयंत्र की लपेट (renal compress)—गुरदे की गर्म और ठंडी पट्टी देखिये।

सीज बाथ (sitz bath)—भीतर के मांस के ऊपर पानी न लगे इस तरह से लिंग का चमड़ा आगे की ओर खींचकर तौलिया से पानी लेकर उसे रगड़ना सीज बाथ कहलाता है। इस तरह से १५ से ३० मिनटों तक करना जरूरी है। औरतों का भी केवल बाहरी चमड़ा धोना चाहिये। स्नायु (nerve) के द्वारा ही शरीर चलता है। जिस स्थान का चमड़ा सबसे अधिक चेतनाशील होता है, उसी जगह पर इस बाथ का इस्तेमाल करके समूची नर-नाड़ियों के जाल को ही तेज कर दिया जा सकता है। इसलिये इस उपाय से शरीर के सभी काम अच्छी तरह चलते हैं। सभी स्नायविक तथा मानसिक रोग में इसका इस्तेमाल करना चाहिये।

सूखा पैक (dry pack)—भीतर भीगी हुई चादर न देकर केवल कम्बल के द्वारा रोगी को गले तक ढककर लपेट रखने को सूखा पैक कहते हैं। पैक देते समय पैक के नीचे गर्म बोतल रखना जरूरी है। पैक खत्म होने पर कुछ देर तक ठंडा मालिश करना चाहिये। इसका फल बहुत स्टीम बाथ के फल के बराबर होता है।

सूखी मालिश (dry friction)—नहाने के बाद शरीर को बिलकुल सूखाकर बिछौने की एक सूखी पतली चादर या बड़ी टर्किश तौलिया से शरीर के प्रत्येक अंग को खूब रगड़कर लाल एवं गर्म कर लेने को ही सूखी मालिश कहते हैं।

स्पंज बाथ (sponge bath)—तौलिया स्नान देखिये।

स्टीम बाथ (steam bath)—रोगी को एक बेंत की कुर्सी पर बैठाकर, कुर्सी के नीचे एक उबलते पानी की हंडी रख दी जाती है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh
रोगी के गले तक समूचा शरीर और कुर्सी इस तरह कम्बल के द्वारा ढक दिया जाना जरूरी होता है कि भाप बाहर न निकल जाय। चूल्हे के ऊपर एक मुँहवाली एक टीन की केटली बैठाकर रबर की नली के सहारे भीतर भाप लाकर भापस्नान का इस्तेमाल और भी सुन्दर तरीके से हो सकता है। भाप लेने के बाद समूचे शरीर को भीगी तौलिया से पोंछ देना जरूरी है। शरीर को विकार से छुड़ाने में इसके बराबर और दूसरा कोई उपाय नहीं है।

स्वकल्प-भावना (auto-suggestion)—मैं अच्छा हो रहा हूँ, मेरी रोग छूट रहा है, शीघ्र ही मैं अच्छा हो जाऊंगा—अपने मन में बार बार इस भावना को लाने का नाम स्वकल्प-भावना है।

सांस का व्यायाम—हम लोग जो स्वाभाविक तौर पर सांस लेते और छोड़ते हैं, उसी सांस को देर तक लेने और देर तक छोड़ने की क्रिया को सांस का व्यायाम कहते हैं। हमारे देश में यह व्यायाम प्राणायाम के नाम से प्रचलित है। बैठकर, खड़े होकर या लेटकर प्राणायाम किया जा सकता है। यहाँ तक कि साधारण व्यायाम के साथ भी सांस का व्यायाम किया जा सकता है।

सांस के व्यायाम में ध्यान रखना चाहिये कि यह खूब धीरे धीरे किया जाय। प्राणायाम से जो कभी कभी हानि होती है, उसका मुख्य कारण जल्दीबाजी ही है। सांस लेने की अपेक्षा सांस छोड़ने में दुगुना समय देना चाहिये। सांस लेते समय यह भी खयाल रखना चाहिये कि पेट भीतर घुस जाय और छाती उँची उठ जाय। सांस का व्यायाम स्वच्छ हवा में करना विशेष रूप से आवश्यक है। सर्वदा नाक द्वारा ही प्राणायाम का सांस लेना और छोड़ना चाहिये।

हिप बाथ (hip bath)—पानी से भरे हुए एक टब के भीतर पैरों को बाहर करके बैठकर लगातार पेड़ू तथा सन्धि को तौलिया से रगड़ने से ही हिप बाथ लेना होता है। पहले दिन केवल तीन मिनटों के लिये ऐसा करके धीरे धीरे समय बढ़ाकर अन्त में आध घंटे तक

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

ऐसा करना चाहिये। शरीर की गर्म हालत में या शरीर गर्म करके इसको लेना चाहिये और इसके लेने के बाद भी शरीर को रगड़ रगड़कर गर्म कर लेना उचित है। केवल ऐसा करने से ही हिप बाथ से लाभ हो सकता है, अन्यथा नहीं। पेट को साफ करने, समस्त परिपाक यंत्र को निर्दोष करके उसको सबल करने तथा समूचे शरीर को ही तेज कर देने में इस उपाय के समान और दूसरा कुछ नहीं है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

हृदय की बीमारी और प्राकृतिक चिकित्सा

ग्रीक भाषा में हृदय को कारडिया (Kardia) और मांसपेशी को मीस कहते हैं। तदनुसार हृदय की मांसपेशी को माइकारडियम (Mycardium) कहते हैं। हृदय छिद्र झिल्ली से ढका हुआ है, उसको इन्डोकारडियम (Endocardium) कहते हैं और हृतपिण्ड के ऊपरी अंश में जो आवरण है उसको अंग्रेजी में पेरिकारडियम (Pericardium) कहते हैं।

हृतपिण्ड के भीतरी भाग में जो आवरण है, उसको एन्डोकारडियम तथा हृदयपिण्ड के ऊपरी भाग में जो आवरण है उसको अंग्रेजी में पेरिकारडियम (Pericardium) कहते हैं। यह एक छोटा सा ग्रीक शब्द है जिसे प्रदाह कहते हैं। हृदय की बीमारियों के भिन्न-भिन्न नाम हैं।

हृदय की झिल्ली के प्रदाह को माइकारडिटिज (Myocarditis) कहते हैं। अगर किसी कारण से पेरिकारडिटिज में प्रदाह होता है तो उसको पेरिकारडिटिज (Pericarditis) कहते हैं।

हृदय के अन्त:पटल और मांसपेशी में जो प्रदाह होता है उसे इन्डो-माइकारडिटिज (Endomyocarditis) कहते हैं।

जब ये बड़े-बड़े उच्चारण वाले शब्द डाक्टर लोग व्यवहार करते हैं तो रोगी सोचता है जो उसको मालूम पड़ता है कि बीमारी बहुत खतरनाक है। इस बीमारी से छुटकारा पाना बड़ा कठिन है। नतीजा यह होता है कि रोगी घबड़ा जाता है। जिस तरह की बीमारी क्यों न जटिल हो परन्तु असली इस बीमारी का यह है कि हृदय के किसी खास अंग में प्रदाह होता है। बीमारी के विषय अच्छी तरह समझने के लिये चिंताओं

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

को दूर करने के लिए उन कठिन शब्द के अर्थ यहाँ बताये जाते हैं जिसके नाम सुनकर रोगी को मालूम पड़ता है कि हम जल्द मर जायेंगे और दवाई खाने से तो बाद में, क्योंकि हृदय खुद क्षति को पूर्ण करने वाला अंग है। दवा तकलीफ को दूर कर तथा दूसरी-दूसरी बीमारी में लक्षणों को दूर कर सकती है। परन्तु यह हृदय को मरम्मत नहीं कर सकती। हृदय के आर्टिरिज को आपरेशन कर देने पर हृदय की बीमारी अच्छी नहीं होती।

अब हमलोगों को यह सोचना चाहिये कि प्रदाह क्या है? जब अधिक मात्रा में रक्त इकट्ठा हो जाता है जिससे कि शरीर का ताप बढ़ जाता है। शरीर में लाली आ जाती है और साथ ही फूल जाता है। शरीर में दर्द होता है और हृदय यंत्र में नाना प्रकार की रुकावट आ जाती है। किसी अंग में प्रदाह होना ठीक वैसा ही है जैसा कि दूसरे अंग में प्रदाह का होना। नतीजा यह होता है कि प्रदाह अगर एक अंग में होता है और दूसरे अंग में भी प्रदाह हो तो कोई तफरका नहीं है, सिर्फ उस अंग के कार्यों में तफरका होता है। उदाहरण के लिए हृदय का प्रदाह हृदय के कार्यों में बाधा डालता है। जीभ का प्रदाह बातचीत करने और निगलने में बाधा डालता है। लक्षणों में भिन्नता आना, अंगों की बनावट और कार्य पर निर्भर करता है। प्रदाह चाहे जिस कारण से हो एक ही प्रकार रहेगा।

उदाहरण के लिए एक बीमारी का नाम लीजिये जिसका नाम इन्डो-कारडिटिज (Endocarditis) है। इस बीमारी में झील्ली के ऊपर जलन है। यह बीमारो बीस से चालीस वर्ष के उम्र वालों को होती है। विशेषकर मर्दों से औरत को ज्यादा होती है। यह बीमारी बात ज्वर के कारण होती है जो हृदय के दरवाजे के झिल्ली पर अपना प्रभाव डालती है। इसका मतलब यह है कि हृदय के दरवाजे पर जब जलन पैदा होती है तब वह मोटा हो जाता है। तब हृदय के जरिये रक्त का आवागमन में बाधा डालती है। हो सकता है कि हृदय के

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Arya Samaj Foundation, Chandigarh

दरवाजे तेज हो गये हों और उनके जरिये उनमें छिद्र हो गया हो और पूरे तरह से वह दरवाजा बंद भी हो गया हो।

कई तरह के इनकारडीटिज (Encarditis) की बीमारी हो जाती है। अनिष्टकर नारीव्रण आदि। नये और पुराने पर्दों की भिन्नता डिग्री और समय पर निर्भर करती है। दोनों नये और पुराने रोग का विभाजन उसकी अवस्था पर कम होना या अनिष्टकर होना पर निर्भर करता है। हृदय का घाव ठीक उसी तरह का होता है जिस तरह नाक और आंख की बीमारी।

इनकारडिटिज (Encarditis) हृदय के दरवाजे तक रहता है और इसको valvular endocarditis या इसका पुराना नाम है valvulitis.

लक्षण :—परिश्रम करने से सांस की कमी हो जाती है। हृदय का धड़कन बढ़ जाता है। गाल की हड्डियों पर लालिमा आ जाती है। हृदय की रुकावट के लक्षणों में टांग तथा घुटना फूल जाते हैं। और चमड़ा का रंग नीला हो जाता है।

ऐसी अवस्था में उपवास तथा विश्राम करना आवश्यक है। विष को निकाल देना चाहिये और शक्ति लाने का कोशिश करनी चाहिये। कैफीन मेन्ट्राजल (caffeine mentrazol), कोरामाइन (coramine), इपिनेफ्राइन (Epinephrine) नामक दवाओं के लेने में रोगी अभ्यस्त हो जाता है। वातजनक इनकाटडिटिज सैलिसिटेटस को छोड़कर दूसरी दवा कम काम करती है। रोगी को शांत रखने के लिए रोगी लोग आइस-बैग (Ice-bag) या गर्मसेक काम में लाते हैं। रोगी को शांत रखने के लिए यह रास्ता अपनाया जाता है। हृदय का धड़कन बंद होने की सम्भावना पर लोग नींद की दवा को व्यवहार में लाते हैं। अब इससे साफ जाहिर होता है कि असली आराम रोगी को नहीं दिया जाता है। बड़े-बड़े चिकित्सक गण भी कहने लगे हैं कि

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

इसके लिए कोई रामवाण औषधि नहीं है। जिन्हें Encarditis की बीमारी होती है उनके लिए लाभप्रद कोई औषधि नहीं है।

डा० J H. Tilden का कहना है कि हम रक्त रोगी के नश में चढ़ा सकते हैं। उसे उत्तेजक औषधि दी जा सकती है। अगर रोगी जिंदा हो तो डाक्टर को इलाज करना है। अगर रोगी मर जाता है तो कहा जाता है कि डाक्टर बुलाये नहीं गये।

सीनिया अस्पताल In mt. Sinia Hospital (New York) में मेढ़क के हृदय की बीमारी पर आजमाइश की गयी, उसका फलाफल निम्नोक्त प्रकार है :—

२०० मेढ़कों को sulfonamides नामक औषधि से उपचार किया गया परन्तु उनमें ६४ प्रतिशत मर गये। ४५ मेढ़क को sulfonamides और fever therapy से उपचार किया गया जिनमें ७५ प्रतिशत से लेकर ८४ प्रतिशत मर गये। ४३ मेढ़क को sulfonamides और Heparin से उपचार किया गया जिसमें ८८·५ प्रतिशत मर गये। वे विशेष रूप से अच्छे हुए जबकि उनको टाइफाइड मैकसीन (Typhoid vaccine) दिया गया। और ज्वर को बढ़ाया गया, जब वे Hyperthermia काम में लाये जो कि ताप को बढ़ाने में काफी सहायक होता है।

गोनोरिया और सिफलिस (Gonorrhea and syphilis) गर्मी और सुजाक की बीमारी किडनी पर विशेष प्रभाव डालता है। जब पेशाब और पैखाने पर आघात पहुँच जाता है तब हृदय की गति का कार्य रुक जाता है। बातरोग से भी इनकारडिटिज (Encarditis) नामक बीमारी होती है। शराब, तम्बाकू और पुराना Nephritis से भी हृदय की बीमारी बढ़ती है। सारांश यह है कि असंयमी जीवन ही इस रोग का प्रधान कारण है।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

उपचार :—

Encarditis (हृदय के भीतरी भाग का क्षेत्र) विशेष खतरनाक होने पर Ice-bag (आइस-बैग) छाती पर रखना चाहिये। रोगी को काफी आराम देना चाहिये। पहले तीन दिन तक सिर्फ पानी ही आहार में देना चाहिये। फिर धीरे-धीरे फल का रस और दूध देना चाहिये। फिर जो भोजन रोगी को पच जाय उसी चीज को देना चाहिये।

तीसरे दिन से छाती पर मालिश होनी चाहिये। साथ ही एनिमा देकर पेट साफ कर देना चाहिये और विष को निकाल देना चाहिये। लेकिन पैक का होना आवश्यक है।

रोगी को भूलकर भी शराब और सिगरेट आदि नहीं पीना चाहिये जो कि हृदय को उत्तेजित करें।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

৺কুলরঞ্জন মুখোপাধ্যায়

প্রণীত

১। **অভিনব প্রাকৃতিক চিকিৎসা,**
মূল পুস্তক, ৭ম সংস্করণ, ৩৬৬ পৃষ্ঠা ৩'৫০

২। **পুরাতন রোগের প্রাকৃতিক চিকিৎসা,**
৫ম সংস্করণ (পরিবর্ধিত), ৩১৪ পৃষ্ঠা ৩'৫০

৩। **দৈনন্দিন রোগের প্রাকৃতিক চিকিৎসা,**
৪র্থ সংস্করণ (পরিবর্ধিত), ৩০৬ পৃষ্ঠা ৩'৫০

৪। **স্ত্রী-রোগের প্রাকৃতিক চিকিৎসা,**
৩য় সংস্করণ, ২৩৬ পৃষ্ঠা ৩'৫০

৫। **শিশু-রোগের গৃহ-চিকিৎসা,**
২য় সংস্করণ (যন্ত্রস্থ) ৩'০০

৬। **খাদ্যের নববিধান,**
৪র্থ সংস্করণ (পরিবর্ধিত), ২২৬ পৃষ্ঠা ৩'৫০

৭। Protective Foods in Health and Disease
432 pages Rs. 8·00

৮। **আলোর সন্ধানে** '৫০

৯। **সত্যের সন্ধানে** '৫০

শ্রীনীলকান্ত চক্রবর্ত্তী

প্রণীত

1. A Hand Eook of Natural Treatment Rs. 3·50

প্রাপ্তিস্থান—

প্রাকৃতিক চিকিৎসালয়,

১১৪।২ রি ও সি. হাজরা রোড, কলিকাতা-২৬

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

स्व० डा० कुलरञ्जन मुखर्जी प्रणीत

१ ।	अभिनव प्राकृतिक चिकित्सा, पंचम संस्करण	४·५०
२ ।	दैनन्दिन रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा, चतुर्थ संस्करण	४·५०
३ ।	पुराने रोगों की गृह-चिकित्सा, चतुर्थ संस्करण	४·५०
४ ।	स्त्री-रोगों की गृह-चिकित्सा, पंचम संस्करण	४·००
५ ।	शिशु-रोगों की गृह-चिकित्सा, द्वितीय संस्करण	३·००
६ ।	खाद्य की नयी विधि, तृतीय संस्करण	४·००
७ ।	सत्य की खोज में	०·६२
८ ।	Protective Foods in Health and Diseases	8·00

श्री नीलाकान्त चक्रवर्ती प्रणीत

१ ।	A Hand Book of Natural Treatment	3·50
२ ।	तम्बाकू का विष क्रिया	·६२

प्राकृतिक चिकित्सालय,

११४।२ बी और सी, हाजरा रोड,

कलकत्ता—२६

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Sarayu Foundation, Chandigarh

श्री कुलरंजन मुखर्जी लिखित

अभिनव प्राकृतिक चिकित्सा

परिवर्धित पंचम संस्करण

[विभिन्न समाचार पत्रों की सम्मतियाँ]

प्राकृतिक चिकित्सा की यही मूल पुस्तक है। इस पुस्तक के बारे में 'दैनिक विश्वमित्र' ने लिखा है—डा० मुखर्जी ने हिन्दी साहित्य को एक अपूर्व पुस्तक प्रदान की है। प्रत्येक स्वास्थ्यप्रेमी के लिये इस पुस्तक को अपने पास रखना आवश्यक है। 'लोकमान्य'—इस पुस्तक से जनसाधारण बहुत लाभ उठा सकेंगे। 'नवभारत टाइम्स'—यह अपने विषय की प्रामाणिक पुस्तक मान ली जायगी। 'सन्मार्ग'—प्राकृतिक चिकित्सा की सारी विधियाँ इस पुस्तक में लिखी गई हैं। 'स्वतंत्र भारत'—डा० मुखर्जी की पुस्तक पथ-प्रदर्शक का कार्य कर सकेगी। ३५० पृष्ठ, मूल्य—४·५० मात्र।

दैनन्दिन रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा

चतुर्थ संस्करण

इस पुस्तक में हरेक ज्वर, सर्दी, खाँसी, दस्त, पेचिश, हैजा, माता, पेशाब की रुकावट, सिरदर्द, उलटी, वायुफुल्लता, डकार, शोथ (dropsy), अनिद्रा आदि विभिन्न तीव्र रोगों (acute diseases) की तथा दुर्घटना (accidents) की परिपूर्ण अचूक चिकित्सा तथा पथ्यविधि दी गयी हैं। ग्रन्थकार की इस श्रेणी की सभी पुस्तकें ही स्वयं-सम्पूर्ण हैं। हरेक पुस्तक में अन्त में विभिन्न उपचार ग्रहण करने की विधि लिखी गयी है। ३१२ पृष्ठ, मूल्य—४·५० मात्र।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

स्त्री-रोगों की गृह-चिकित्सा

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

परिवर्धित पंचम संस्करण

इस पुस्तक में स्तन का फोड़ा, जरायु का प्रदाह, जरायु की स्थानच्युति, बाधक वेदना, ऋतुरोध, स्वल्परज, अतिरज, अनियमित ऋतु, गर्भावस्था, प्रसव व सूतिका क्षेत्र के विभिन्न रोग, इनके अलावा हिस्टीरिया व श्वेतप्रदर आदि की चिकित्सा तथा स्त्री जीवन में ऋतुकाल व गर्भावस्था आदि विभिन्न अवस्था में स्वास्थ्यनीति व पथ्यविधि विस्तृत रूप से लिखी गई है। २०८ पृष्ठ, मूल्य—४·०० पै० मात्र।

शिशु-रोगों की गृह-चिकित्सा

द्वितीय संस्करण

जन्म से शुरू करके वयः प्राप्ति तक शिशु को जितने रोग हो सकते हैं उनमें से प्रायः सभी रोगों की चिकित्सा व पथ्यविधि इस पुस्तक में दी गई है। २२२ पृष्ठ, मूल्य—३·०० मात्र।

खाद्य की नयी विधि

तृतीय संस्करण

खाद्य तथा पथ्य के बारे में यह एक नई तरह की पुस्तक है। इस पुस्तक में विभिन्न खाद्यों का गुणागुण, भोजन की स्वास्थ्यनीति, पथ्य-चिकित्सा तथा खाद्य के बारे में जो कुछ जानने का है वे सभी आधुनिक वैज्ञानिक खोज के आधार पर सरल ढंग से लिखा गया है। २१६ पृष्ठ, मूल्य—४·०० मात्र।

सत्य की खोज में

समाज, धर्म, राजनीति और मानसिक स्वास्थ्य आदि विषय में एक श्रेष्ठ पुस्तक। ६० पृष्ठ, मूल्य—६२ पै० मात्र।

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

PROTECTIVE FOODS
in Health and Disease

यह बिलकुल एक नई पुस्तक है। इस पुस्तक में लेखक ने विभिन्न स्वास्थ्यकर खाद्य के बारे में चर्चा की है। इस पुस्तक का अधिकांश प्रबन्ध पहले Amrita Bazar Patrika, Hindusthan Standard तथा भारतवर्ष की विभिन्न श्रेष्ठ पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुका है। स्वास्थ्यकर खाद्यों में सेव, केला, बेल, खजूर, अमरूद, किशमिश, आँवला, नीबू, आम, कमला, पपीता, अनन्नास, अंगुर, टमाटर, नारियल, बदाम, गाजर, आलू, सोयाबीन, दूध, अंडा, मछली, मांस, मधु, गुड़, ईख, मक्खन, तिल व आलिव आयल आदि ६५ विभिन्न खाद्यों का इतिहास, गुणागुण, खाद्य-मूल्य, विभिन्न देशों में खाद्य तथा औषधि के रूप में इसका व्यवहार इस पुस्तक में वर्णित हुआ है। पहले किशमिश चिकित्सा व नीबू चिकित्सा नामक पुस्तक मिलती थी। नये तथ्यों द्वारा उसी तरह इस पुस्तक में विभिन्न रक्षाकारी खाद्यों के बारे में लिखा गया है। इस पुस्तक की भूमिका हमलोगों के भूतपूर्व जनप्रिय स्वास्थ्य-मंत्री श्री डी० पी० कारमाकारजी ने लिखा है। इस पुस्तक की भूमिका में उन्होंने लिखा है—

The problem of correct nutrition is one of great improtance to us from the point of view of promoting the health of our people. What to eat and how much to eat is a matter of concern to every one who seeks to maintain good health. The normal diet in India is deficient in protective foods. This treatise dealing with "Protective Foods in Health and Disease" by Dr. K. R. Mukherjee, a distinguished physician who has contributed richly to the better understanding of various facts of health by his numerous publications provides the layman and expert alick with a good

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

knowledge of the various aspects of protective foods, like fruits, nuts, vegetables, milk and milk products, fats, etc. He has dealt with the subjejct with a remarkable ability and clarity of expression. I am quite sure that it will be good reference book to all those who seek to study the subject. I hope that it will be patronized by all Governmental and non-official agencies who have to deal with this important subject.

इस पुस्तक का आकार इम्पिरियल साईज का। इसकी पृष्ठ-संख्या ४२०, मूल्य—५) मात्र। Royal edition का मूल्य ८)। दोनों पुस्तकों का कागज तथा छपाई एक है। सिर्फ जिल्द का फर्क है। ५) वाला पुस्तक में भी जिल्द छोटा और भारी है।

मिलने का पता

प्राकृतिक चिकित्सालय

११४/२ बी व सी, हाजरा रोड

कालीघाट, कलकत्ता-२६, फोन—४७-३१८०

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

कुलरंजन मुखर्जी प्रणीत
Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

अभिनव प्राकृतिक चिकित्सा

इस पुस्तकके बारेमें 'दैनिक विश्वमित्र' ने लिखा, 'डा० मुखर्जी-ने हिन्दी साहित्य को [illegible] अपूर्व पुस्तक प्रदान की है। प्रत्येक स्वास्थ्य प्रेमी के लिये इस पुस्तक को अपने पास रखना आवश्यक है।' तृतीय संस्करण, ३४४ पृष्ठ, मूल्य ४.५० मात्र।

दैनन्दिन रोगोंकी प्राकृतिक चिकित्सा

इस पुस्तक में हर एक बुखार, दस्त, पेचिश, व्रण, आँख, कान और नाकका रोग, अनिद्रा, हैजा, वसन्त, प्लेग आदि नये रोग तथा जला घाव, बिजलीका धक्का, पानीमें डुबना, अफीम ग्रहण आदि दुर्घटनाओं का सरल चिकित्सा तथा पथ्य विधि दी गयी है। द्वितीय संस्करण, ३०८ पृष्ठ, मूल्य ४.५० मात्र।

स्त्री-रोगोंकी गृह-चिकित्सा

स्त्रियोंको जितने भी विशेष रोग हो सकते हैं उनका पूर्ण इलाज़, पथ्य-विधि तथा स्वास्थ्य-नीति इस पुस्तकमें विस्तृत रूपसे दी गयी है। तृतीय संस्करण, २७६ पृष्ठ, मूल्य ४ रु० मात्र।

शिशु-रोगोंकी गृह-चिकित्सा

जन्मसे शुरू करके वयःप्राप्ति तक शिशुको जितने रोग हो सकते हैं उनमें से प्रायः सभी रोगों की चिकित्सा व पथ्य-विधि इस पुस्तक में दी गयी है। २२२ पृष्ठ, मूल्य -३) मात्र।

खाद्य की नयी विधि

खाद्य तथा पथ्यके बारे में यह एक नई तरहकी पुस्तक है। इस पुस्तकमें विभिन्न खाद्योंका गुणागुण, भोजनकी स्वास्थ्य-नीति तथा पथ्य चिकित्सा आधुनिक वैज्ञानिक खोजके आधारपर सरल ढंगसे लिखा गया है। २१६ पृष्ठ, मूल्य ४.०० मात्र।

मिलने का पता—

प्राकृतिक चिकित्सालय,
११४।२ बी और सी, हाजरा रोड (पश्चिम),
कालीघाट, कलकत्ता-२६ फोन : ४७-३१८०
Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida

Digitized by Agamnigam Foundation, Chandigarh

Adv. Vidit Chauhan Collection, Noida